५.५

षड्दर्शन सूत्र संग्रह

मेधा देवी

ST MON TUE WED THU FR

1 2 3 4



ROAD
TRANS
CORPO





गुरुतः तर्कत[illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] मन्त्राणां [illegible] ॥



सुधी-ग्रन्थमाला—५

SUDHI SERIES—5



षड्दर्शनसूत्रसंग्रहः

(षण्णां दर्शनानां प्रामाणिकः सूत्रपाठः)

[मीमांसा-वेदान्त-सांख्य-योग-न्याय-वैशेषिकाणाम्]

सम्पादकः

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

Sudhi Series—5

SAḌDARŚANA SŪTRA SAṀGRAHA

(A Collection of Sutras of Six Darshanas)

With

An authentic Introduction and exhaustive Index

Editor

SWAMI DWARIKADAS SHASTRI

SUDHI PRAKASHANA

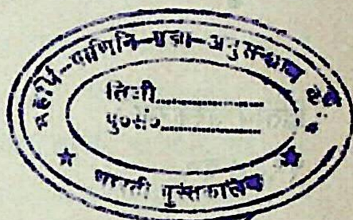
VARANASI

1988

सुधी-ग्रन्थमाला–५

षड्दर्शनसूत्रसंग्रहः

(षण्णां दर्शनानां प्रामाणिकः सूत्रपाठः)



संग्रहकर्ता, सम्पादकश्च

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

शास्त्रचूडामणिः

सुधीप्रकाशनम्

१९८८ खिष्टाब्दः]   वाराणसी   [२०४५ वैक्रमाब्दः

प्रकाशक :
© सुधी प्रकाशन
पो० बॉ० १०४९, वाराणसी-१
पिन : २२१ ००१

Publisher :
© SUDHI PRAKASHAN
P. B. 1049, Varanasi-1
Pin : 221 001

●

द्वितीय संस्करण :
१९८८ ई०

Second Edition
1988

●

मूल्य : (पचास रुपया)
रु० ५०.००
(पञ्चाशद्रूप्यकाणि)

Price :
Rs. 50-00
(Fifty Rupies Only)

●

मुद्रक :
विजय प्रेस,
सरसौली, वाराणसी ।

Printers :
Vijaya Press
Sarasauli, Varanasi.



प्रकाशकीय वक्तव्य

सिद्धिः साध्ये सतामस्तु, प्रसादात् तस्य धूर्जटेः।
जाह्नवीफेनलेखेव यन्मूर्ध्नि शशिनः कला ॥

माननीय विद्वज्जन !

इस सुधी-ग्रन्थमाला में प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थों का आधुनिक पद्धति से संस्करण कर उनके प्रकाशन का संकल्प है। इस संकल्प के अनुसार इस योजना में श्रीवामन-जयादित्य रचित **काशिकावृत्ति** का (**न्यास** एवं **पदमञ्जरी** व्याख्याओं के साथ) प्रकाशन छः भागों में हो चुका है।

प्राचीन ग्रन्थों के इसी प्रकाशन-क्रम में हमने भारतीय दर्शनग्रन्थों से प्रामाणिक सूत्र-संग्रह कर इस 'षड्दर्शनसूत्र-संग्रह' का भी प्रकाशन किया है। इसमें **मीमांसा, वेदान्त, सांख्य, योग, न्याय,** और **वैशेषिक** दर्शनों के सूत्रों का अविकल पाठ (अध्याय, आह्निक, पाद एवं सूत्रसंख्या सहित) दिया गया है। अन्त में सूत्रों की स्थिति के ज्ञान के लिये अकारादि-क्रम से एक बृहत् सूची भी लगायी गयी है।

साथ ही सभी दर्शनों की मान्यताओं का परिचायक एक नातिविस्तृत निबन्ध भी (हिन्दी भाषा में) संयुक्त कर दिया है, जो दर्शनशास्त्र के प्रविविक्षु जनों के लिये उपयोगी होगा।

इस तरह इस ग्रन्थ को विद्वानों, अनुसन्धाताओं तथा छात्रों के लिये समान रूप से उपयोगी बना दिया गया है। इस में प्रमाण यहीं है कि इसका प्रथम संस्करण इतना शीघ्र समाप्त हो गया।

भले ही हम संकोचवश न कहें, परन्तु आज स्थिति यह है कि इन छहों दर्शनों के समग्र प्रामाणिक ग्रन्थ माने हुए पुराने विद्वानों के पास भी उपलब्ध नहीं होते, विशेषतः मीमांसा के ग्रन्थ; छात्रों की या नये लोगों की तो बात ही क्या ! आज यह ग्रन्थ 'सूत्रकोश' की तरह सबको समान रूप से काम देता हुआ इस कमी की पूर्ति कर रहा है।

एक बात और, आज से ५० वर्ष पूर्व तक ऐसे सूत्रसंग्रह या सूत्रपाठ साधारणतया सभी विद्याशालाओं में उपलब्ध थे। उनका उपयोग बालकों को उस-उस दर्शन के सूत्रों का पाठ कण्ठस्थ कराने में भी सहायक होता था, ताकि आगे उस दर्शन के प्रौढ़ अध्ययन में वह कण्ठस्थ सूत्रपाठ काम दे सके। आज यह परम्परा लुप्त होती जा रही है। इस परम्परा को पुनरुज्जीवित करने में भी यह 'सूत्रसंग्रह' सहायक होगा।

इन सब दृष्टियों से इस ग्रन्थ की महत्ता को ध्यान में रखकर ही हमने इसे चार वर्ष पूर्व प्रकाशित किया। आज इसका यह द्वितीय संस्करण है।

आशा है, विद्वज्जन इसे भी पूर्ववत् आदर देकर हमारा उत्साहवर्धन करेंगे, ताकि हम आगे भी सुरभारती की सेवा इसी तरह करते रहें।

वाराणसी.
विजयादशमी,
२०४५ वि०

प्रकाशक

विषयक्रमः



दर्शनों का संक्षिप्त परिचय

१. मीमांसा-दर्शन

मीमांसा-दर्शन के प्रवर्तक महर्षि जैमिनि थे। मीमांसा को 'पूर्वमीमांसा' भी कहते हैं। वैदिक कर्मकाण्ड का युक्तिपूर्वक प्रतिपादन करना इसका मुख्य उद्देश्य है। इस कर्मकाण्ड का आधार है वेद। मीमांसा के अनुसार वेद मनुष्य-रचित नहीं, अपि तु अपौरुषेय तथा नित्य हैं। इसलिये वेद पुनरुक्त दोषों से रहित हैं। वेदों का प्रकाश ऋषियों द्वारा हुआ है। वेद की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये मीमांसा-दर्शन में प्रमाणों पर सविस्तर विचार हुआ है। इस दर्शन में यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि सभी ज्ञान स्वतः प्रमाण हैं। पर्याप्त सामग्री रहने से ही ज्ञान की उत्पत्ति होती है। इन्द्रियों के निर्दोष होने से, वस्तुओं के सन्निकट रहने से, तथा अन्य सहकारी कारणों के उपस्थित रहने पर ही प्रत्यक्ष ज्ञान हो पाता है। पर्याप्त सामग्री रहने से अनुमान भी हो जाता है। जब हम भूगोल की कोई पुस्तक पढ़ते हैं तो हमें उस समय शब्द-प्रमाण के द्वारा परोक्ष देशों का भी ज्ञान हो जाता है। इन प्रमाणों द्वारा अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द के द्वारा जो ज्ञान हमें प्राप्त होता है उसकी सत्यता हम निर्विवाद मान लेते हैं, इसके लिये हम किसी अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं करते। यदि ज्ञान में कोई सन्देह रहे तो उसे ज्ञान ही नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ज्ञान में विश्वास का होना परम आवश्यक है। विना विश्वास का ज्ञान यथार्थ ज्ञान नहीं है। वेद के अध्ययन से हमें ज्ञान की प्राप्ति होती है और उसमें हमारा दृढ़ विश्वास भी रहता है। अतः वैदिक ज्ञान अन्य ज्ञानों की तरह स्वयं प्रमाणित हैं। उसमें यदि कहीं कोई सन्देह की उत्पत्ति होती है तो उसका निराकरण मीमांसा की युक्तियों द्वारा होता है। बाधाओं के दूर हो जाने पर वैदिक ज्ञान स्वयं प्रकट हो जाता है। अतः वेद की प्रामाणिकता असन्दिग्ध है।

दर्शनों का संक्षिप्त परिचय

१. मीमांसा-दर्शन

मीमांसा-दर्शन के प्रवर्तक महर्षि जैमिनि थे। मीमांसा को 'पूर्वमीमांसा' भी कहते हैं। वैदिक कर्मकाण्ड का युक्तिपूर्वक प्रतिपादन करना इसका मुख्य उद्देश्य है। इस कर्मकाण्ड का आधार है वेद। मीमांसा के अनुसार वेद मनुष्य-रचित नहीं, अपि तु अपौरुषेय तथा नित्य हैं। इसलिये वेद पुरुषकृत दोषों से रहित हैं। वेदों का प्रकाश ऋषियों द्वारा हुआ है। वेद की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये मीमांसा-दर्शन में प्रमाणों पर सविस्तर विचार हुआ है। इस दर्शन में यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि सभी ज्ञान स्वतः प्रमाण हैं। पर्याप्त सामग्री रहने से ही ज्ञान की उत्पत्ति होती है। इन्द्रियों के निर्दोष होने से, वस्तुओं के सन्निकट रहने से, तथा अन्य सहकारी कारणों के उपस्थित रहने पर ही प्रत्यक्ष ज्ञान हो पाता है। पर्याप्त सामग्री रहने से अनुमान भी हो जाता है। जब हम भूगोल की कोई पुस्तक पढ़ते हैं तो हमें उस समय शब्द-प्रमाण के द्वारा परोक्ष देशों का भी ज्ञान हो जाता है। इन प्रमाणों द्वारा अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द के द्वारा जो ज्ञान हमें प्राप्त होता है उसकी सत्यता हम निर्विवाद मान लेते हैं, इसके लिये हम किसी अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं करते। यदि ज्ञान में कोई सन्देह रहे तो उसे ज्ञान ही नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ज्ञान में विश्वास का होना परम आवश्यक है। विना विश्वास का ज्ञान यथार्थ ज्ञान नहीं है। वेद के अध्ययन से हमें ज्ञान की प्राप्ति होती है और उसमें हमारा दृढ़ विश्वास भी रहता है। अतः वैदिक ज्ञान अन्य ज्ञानों की तरह स्वयं प्रमाणित हैं। उसमें यदि कहीं कोई सन्देह की उत्पत्ति होती है तो उसका निराकरण मीमांसा की युक्तियों द्वारा होता है। बाधाओं के दूर हो जाने पर वैदिक ज्ञान स्वयं प्रकट हो जाता है। अतः वेद की प्रामाणिकता असन्दिग्ध है।

वेद का विधान ही 'धर्म' है। वेद जिसका निषेध करता है वह 'अधर्म' है। विहित कर्मों का पालन तथा निषिद्ध कर्मों का त्याग 'धर्म' कहलाता है। धर्म का आचरण कर्त्तव्य समझ कर निष्काम भाव से करना चाहिये। वेद-विहित कर्मों को किसी फल या पुरस्कार की प्रत्याशा में नहीं करना चाहिये। अपितु उन्हें वेद का आदेश समझकर ही करना चाहिये। नित्य कर्मों के निष्काम आचरण से पूर्वाजित कर्मों का नाश होता है और देहान्त होने पर मुक्ति मिलती है। इस तरह का निष्काम आचरण ज्ञान तथा संयम की सहायता से हो सकता है।

प्राचीन मीमांसा के अनुसार स्वर्ग या विशुद्ध सुख की प्राप्ति ही परम पुरुषार्थ या मोक्ष है। किन्तु आगे चलकर मोक्ष से केवल जन्म-नाश तथा दुःख का अन्त समझा जाने लगा।

आत्मा नित्य है। इसका नाश नहीं हो सकता। वेद के अनुसार स्वर्ग-प्राप्ति के लिए धर्म का आचरण करना चाहिए। यदि आत्मा की मृत्यु हो जाय तो स्वर्ग की कामना या स्वर्ग-प्राप्ति निरर्थक हो जाती है। जैन दार्शनिकों की तरह मीमांसक भी आत्मा की नित्यता के लिए स्वतन्त्र युक्तियाँ देते हैं। मीमांसक चार्वाक के इस मत को (कि आत्मा शरीर से भिन्न नहीं है) नहीं मानते। किन्तु वे यह भी नहीं स्वीकार करते कि चैतन्य आत्मा का स्वरूपलक्षण है। शरीर के साथ आत्मा के संयोग से चैतन्य की उत्पत्ति होती है। विशेषतः जब किसी विषय का ज्ञानेन्द्रियों के साथ संयोग होता है तब चैतन्य की उत्पत्ति होती है। मुक्त आत्मा विदेह होता है तथा चेतना-विहीन होता है। किन्तु उसमें चैतन्य की शक्ति रहती है। आत्मा जब देह से युक्त रहता है तब उसे कई प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो सकते हैं॥

मीमांसा की एक शाखा के प्रवर्त्तक प्रभाकर थे। प्रभाकर-मीमांसा के अनुसार पाँच प्रकार के प्रमाण हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द तथा अर्थापत्ति।

प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द की व्याख्या न्याय तथा मीमांसा

में प्राय: समान है। उपमान-सम्बन्धी केवल एक भिन्नता है। मीमांसा के अनुसार उपमान निम्नोक्त ढंग से होता है। कोई व्यक्ति जिसने हनुमान् की मूर्ति देखी है, जंगल जाता है। वह जंगल में वन्दर देखता है और कहता है कि यह वन्दर हनुमान् के सदृश है। यह उक्ति प्रत्यक्ष के द्वारा प्रमाणित होती है। तत्पश्चात् यदि वह व्यक्ति कहे कि मैंने जो अतीत में हनुमान् देखा है, वह इस वन्दर के समान है तो इसे हम प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं कह सकते। यह ज्ञान 'उपमान' के द्वारा होता है, क्योंकि हनुमान् वहाँ उपस्थित नहीं है। जब हम किसी आपात विरोध का समाधान नहीं कर सकते तो हम अर्थापत्ति की सहायता लेते हैं। यदि कोई मनुष्य दिन में भोजन नहीं करे और वह मोटा होता जाय तो हम 'अर्थापत्ति' से जान पाते हैं कि वह रात में अवश्य भोजन करता है। यदि कोई मनुष्य जीवित हो और घर पर न रहे तो अर्थापत्ति द्वारा ही यह जाना जा सकता है कि वह कहीं अन्यत्र है।

मीमांसा की दूसरी एक शाखा कुमारिल भट्ट ने स्थापित की है। भाट्ट मीमांसा के अनुसार उपर्युक्त पाँच प्रमाणों के अतिरिक्त एक और प्रमाण है। इस छठे प्रमाण को 'अनुपलब्धि' कहते हैं। किसी घर में प्रवेश करने पर तथा चारों तरफ देख लेने पर यदि कोई व्यक्ति कहे कि इस घर में वस्त्र नहीं है तो यह नहीं कहा जा सकता कि वस्त्राभाव का ज्ञान प्रत्यक्ष के द्वारा हुआ; क्योंकि किसी विषय का प्रत्यक्ष तब होता है जब उस विषय का इन्द्रिय के साथ संयोग हो। उपर्युक्त उदाहरण में वस्त्राभाव का ज्ञान हुआ है। अभाव के साथ इन्द्रिय का संयोग नहीं हो सकता। अतः अभाव का ज्ञान अनुपलब्धि के द्वारा ही होता है।

मीमांसादर्शन भौतिक जगत् को मानता है। भौतिक जगत् की सत्ता प्रत्यक्ष से प्रमाणित होती है। मीमांसा वाह्यसत्तावादी है। संसार के अतिरिक्त यह आत्माओं के अस्तित्व को भी मानता है। किन्तु यह किसी जगत् के स्रष्टा, परमात्मा या ईश्वर को नहीं मानता। जगत् अनादि और अनन्त है, न उसकी कभी सृष्टि हुई, न प्रलय होता है। सांसारिक वस्तुओं का

निर्माण आत्माओं के पूर्वार्जित कर्मों के अनुसार भौतिक तत्त्वों से होता है। कर्म एक स्वतन्त्र शक्ति है, जिससे संसार परिचालित होता है।

मीमांसा के अनुसार जब कोई व्यक्ति यज्ञादि कर्म करता है तो एक शक्ति की उत्पत्ति होती है जिसे 'अपूर्व' कहते है। इसी अपूर्व के कारण किसी भी कर्म का फल भविष्य में उपयुक्त अवसर पर मिलता है। अतः इस लोक में किये गये कर्मों के फल का उपभोग परलोक में किया जा सकता है।

२. वेदान्त-दर्शन

वेदान्तदर्शन की उत्पत्ति उपनिषदों से हुई है। उपनिषदों में वैदिक विचारधारा विकास के शिखर पर पहुँच गयी है। अतः उपनिषदों को 'वेदान्त' कहना अर्थात् वेदों का अन्त कहना बहुत ही यथार्थ है। यह कहना उचित होगा कि वेदान्त-दर्शन का उत्तरोत्तर विकास हुआ है। इसके मूल सिद्धान्त को हम पहले पहल उपनिषदों में पाते हैं। फिर उनको बादरायण ने अपने ब्रह्मसूत्र में संकलित किया है। उसके बाद भाष्यकारों ने उन सूत्रों के भाष्य लिखे हैं। भाष्यों में शङ्कर तथा रामानुज के भाष्य अधिक विख्यात हैं। अन्य दर्शनों की अपेक्षा वेदान्त- दर्शन से विशेषतः शांकर वेदान्त से भारतीयों का जीवन बहुत अधिक प्रभावित हुआ है।

ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में ऐसे पुरुष की कल्पना की गयी है जो समूचे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है तथा ब्रह्माण्ड से भी परे है। इस सूक्त में संसार के जड़ तथा चेतन सभी पदार्थों को, मनुष्यों तथा देवताओं को उस परम पुरुष का अंग माना गया है। इस ऐक्यभाव का विकास आगे चलकर उपनिषदों में हुआ है। उपनिषदों में उनका पुरुषरूप नहीं रहा। उपनिषदों में उसे सत्, आत्मन् या ब्रह्मन् कहते हैं। यहाँ सत्, आत्मन् तथा ब्रह्मन् एकार्थक शब्द हैं। संसार इसी सत् से उत्पन्न हुआ है, इसी पर आश्रित है तथा प्रलय होने पर इसी में विलीन हो जाता है। संसार का नानात्व असत्य है। उसकी एकता ही एक-मात्र सत्य है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'नेह नानास्ति किञ्चन' उपनिषदों के ये

वाक्य यह सिद्ध करते हैं कि संसार में एक ही सत्ता है और इसका नानात्व असत्य है। आत्मा या ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है। यह अनन्त ज्ञान तथा अनन्त आनन्द है।

(१) शंकर ने उपनिषदों की व्याख्या विस्तार से की है। उनके अनुसार उपनिषदों में विशुद्ध अद्वैत की शिक्षा दी गयी है। ब्रह्म एकमात्र सत्य है। इसका अर्थ केवल यह नहीं कि ईश्वर के अतिरिक्त और कोई सत्ता नहीं है; वल्कि ईश्वर के अन्तर्गत भी कोई दूसरी सत्ता नहीं है। 'नेह नानाऽस्ति किञ्चन', 'तत् त्वम् असि', 'अहं ब्रह्मास्मि', 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' इत्यादि उक्तियाँ उपनिषद् की उक्तियाँ हैं। यदि ब्रह्म के अन्तर्गत अनेक सत्ताओं का समावेश माना जाय तो इन उपनिषदों की उक्तियों की समुचित व्याख्या नहीं की जा सकती। यह सही है कि कुछ उपनिषदों में इस वात का उल्लेख है कि ब्रह्म या आत्मा के द्वारा संसार की सृष्टि हुई है। किन्तु अन्य उपनिषदों में, यहाँ तक कि वेदों में भी, संसार की सृष्टि की तुलना इन्द्रजाल से की गयी है। ईश्वर को मायावी माना है जो अपनी माया-शक्ति से संसार की रचना करता है।

शंकर का यह कथन है कि यदि पारमार्थिक सत्ता एक है तो संसार की सृष्टि वस्तुतः सृष्टि नहीं है। ईश्वर अपनी माया-शक्ति द्वारा संसार का इन्द्रजाल रचता है। साधारण बुद्धि वालों के लिये मायावाद को बोधगम्य बनाने के निमित्त शंकर दैनिक जीवन के साधारण भ्रमों की सहायता लेते हैं। कभी-कभी रस्सी साँप के रूप में मालूम पड़ती है। सीप को देखकर चाँदी का धोखा हो जाता है। ऐसे अनुभव 'भ्रम' कहलाते हैं। सभी प्रकार की भ्रान्तियों में एक अधिष्ठान रहता है जो सत्य होता है। ऊपर के उदाहरण में सीप तथा रस्सी ऐसे अधिष्ठान हैं। अज्ञान के कारण ऐसे अधिष्ठानों पर अन्य वस्तुओं का अध्यास या आरोप होता है। अध्यस्त वस्तु सत्य नहीं होती। ऊपर के उदाहरणों में साँप तथा रजत अध्यस्त हैं। अज्ञान से अधिष्ठान का केवल आवरण ही नहीं होता, अपितु विक्षेप भी होता है। विश्व की अनेकरूपता की

व्याख्या इसी प्रकार की जा सकती है। ब्रह्म एक है, अतः अविद्या के कारण उसमें अनेक की प्रतीति होती है। अविद्या के कारण हम ब्रह्म का सच्चा स्वरूप नहीं जान पाते। हम उसे नाना रूपों में देखते हैं। बाजीगर एक मुद्रा को कई मुद्राओं में परिणत हुआ दिखलाता है। इस भ्रमात्मक प्रतीति का कारण जादूगर के लिए तो उसकी जादू दिखलाने की शक्ति है। किन्तु हमारे लिये उसका कारण हमारा अज्ञान है। अज्ञानवश हम एक मुद्रा को कई मुद्राओं के रूप में देखते हैं। इसी प्रकार यद्यपि ब्रह्म एक है. फिर भी माया-शक्ति के कारण उसके अनेक रूप दिखायी पड़ते हैं। साथ ही साथ हमारा अज्ञान भी ब्रह्म की अनेकरूपता का कारण है। हमें यदि अज्ञान न हो तो हम ब्रह्म की अनेकरूपता के भ्रम में नहीं पड़ सकते। अतः माया और अविद्या वस्तुतः एक हैं। दृष्टि-भेद से दो मालूम पड़ती हैं। यही कारण है कि माया को अज्ञान भी कहते हैं।

कहा जाता है कि शंकर विशुद्ध अद्वैत का प्रतिपादन नहीं कर सके, क्योंकि वे ईश्वर तथा माया जैसे दो तत्त्वों को मानते हैं। किन्तु शंकर के अनुसार माया ईश्वर की ही एक शक्ति है। जो सम्बन्ध अग्नि तथा उसकी जलाने की शक्ति में है, वही सम्बन्ध ईश्वर तथा माया में है।

उपर्युक्त कथन से मालूम पड़ता है कि ईश्वर माया-शक्ति से विशिष्ट है; किन्तु ऐसा कहना भी बहुत समीचीन नहीं है। यदि संसार की अनेकरूपता को सत्य माना जाय तथा ईश्वर को संसार की दृष्टि से देखा जाय तो अवश्य ही ईश्वर की प्रतीति स्रष्टा या मायावी के रूप में होगी। किन्तु जैसे ही संसार के मिथ्यात्व का ज्ञान हो जाता है, वैसे ही ईश्वर को स्रष्टा के रूपों में देखना अर्थहीन हो जाता है। जो व्यक्ति जादूगर के खेल से धोखा नहीं खाता, उसके छल को समझता है, उसके लिये वह जादूगर जादूगर नहीं है। उसके लिये उस जादूगर के पास धोखा देने की कला भी नहीं है। इसी प्रकार जो मनुष्य विश्व को पूर्णतया ब्रह्ममय देखता है उसके लिये ब्रह्म में माया या सृष्टि-शक्ति नहीं रह जाती।

उपर्युक्त विचारों को युक्तिपूर्ण बनाने के लिये शंकर दृष्टियों का दो प्रकार से विभेद करते हैं—१. व्यावहारिक दृष्टि तथा २. पारमार्थिक दृष्टि। १. व्यावहारिक दृष्टि साधारण मनुष्यों के लिये है जो संसार को सत्य मानते हैं। हमारा व्यावहारिक जीवन इसी दृष्टि पर निर्भर है। इसके अनुसार संसार सत्य है। ईश्वर इसका सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् स्रष्टा, रक्षक तथा संहारक है। इस दृष्टि से ईश्वर के अनेक गुण हैं। अर्थात् वह सगुण है। शंकर इस दृष्टि के अनुसार ब्रह्म को सगुण ब्रह्म या ईश्वर कहते हैं। इसके अनुसार आत्मा एक शरीरबद्ध सत्ता है। इसमें अहं भाव की उत्पत्ति होती है।

२. पारमार्थिक दृष्टि ज्ञानियों की है जो यह समझ जाते हैं कि संसार मायिक है और ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई सत्ता नहीं है। संसार की असत्यता का ज्ञान हो जाने पर ब्रह्म को स्रष्टा नहीं माना जा सकता। ब्रह्म के लिये सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्त्व आदि गुणों का कोई अर्थ नहीं रह जाता। ब्रह्म में स्वगत भेद भी नहीं रहता। इस पारमार्थिक दृष्टि के अनुसार ब्रह्म निर्विकल्प तथा निर्गुण हो जाता है। इसे निर्गुण ब्रह्म कहते हैं। इसके अनुसार शरीर भी भ्रान्तिमूलक हो जाता है और आत्मा तथा ब्रह्म में कोई भेद नहीं रह जाता।

यह पारमार्थिक दृष्टि अविद्या के दूर होने पर ही सम्भव है। अविद्या का नाश वेदान्त का ज्ञान होने पर ही होता है। अविद्या को दूर करने के लिये मनुष्य में इन्द्रिय तथा मन का संयम, भोग्य वस्तुओं से विराग, वस्तुओं की अनित्यता का ज्ञान, तथा मुमुक्षुत्व अर्थात् मुक्ति के लिये प्रबल इच्छा का होना आवश्यक है। तत्पश्चात् ऐसे व्यक्ति को किसी योग्य गुरु से वेदान्त का श्रवण करना चाहिये और उसके सिद्धान्तों का मनन तथा निदिध्यासन करना चाहिये। तत्पश्चात् शिष्य के योग्य हो जाने पर गुरु उसे कहता है—'तत् त्वम् असि' (तुम ब्रह्म हो)। गुरु की इस उक्ति का वह मनन करता है और अन्त में उसे साक्षात् ज्ञान हो जाता है कि 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म

हूँ)। यही पूर्ण ज्ञान है और इसी को 'मोक्ष' कहते हैं। ऐसा ज्ञानी तथा मुक्त जीव शरीर तथा संसार में रहकर भी अनासक्त रहता है। सांसारिक वस्तुओं को वह असत्य समझता है। उनके प्रति उसे कोई आसक्ति नहीं होती। वह संसार में रहकर भी संसार से विरक्त रहता है। किसी प्रकार की आसक्ति या किसी प्रकार की भ्रान्ति उसकी बुद्धि को विचलित या प्रभावित नहीं कर सकती। मिथ्या ज्ञान के कारण वह पहले अपने को ब्रह्म से पृथक् समझता था। मिथ्या ज्ञान के दूर होने पर उसके दुःखों का भी अन्त हो जाता है। जिस तरह ब्रह्म आनन्दस्वरूप है, उसी तरह मुक्त आत्मा भी वैसा ही हो जाता है।

(२) रामानुज उपनिषदों की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—ईश्वर ही पारमार्थिक सत्ता है। अचित् या अचेतन प्रकृति और चित् या चेतन आत्मा ईश्वर के ही अंश हैं। वह सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् है। इसमें अच्छे-अच्छे सभी गुण वर्तमान हैं। ईश्वर में अचित् सर्वदा वर्तमान रहता है। ईश्वर ने अचित् से इस संसार की उसी प्रकार उत्पत्ति की है जिस प्रकार मकड़ा अपने शरीर से अपने जाल की सृष्टि करता है। आत्मा भी सर्वदा ईश्वर में वर्तमान रहते हैं। वे अणु हैं। उनका स्वरूप स्वभावतः चिन्मय है। वे स्वयं प्रकाशमान हैं। कर्मानुसार प्रत्येक आत्मा को शरीर-धारण करना पड़ता है। शरीरयुक्त होना ही बन्धन है। आत्मा का शरीर से पूरा-पूरा सम्बन्ध-विच्छेद 'मोक्ष' कहलाता है। अज्ञान से कर्म की उत्पत्ति होती है। कर्म ही बन्धन का कारण है। बन्धन की अवस्था में आत्मा अपने स्वरूप को नहीं पहचान सकता। वह शरीर को ही अपना स्वरूप समझता है। अतः उसके आचरण भी उसी प्रकार के होते हैं। वह इन्द्रिय-सुख के लिये लालायित रहता है। वह संसार में आसक्त हो जाता है और इसी आसक्ति के कारण उसे बार-बार जन्म ग्रहण करना पड़ता है। वेदान्त से मनुष्य को ज्ञान होता है कि मनुष्य का आत्मा उसके शरीर से भिन्न है। यह ईश्वर का एक अंश है, अतः इसका अस्तित्व ईश्वर पर ही निर्भर है। अनासक्त

भाव से वेदविहित धर्मों का आचरण करने से कर्मों की सञ्चित शक्ति नष्ट हो जाती है और अनन्त ज्ञान प्राप्त होता है। साथ-साथ यह ज्ञान भी प्राप्त होता है कि ईश्वर ही एकमात्र सत्ता है जो प्रेम के योग्य है। मनुष्य अहर्निश ईश्वर की भक्ति करने लगता है तथा अपने को ईश्वर में अर्पित कर देता है। ईश्वर भक्ति से प्रसन्न होते हैं और भक्त को बन्धन से मुक्त कर देते हैं। मुक्त आत्मा देहान्त के बाद कभी जन्म ग्रहण नहीं करता। वह ईश्वर-सदृश हो जाता है। ईश्वर के समान उसका चैतन्य भी विशुद्ध तथा दोष-रहित हो जाता है। किन्तु ये एक नहीं हो जाते, क्योंकि आत्मा अणु तथा ईश्वर विभु है। अणु विभु नहीं हो सकता।

रामानुज के अनुसार ईश्वर ही एकमात्र सत्ता है। ईश्वर के अतिरिक्त और कोई सत्ता नहीं है। किन्तु ईश्वर के अन्तर्गत अनेक सत्ताएँ हैं। संसार की सृष्टि सत्य है। अतः रामानुजीय दर्शन को विशुद्ध अद्वैत नहीं कह सकते। उसे विशिष्टाद्वैत कहते हैं। यह अद्वैतवाद इसलिये है कि यह ईश्वर को ही एकमात्र सर्वव्यापी स्वतन्त्र सत्ता मानता है। किन्तु ईश्वर अन्य सत्ताओं (= चिन्मय आत्माओं) से तथा अचित् पदार्थों से विशिष्ट या समन्वित है। इसलिये इसे 'विशिष्टाद्वैत' कहते हैं॥

३. सांख्य-दर्शन

सांख्य-दर्शन द्वैतवादी है। कहा जाता है कि महर्षि कपिल इसके प्रवर्तक थे। सांख्य के अनुसार दो प्रकार के तत्त्व हैं—पुरुष और प्रकृति। अपने-अपने अस्तित्व के लिये पुरुष और प्रकृति परस्पर निरपेक्ष हैं। पुरुष चेतन है। चैतन्य इसका आगन्तुक गुण नहीं, अपितु स्वरूप ही है। वस्तुतः पुरुष शरीर मन तथा इन्द्रिय से भिन्न है। यह नित्य है। यह सांसारिक वस्तुओं तथा व्यापारों का अवलोकन अलग से ही करता है। यह स्वयं न तो कोई कार्य करता है न इसमें कोई परिवर्तन ही होता है। जिस तरह कुर्सी पलंग आदि भौतिक वस्तुओं के उपभोग के लिये मनुष्य भोक्ता है

उसी तरह प्रकृति के परिणामों के उपभोग के लिये भोक्ताओं की आवश्यकता है। ये भोक्ता पुरुष हैं जो प्रकृति से भिन्न हैं। प्रत्येक जीव के शरीर से सम्पृक्त एक-एक पुरुष हैं। जिस समय कुछ मनुष्य सुखी पाये जाते हैं उस समय कुछ मनुष्य दुःखी भी रहते हैं। कुछ का देहान्त हो जाता है, फिर भी कुछ जीवित रहते हैं। अतः पुरुष एक नहीं, अनेक हैं।

प्रकृति इस संसार का आदि कारण है। यह एक नित्य और जड़ वस्तु है। यह सर्वदा परिवर्तनशील है। इसका लक्ष्य पुरुष के उद्देश्य-साधन के सिवा और कुछ नहीं है। सत्त्व, रजस् तथा तमस्—ये प्रकृति के तीन गुण या उपादान हैं। सृष्टि के पहले ये तीन गुण साम्यावस्था में रहते हैं। इन्हें साधारण अर्थ में गुण नहीं समझना चाहिये। ये विशेष अर्थ में 'गुण' कहलाते हैं। जिस प्रकार कोई तिगुनी रस्सी तीन डोरियों की वनी होती है, उसी प्रकार प्रकृति तीन तरह के मौलिक तत्त्वों से वनी हुई है। संसार के विषय सुख-दुःख या मोह के जनक हैं। वस्तुओं के प्रति सुख-दुःख या विषाद होने के कारण हम वस्तुओं के तीन गुणों का अनुमान करते हैं। मीठे भोजन में एक ही व्यक्ति को कभी रुचि होती है, कभी अरुचि या कभी उदासीन भाव (रुचि तथा अरुचि दोनों का अभाव)। एक ही व्यंजन में किसी व्यक्ति को अच्छा स्वाद मिलता है, किसी को बुरा स्वाद मिलता है तथा किसी को कोई स्वाद नहीं मिलता। कारण तथा कार्य में वस्तुतः ऐक्य होता है। कार्य कारण का विकसित रूप है। तिल आदि विशेष प्रकार के बीजों का विकसित रूप तैल है। संसार के सभी विषय परिणाम हैं जिनके कारण सुख दुःख या विषाद का अनुभव होता है।

हम ऊपर कह आये हैं कि प्रकृति जिसका नाम प्रधान है, सांसारिक वस्तुओं का मूल कारण है। अतः सत्कार्यवाद सिद्धान्त के अनुसार उसमें सुख-दुःख तथा विषाद के कारण अवश्य होंगे। सुख-दुःख तथा विषाद का कारण क्रमशः सत्त्व, रजस् तथा तमस् हैं। इस तरह प्रकृति के अन्तर्गत सत्त्व, रजस् तथा तमस् का अस्तित्व प्रतिपादित होता है। सत्त्व प्रकाशक है।

है, रजस् गतिशील है और कर्म कराता है, तमस् अचल तथा रणक या आवरणकारी है।

पुरुष तथा प्रकृति के संयोग (=वासना के बन्धन) से सृष्टि का प्रारम्भ होता है। प्रकृति के तीन गुणों की साम्यावस्था पुरुष के संयोग होने से नष्ट होती है।

जगत् की सृष्टि इस क्रम से होती है—सत्त्व का आधिक्य होने से प्रकृति से महत् की उत्पत्ति होती है, महत् इस विश्व का महान् अंकुर है। पुरुष का चैतन्य-प्रकाश महत् के सत्त्व गुण पर पड़ता है, अतः महत् भी चेतन मालूम पड़ता है। इस घटना के कारण मालूम पड़ता है कि प्रकृति मानों सुप्तावस्था से जाग्रत् अवस्था में आयी हो। इसी के साथ-साथ चिन्तन का भी प्रादुर्भाव होता है। अतः महत् को 'बुद्धि' भी कहते हैं। यही जगत् की सृष्टिकारिणी बुद्धि है। बुद्धि का रूपान्तर अहंकार में होता है। 'अहंकार' अहंभाव या अभिमान को कहते हैं। आत्मा अभिमान के संयोग होने से अपने को 'कर्त्ता' समझता है। किन्तु वस्तुतः आत्मा स्वयं कर्त्ता नहीं है। अहंकार में जब सत्त्व का बाहुल्य होता है तो उससे पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा मन की सृष्टि होती है। मन उभयेन्द्रिय है; क्योंकि इसके द्वारा ज्ञान तथा कर्म दोनों सम्भव होते हैं। अहंकार में जब तमस् की प्रचुरता रहती है तब उससे तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—पाँच 'तन्मात्रा' हैं। पाँच तन्मात्राओं से पाँच महाभूतों की उत्पत्ति होती है। शब्द से आकाश, स्पर्श से वायु, रस से जल, रूप से अग्नि तथा गन्ध से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार सांख्य में सब मिला कर २५ तत्त्व हैं। इसमें पुरुष को छोड़कर सभी तत्त्व प्रकृति के अन्तर्गत हैं, क्योंकि सभी भौतिक तत्त्वों का मूल कारण प्रकृति ही है। प्रकृति का कोई कारण नहीं है। महत्, अहंकार तथा पाँच तन्मात्रा अपने-अपने कारणों के परिणाम या कार्य भी हैं और अपने कार्यों के कारण भी हैं। ग्यारह इन्द्रियाँ तथा पाँच महाभूत अपने-अपने कारणों के केवल कार्य ही हैं। ये स्वयं किसी ऐसे परिणाम के कारण नहीं हैं

जिनका स्वरूप इनसे भिन्न हो। पुरुष न तो किसी का कारण है, न किसी का परिणाम ही है। अर्थात् पुरुष न तो प्रकृति है, न विकृति।

पुरुष निरपेक्ष तथा नित्य है। किन्तु अविद्या के कारण यह अपने को शरीर इन्द्रिय तथा मन से पृथक् नहीं समझता। पुरुष और प्रकृति में अवि-वेक (अर्थात् विभेद न करने) के कारण हमें दुःखों से पीड़ित होना पड़ता है। शरीर के घायल होने से या अस्वस्थ होने से हम अपने को घायल या अस्वस्थ समझते हैं। हमारे मनोगत सुख तथा दुःख आत्मा को भी प्रभावित करते हैं, क्योंकि हम मन तथा आत्मा के भेद को भली-भाँति समझ नहीं पाते। ज्यों ही हमें विवेक होता है अर्थात् ज्यों ही हम पुरुष का शरीर, इन्द्रिय, मन, अहंकार तथा बुद्धि से भेद समझने लगते हैं, त्यों ही हमारे सुखों तथा दुःखों का अन्त हो जाता है। तब पुरुष का संसार के साथ कोई अनुराग नहीं रहता और यह संसार के घटना-क्रम का साक्षी या द्रष्टा मात्र रह जाता है। इस अवस्था को 'मुक्ति' या 'कैवल्य' कहते हैं। शरीर रहते हुए भी मुक्त पुरुष इससे ममत्व हटा लेते हैं। इसे 'जीवन्मुक्ति' कहते हैं। देहान्त के बाद जो मुक्त पुरुष का शरीर भी नष्ट हो जाता है उसे 'विदेह-मुक्ति' कहते हैं।

केवल विवेक-ज्ञान होने से ही हमें आत्म-ज्ञान नहीं होता और न हम अपने दुःखों से ही पूर्णतया मुक्त हो पाते हैं। इसके लिए सतत आध्यात्मिक अभ्यास, साधना की आवश्यकता होती है। इस अभ्यास के लिये तत्त्व-ज्ञान के प्रति पूरी श्रद्धा तथा उसके अनवरत चिन्तन की आवश्यकता है। विवेक-ज्ञान होने पर हम पुरुष को विशुद्ध चैतन्य एवं तन-मन, देश-काल तथा कार्य-कारण से पूर्णतया पृथक् समझने लगते हैं। पुरुष अनादि और अनन्त हैं। यह निरपेक्ष अमर तथा नित्य है। आत्मज्ञान के लिए जिस साधना की आवश्यकता है उसका साङ्गोपाङ्ग वर्णन योगदर्शन में किया जायगा।

सांख्य-दर्शन निरीश्वरवादी है। इसके अनुसार ईश्वर का अस्तित्व किसी प्रकार सिद्ध नहीं किया जा सकता। संसार की सृष्टि के लिए ईश्वर का

अस्तित्व आवश्यक नहीं है, क्योंकि पूरे संसार के निर्माण के लिए प्रकृति ही पर्याप्त है। शाश्वत तथा अपरिवर्तनशील ईश्वर जगत् की सृष्टि का कारण नहीं हो सकता; क्योंकि कारण तथा परिणाम वस्तुतः अभिन्न होते हैं। कारण ही परिणाम में परिणत हो जाता हैं। ईश्वर संसार में परिणत नहीं हो सकता, क्योंकि ईश्वर परिवर्तनशील नहीं माना जाता।

सांख्य के भाष्यकार विज्ञान-भिक्षु यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि सांख्य ईश्वर के अस्तित्व को एक विशिष्ट पुरुष के रूप में मानता है। उनका कथन है कि ईश्वर प्रकृति का द्रष्टा मात्र है, स्रष्टा नहीं॥

४. योग-दर्शन

महर्षि पतञ्जलि योगदर्शन के प्रवर्तक है। योग तथा सांख्य में बहुत अधिक साम्य है। योग सांख्याभिमत प्रमाणों और तत्त्वों को मानता है। यह सांख्य के २५ तत्त्वों के साथ-साथ ईश्वर को भी मानता है। योग-दर्शन का प्रमुख विषय योगाभ्यास है। सांख्य के अनुसार मोक्ष-प्राप्ति का प्रमुख साधन विवेक-ज्ञान है उसकी प्राप्ति प्रधानतः योगाभ्यास से ही हो सकती है। चित्तवृत्ति के निरोध को 'योग' कहते हैं। चित्त की पाँच प्रकार की भूमियाँ हैं। पहली भूमि 'क्षिप्त' कहलाती है; क्योंकि उसमें चित्त सांसारिक वस्तुओं में क्षिप्त अर्थात् चंचल रहता है। दूसरी भूमि 'मूढ़' कहलाती है, क्योंकि उसमें चित्त की अवस्था निद्रा के सदृश अभिभूत रहती है। तीसरी भूमि 'विक्षिप्त' कहलाती है। यह क्षिप्त से अपेक्षाकृत शान्त अवस्था है, किन्तु बिल्कुल शान्त नहीं है। इन चित्तभूमियों में योगाभ्यास संभव नहीं है। चौथी तथा पाँचवी भूमियाँ 'एकाग्र' तथा 'निरुद्ध' कहलाती हैं। एकाग्र अवस्था में चित्त इसी ध्येय में निविष्ट या केन्द्रीभूत रहता है। निरुद्धावस्था में चिन्तन का भी अन्त हो जाता है। 'एकाग्र' तथा 'निरुद्ध' योगाभ्यास में सहायक हैं।

योग दो प्रकार का होता है—सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात। सम्प्रज्ञात' उस योग या समाधि को कहते हैं जिसमें चित्त ध्येय विषय में पूर्णतया तन्मय हो जाता है, जिससे चित्त को उस विषय का पूर्ण तथा स्पष्ट ज्ञान होता है।

'अम्प्रज्ञात' उस योग को कहते हैं जिसमें मन की सभी क्रियाओं का निरोध हो जाता है। फलस्वरूप, ध्येय विषय के साथ-साथ सभी विषयों के ज्ञान का लोप हो जाता है। केवल स्वप्रकाश आत्मा ही अवशिष्ट रह जाता है।

योगाभ्यास के आठ अंग हैं, जो योगाङ्ग कहलाते हैं–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का अभ्यास करना ही **'यम'** है। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान—इन आचारों का अभ्यास **'नियम'** कहलाता है। सुखमय शारीरिक स्थिति को **'आसन'** कहते हैं। नियन्त्रित रूप से श्वास-ग्रहण, धारण तथा त्याग को **'प्राणायाम'** कहते हैं। इन्द्रियों को विषयों से हटाने का नाम **'इन्द्रिय-संयम'** अर्थात् **'प्रत्याहार'** कहलाना है। चित्त को शरीर के अन्दर या बाहर की किसी वस्तु पर केन्द्रीभूत करने को **'धारणा'** कहते हैं। किसी विषय का सुदृढ़ तथा अविराम चिन्तन **'ध्यान'** कहलाता है। **'समाधि'** चित्त की वह अवस्था है जिसमें ध्यानशील चित्त ध्येय विषय में तल्लीन हो जाता है।

योग-दर्शन को 'सेश्वर सांख्य' कहते हैं और कपिलकृत सांख्य को 'निरीश्वर सांख्य'। योग के अनुसार चित्त की एकाग्रता तथा आत्म ज्ञान के लिए ध्यान का सर्वोत्तम विषय ईश्वर ही है। ईश्वर पूर्ण, नित्य, सर्वव्यापी सर्वज्ञ तथा सर्वदोषरहित है। योग के अनुसार ईश्वर के अस्तित्व के लिये ये प्रमाण दिये जाते हैं—जहाँ तारतम्य है, वहाँ सर्वोच्च का होना नितान्त आवश्यक है। ज्ञान में नैयून्याधिक्य है। अतः पूर्ण ज्ञान तथा सर्वज्ञता का होना असंदिग्ध है। जो पूर्ण ज्ञानी या सर्वत्र है वही ईश्वर है। प्रकृति और पुरुष के संयोग से संसार की सृष्टि का प्रारम्भ होता है। संयोग का अन्त होने पर प्रलय होता है। पारस्परिक संयोग का वियोग पुरुष और प्रकृति के लिए स्वाभाविक नहीं है। अतः एक पुरुष-विशेष का अस्तित्व परमावश्यक है, जो पुरुषों के पाप तथा पुण्य के अनुसार पुरुष तथा प्रकृति में संयोग या वियोग स्थापित करता है॥

५. न्याय-दर्शन

न्याय-दर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम हैं। न्याय वस्तुवादी दर्शन है। इसका प्रतिपादन विशेषतः युक्तियों द्वारा हुआ है। इसके अनुसार चार प्रमाण हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द।

१. वस्तुओं के साक्षात् या अपरोक्ष ज्ञान को 'प्रत्यक्ष' कहते हैं। इसकी उत्पत्ति वस्तु तथा ज्ञानेन्द्रिय के संयोग से होती है। प्रत्यक्ष ज्ञान बाह्य या आन्तर हो सकता है। जिस विषय का प्रत्यक्ष होता है उसका संयोग यदि आँख, कान जैसी बाह्य इन्द्रियों से हो तो उसे 'बाह्य प्रत्यक्ष' कहते हैं। किन्तु यदि केवल मन से संयोग हो तो उसे आन्तर या 'मानस प्रत्यक्ष' कहते हैं।

२. 'अनुमान' केवल इन्द्रिय के द्वारा नहीं होता। यह किसी ऐसे लिङ्ग या साधन के ज्ञान पर निर्भर करता है, जिससे अनुमित वस्तु या साध्य का एक नियत सम्बन्ध रहता है। साधन तथा साध्य के नियत या अव्यभिचारी सम्बन्ध को 'व्याप्ति' कहते हैं। अनुमान में कम से कम तीन वाक्य होते हैं तथा अधिक से अधिक तीन पद होते हैं। इन पदों को पक्ष, साध्य तथा साधन या लिङ्ग कहते हैं। 'पक्ष' उसे कहते हैं जिसमें लिङ्ग का अस्तित्व मालूम है और साध्य का अस्तित्व प्रमाणित करना है। 'साध्य' उसे कहते हैं जिसका अस्तित्व पक्ष में सिद्ध करना है। 'साधन' उसे कहते हैं जिसका साध्य के साथ नियत साहचर्य हो और जो पक्ष में वर्तमान रहे। जैसे—'यह पर्वत वह्निमान् है, क्योंकि यह धूमवान् है। जो धूमवान् है वह वह्निमान् है।' यहाँ पर्वत पक्ष है वह्नि साध्य है, तथा धूम साधन है।

३. उपमान में संज्ञा तथा संज्ञी के सम्बन्ध का ज्ञान होता है। सादृश्य-ज्ञान के द्वारा जो संज्ञा या संज्ञी अर्थात् नाम और नामी का सम्बन्ध स्थापित होता है उसे उपमान कहते हैं। उदाहरणार्थ यदि गवय का केवल नाम ज्ञात रहे तथा यह विदित रहे कि गवय का आकार-प्रकार गाय के सदृश होता है तो गवय को अरण्य में प्रथम बार देखकर भी समझा जा सकता है कि यह गवय है। ऐसा ज्ञान उपमान द्वारा होता है।

४. आप्त अर्थात् विश्वास योग्य पुरुषों की युक्तियों से अज्ञात वस्तुओं के सम्बन्ध में जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे 'शब्द' कहते हैं। ऐतिहासिक कहते हैं कि महाराज अशोक भारत के सम्राट् थे। इस कथन को हम स्वीकार करते हैं, यद्यपि हमारा अशोक के साथ कोई साक्षात्कार नहीं हुआ। यहाँ शब्द ही प्रमाण है।

नैयायिक इन चार के अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं मानते; क्योंकि उनके अनुसार अन्य सभी प्रमाण इन्हीं चार प्रमाणों के अन्तर्गत हैं।

न्याय-दर्शन के अनुसार अधोलिखित विषय 'प्रमेय' कहे जाते हैं। आत्मा, देह, इन्द्रियां तथा उनके द्वारा ज्ञातव्य विषय, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्य-भाव, फल, दुःख, तथा अपवर्ग।

न्याय का भी लक्ष्य आत्मा को शरीर इन्द्रियों तथा सांसारिक विषयों के बन्धन से मुक्त करना है। आत्मा शरीर और मन से भिन्न है। शरीर का निर्माण भौतिक तत्त्वों के सम्मिश्रण से होता है। मन अणु है सूक्ष्म, नित्य तथा अविभाज्य है। मन आत्मा के लिए सुख दुःख आदि मानसिक गुणों के अनुभव के निमित्त एक करण है। अतः मन को अन्तरिन्द्रिय कहते हैं। जब आत्मा का इन्द्रियों के द्वारा किसी वस्तु से सम्बन्ध होता है तो उसमें चैतन्य का संचार होता है। चैतन्य आत्मा का कोई नित्य गुण नहीं, अपि तु आगन्तुक गुण है। जब मन और इन्द्रियों के द्वारा आत्मा का किसी विषय से सम्बन्ध होता है तभी उस विषय का चैतन्य या ज्ञान आत्मा को होता है। मुक्त होने पर आत्मा इन सम्पर्कों से रहित हो जाता है। ज्ञान भी लुप्त हो जाता है। मन परमाणु के सदृश सूक्ष्मतम है; किन्तु आत्मा विभु, अमर तथा नित्य है। आत्मा ही सांसारिक विषयों में आसक्त या उससे अनासक्त तथा राग या द्वेष करता है।

कर्मों के अच्छे बुरे फलों का उपभोग इसी को करना पड़ता है। मिथ्या ज्ञान, राग-द्वेष तथा मोह से प्रेरित होकर आत्मा अच्छा या बुरा कर्म करता है। उन्हीं के कारण आत्मा को पापमय या दुःखमय (दुखग्रस्त) होना पड़ता

है। उन्हीं के कारण वह जन्म-मरण के चक्र में पड़ता है। तत्त्व-ज्ञान के द्वारा जब सभी दुःखों का अन्त हो जाता है तो मुक्ति प्राप्त होती है। इस अवस्था को 'अपवर्ग' कहते हैं। कुछ दार्शनिक कहते हैं कि यह अवस्था आनन्दमय होती है; किन्तु नैयायिक इसे नहीं मानते। मुक्त होने पर आत्मा तो चैतन्य-हीन हो जाता है। तब सुख या दुःख किसी की भी अनुभूति नहीं रह सकती।

नैयायिक ईश्वर के अस्तित्व को अनेक युक्तियों से सिद्ध करते हैं। ईश्वर संसार के सर्जन, पोषण तथा संहार के आदिप्रवर्तक हैं। ईश्वर ने विश्व का निर्माण शून्य से नहीं किया, अपि तु परमाणु, दिक्-काल, आकाश, मन तथा आत्मा आदि उपादानों से किया है। जीव अपने-अपने पुण्यमय या पापमय कर्मों के अनुसार सुख या दुःख का उपभोग कर सके, इसके लिये संसार की सृष्टि हुई है।

ईश्वर के ः स्तित्व को प्रमाणित करने के लिये इस दर्शन में अधोलिखित युक्ति दी जाती है—पर्वत, समुद्र, सूर्य, चन्द्र आदि संसार के जितने पदार्थ हैं सभी परमाणुओं में विभाजित हो सकते हें। अतः उन पदार्थों का निर्माण किसी कर्त्ता के द्वारा अवश्य हुआ है। मनुष्य तो संसार का निर्माता हो नहीं सकता; क्योंकि उसकी बुद्धि तथा शक्ति सीमित है। वह परमाणु जैसी सूक्ष्म तथा अदृश्य वस्तुओं का सम्मिश्रण नहीं कर सकता। अतः इस संसार का निर्माता अवश्य कोई चेतन आत्मा है जो सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, तथा संसार की नैतिक व्यवस्था का संरक्षक है। वही ईश्वर है। ईश्वर ने इस संसार को अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये नहीं, बल्कि अन्य प्राणियों के कल्याण के लिये बनाया है। इस का यह तात्पर्य नहीं है कि संसार में केवल सुख ही सुख है एवं दुःख का सर्वथा अभाव है। मनुष्य को कर्म करने की स्वतन्त्रता है। अतः वह अच्छे या बुरे—दोनों प्रकार के कर्म कर सकता है तथा तदनुसार सुख या दुःख का भागी होता है। किन्तु परमात्मा की दया तथा उनके मार्ग-दर्शन से मनुष्य अपने आत्मा तथा विश्व का तात्त्विक ज्ञान प्राप्त कर सकता है और तत्पश्चात् अपने दुःखों से मुक्ति पा सकता है॥

६. वैशेषिक-दर्शन

वैशेषिक-दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कणाद थे। उनका दूसरा नाम उलूक था। न्याय-दर्शन के साथ वैशेषिक दर्शन की बहुत समानता है, इसका भी उद्देश्य प्राणियों को अपवर्ग प्राप्त कराना है। यह सभी प्रमेयों को अर्थात् संसार की सभी वस्तुओं को द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय तथा अभाव—इन सात पदार्थों में विभक्त करता है।

द्रव्य गुणों तथा कर्मों के आश्रय हैं तथा उनसे भिन्न हैं। द्रव्य नौ प्रकार के हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा तथा मन। इनमें प्रथम पाँच भौतिक हैं। उनके गुण क्रमशः गन्ध, रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु क्रमशः चार प्रकार के परमाणुओं से बने हुए हैं। ये परमाणु भौतिक हैं। इनका विभाजन तथा नाश नहीं हो सकता। परमाणुओं की सृष्टि नहीं होती। वे शाश्वत हैं। किसी भौतिक पदार्थ के सबसे छोटे-छोटे टुकड़ों को, जिनका और अधिक विभाजन नहीं हो सकता, 'परमाणु' कहते हैं। आकाश, दिक् तथा काल अप्रत्यक्ष द्रव्य हैं। ये एक-एक हैं, नित्य तथा विभु हैं। मन नित्य है, किन्तु विभु नहीं। यह परमाणु की तरह निरवयव है। यह अन्तरिन्द्रिय है। यह बुद्धि, भावना तथा संकल्प जैसी मानसिक क्रियाओं का सहायक होता है। मन से एक साथ एक ही अनुभूति हो सकती है, क्योंकि यह परमाणु की तरह अत्यन्त सूक्ष्म होता है। आत्मा शाश्वत तथा सर्वव्यापी द्रव्य है। यह चैतन्य की सभी अवस्थाओं का आश्रय है। मनुष्य को मन के द्वारा अपने आत्मा की अनुभूति होती है। सांसारिक वस्तुओं के निर्माता के रूप में ईश्वर का अस्तित्व अनुमान से सिद्ध होता है।

'गुण' उसे कहते हैं जो केवल द्रव्यों में पाया जाता है। गुण को गुण नहीं होता, न उसे कर्म ही होता है। द्रव्य निरपेक्ष हैं, किन्तु गुण को द्रव्य की अपेक्षा रहती है। गुण कुल चौवीस प्रकार के हैं—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व,

स्नेह, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, संस्कार, धर्म तथा अधर्म।

'कर्म' गत्यात्मक होता है। गुण के सदृश यह भी केवल द्रव्यों में पाया जाता है। कर्म पाँच प्रकार के होते हैं—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण तथा गमन।

किसी वर्ग के साधारण धर्म को **'सामान्य'** कहते हैं। सभी गौओं में एक समानता है जिसके कारण उन सबों की एक जाति होती है तथा उन्हें अन्य जातियों से पृथक् समझा जाता है। इस सामान्य को 'गोत्व' कहते हैं। किसी गौ के जन्म से न तो 'गोत्व' की उत्पत्ति होती है न उसके मरण से उसका विनाश ही होता है, अतः 'गोत्व' नित्य है।

नित्य द्रव्यों के पार्थक्य के मूल कारण को **'विशेष'** कहते हैं। साधारणतः वस्तुओं की भिन्नता उनके अवयवों तथा गुणों के द्वारा की जाती है। किन्तु एक प्रकार के परमाणुओं का पारस्परिक विभेद किस तरह किया जायेगा? प्रत्येक परमाणु की अपनी विशेषता होती है। अन्यथा सभी पार्थिव परमाणुओं के पार्थिव होने के कारण उनका विभेद सम्भव नहीं होता। परमाणुओं की अपनी-अपनी विशेषताओं को 'विशेष' कहते हैं। विशेषों को मानने के कारण ही इस दर्शन को 'वैशेषिक दर्शन' कहते हैं।

स्थायी या नित्य सम्बन्ध को **'समवाय'** कहते हैं। अवयवी का अवयवों के साथ, गुण या कर्म का द्रव्य के साथ, सामान्य का व्यक्तियों के साथ समवाय सम्बन्ध पाया जाता है। वस्त्र का अस्तित्व उसके धागों में है। धागों के विना वस्त्र नहीं रह सकता। हरित वर्ण, मधुर स्वाद, सुगन्ध आदि गुण तथा सभी प्रकार के कर्म या गति द्रव्य में ही आश्रित हैं। द्रव्य के विना गुण तथा कर्म नहीं टिक सकते। इस तरह के नित्य सम्बन्ध को **'समवाय'** कहते हैं।

नहीं रहने को **'अभाव'** कहते हैं। 'यहां कोई सर्प नहीं है', 'वह गुलाब लाल नहीं है', 'शुद्ध जल में गन्ध नहीं होती'—ये वाक्य क्रमशः सर्प, लाल

रंग और गन्ध का उपर्युक्त स्थानों में अभाव व्यक्त करते हैं। अभाव चार प्रकार का होता है—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव, तथा अन्योन्या-भाव। प्रथम तीन प्रकार के अभावों को 'संसर्गाभाव' कहते हैं। संसर्गाभाव में दो वस्तुओं के संसर्ग का अभाव रहता है।

१. किसी वस्त का उत्पत्ति के पहले उपादान में जो उसका अभाव रहता है उसे 'प्रागभाव' कहते हैं। जैसे कुम्भकार द्वारा वर्तन निर्माण के पहले मिट्टी में बर्तन का अभाव रहता है।

२. किसी वस्तु के ध्वंस हो जाने के बाद जो उस वस्तु का अभाव हो जाता है उसे 'प्रध्वंसाभाव' कहते हैं। जैसे घट के फूट जाने पर उसके टुकड़ों में घट का अभाव होता है।

३. दो वस्तुओं में अतीत, वर्तमान तथा भविष्य अर्थात् सर्वदा के लिए जो सम्बन्ध का अभाव रहता है उसे 'अत्यन्ताभाव' कहते हैं, जैसे वायु में रूप का अभाव।

४. जब दो वस्तुओं में पारस्परिक भेद रहता है तो उसे 'अन्योन्याभाव' कहते हैं। जैसे घट और पट दो पृथक् वस्तुएँ हैं। घट पट नहीं है, न पट ही घट है। एक का दूसरा न होने का नाम 'अन्योन्याभाव' है।

ईश्वर तथा मोक्ष के विषय में वैशेषिक तथा न्याय मतों में पूरा साम्य है॥

स्वा० द्वा० शा०

जैमिनीयमीमांसासूत्रपाठः

—:०:—

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. अथातो धर्मजिज्ञासा ।

२. चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः । ३. तस्य निमित्तपरीष्टिः ।

४. सत्सम्प्रयोगे पुरुषस्येन्द्रियाणां बुद्धिजन्म तत् प्रत्यक्षम् अनिमित्तं विद्यमानोपलम्भनत्वात् ।

५. औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः, तस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरेकश्चार्थेऽनुपलब्धे तत् प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात् ।

६. कर्मैके तत्र दर्शनात् । ७. अस्थानात् । ८. करोतिशब्दात् ।

९. सत्त्वान्तरे च यौगपद्यात् । १०. प्रकृतिविकृत्योश्च ।

११. वृद्धिश्च कर्तृभूम्नास्य । १२. समं तु तत्र दर्शनम् ।

१३. सतः परम् अदर्शनं विषयानागमात् ।

१४. प्रयोगस्य परम् । १५. आदित्यवद्यौगपद्यम् ।

१६. वर्णान्तरमविकारः । १७. नादवृद्धिपराः ।

१८. नित्यस्तु स्याद्दर्शनस्य परार्थत्वात् । १९. सर्वत्र यौगपद्यात् ।

२०. संख्याभावात् । २१. अनपेक्षत्वात् । २२. प्रख्याभावाच्च योग्यस्य ।

२३. लिङ्गदर्शनाच्च । २४. उत्पत्तौ वाऽवचनाः स्युरर्थस्यातन्निमित्तत्वात् ।

२५. तद्भूतानां क्रियार्थेन समाम्नायोऽर्थस्य तन्निमित्तत्वात् ।

२६. लोके सन्नियमनात्[1] प्रयोगसंन्निकर्षः स्यात् ।

---

१. संनियमादिति पाठान्तरम् ।

२७. वेदांश्चैके सन्निकर्षं पुरुषाख्याः ।

२८. अनित्यदर्शनाच्च । २९. उक्तन्तु शब्दपूर्वत्वम् ।

३०. आख्याः प्रवचनात् । ३१. परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम् ।

३२. कृते वा विनियोगः स्यात्; कर्मणः सम्बन्धात् ॥

॥ इति प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानार्थक्यमतदर्थानां तस्मादनित्यमुच्यते ।

२. शास्त्रदृष्टविरोधाच्च । ३. तथा फलाभावात् । ४. अन्यानर्थक्यात् ।

५. अभागिप्रतिषेधाच्च । ६. अनित्यसंयोगात् ।

७. विधिना त्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीना स्युः ।

८. तुल्यं च साम्प्रदायिकम् ।

९. अप्राप्ता चानुपपत्तिः प्रयोगे हि विरोधः स्याच्छब्दार्थस्त्वप्रयोगभूतस्तस्मादुपपद्येत । १०. गुणवादस्तु । ११. रूपात् प्रायात् ।

१२. दूरभूयस्त्वात् । १३. अपराधात् कर्तुश्च पुत्रदर्शनम् ।

१४. आकालिकेप्सा । १५. विद्याप्रशंसा । १६. सर्वत्वमाधिकारिकम् ।

१७. फलस्य कर्मनिष्पत्तेस्तेषां लोकवत् परिमाणतः फलविशेषः स्यात् ।

१८. अन्त्ययोर्यथोक्तम् ।

१९. विधिर्वा स्यादपूर्वत्वाद् वादमात्रं ह्यनर्थकम् ।

२०. लोकवदिति चेत् ? २१. न; पूर्वत्वात् । २२. उक्तन्तु वाक्यशेषत्वम् ।

२३. विधिश्चानर्थकः क्वचित्, तस्मात्स्तुतिः प्रतीयेत, तत्सामान्यादितरेषु तथात्वम् ।

२४. प्रकरणे सम्भवन् अपकर्षो न कल्प्येत, विध्यानर्थक्यं हि तं प्रति ।

२५. विधौ च वाक्यभेदः स्यात् । २६. हेतुर्वा स्यादर्थवत्त्वोपपत्तिभ्याम् ।

२७. स्तुतिस्तु शब्दपूर्वत्वात्, अचोदना च तस्य ।

२८. अर्थे स्तुतिरन्याय्येति चेत् ? २९. अर्थस्तु, विधिशेषत्वात्, यथा लोके ।
३०. यदि च हेतुरवतिष्ठेत निर्देशात्, सामान्यादिति चेदव्यवस्थाविधीनांस्यात् ।
३१. तदर्थशास्त्रात् । ३२. वाक्यनियमात् । ३३. बुद्धशास्त्रात् ।
३४. अविद्यमानवचनात् । ३५. अचेतनेऽर्थबन्धनात् ।
३६. अर्थविप्रतिषेधात् । ३७. स्वाध्यायवद् वचनात् ।
३८. अविज्ञेयात् । ३९. अनित्यसंयोगान्मन्त्रानर्थक्यम् ।
४०. अविज्ञिष्टस्तु वाक्यार्थः । ४१. गुणार्थेन पुनः श्रुतिः ।
४२. परिसंख्या । ४३. अर्थवादो वा ।
४४. अविरुद्धं परम् । ४५. सम्प्रैषे कर्मगर्हानुपलम्भः संस्कारत्वात् ।
४६. अभिधानेऽर्थवादः । ४७. गुणादप्रतिषेधः स्यात् ।
४८. विद्यावचनमसंयोगात् । ४९. सतः परमविज्ञानम् ।
५०. उक्तश्चानित्यसंयोगः । ५१. लिङ्गोपदेशश्च तदर्थत्वात् ।
५२. ऊहः । ५३. विधिशब्दाश्च ।

॥ इति प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. धर्मस्य शब्दमूलत्वात् अशब्दमनपेक्ष्यं स्यात् ।
२. अपि वा कर्तृसामान्यात् प्रमाणमनुमानं स्यात् ।
३. विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यात्, असति ह्यनुमानम् ।
४. हेतुदर्शनाच्च । ५. शिष्टाकोपे विरुद्धमिति चेत् ?
६. न; शास्त्रपरिमाणत्वात् ।
७. अपि वा करणाग्रहणे प्रयुक्तानिप्रतीयेरन् ।
८. तेष्वदर्शनाद्विरोधस्य समा विप्रतिपत्तिः स्यात् ।
९. शास्त्रस्था वा तन्निमित्तत्वात् ।
१०. चोदितं तु वा प्रतीयेताविरोधात् प्रमाणेन ।

११. प्रयोगशास्त्रमिति चेत् ? १२. न, असन्नियमात् ।

१३. अवाक्यशेषाच्च । १४. सर्वत्र च प्रयोगात् सन्निधानशास्त्राच्च ।

१५. अनुमानव्यवस्थानात् तत्संयुक्तं प्रमाणं स्यात् ।

१६. अपि वा सर्वधर्मः स्यात्, तन्न्यायत्वाद्विधानस्य ।

१७. दर्शनाद्विनियोगः स्यात् । १८. लिङ्गाभावाच्च नित्यस्य ।

१९. आख्या हि देशसंयोगात् । २०. न स्याद् देशान्तरेष्विति चेत् ?

२१. स्यात्; योगाख्या हि माथुरवत् । २२. कर्मधर्मो[1] वा प्रवणवत् ।

२३. तुल्यं तु कर्तृधर्मेण ।

२४. प्रयोगोत्पत्त्यशास्त्रत्वाच्छब्देषु न व्यवस्था स्यात् ।

२५. शब्दे प्रयत्ननिष्पत्तेरपराधस्य भागित्वम् ।

२६. अन्यायश्चानेकशब्दत्वम् । २७. तत्र तत्त्वमभियोगविशेषात् स्यात् ।

२८. तदशक्तिश्चानुरूपत्वात्[2] । २९. प्रयोगचोदनाभावादर्थैकत्वमविभागात् ।

३०. अद्रव्यशब्दत्वात् । ३१. अन्यदर्शनाच्च । ३२. आकृतिस्तु क्रियार्थत्वात् ।

३३. न क्रिया स्यादिति चेदर्थान्तरे विधानं न द्रव्यमिति चेत् ?

३४. तदर्थत्वात् प्रयोगस्याविभागः ॥

॥ इति प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पदः

१. उक्तं सामाम्नायैदमर्थ्यं तस्मात् सर्वं तदर्थं स्यात् ।

२. अपि वा नामधेयं स्यात् यदुत्पत्तावपूर्वमविधायकत्वात् ।

३. यस्मिन् गुणोपदेशः प्रधानतोऽभिसम्बन्धः ।

४. तत्प्रख्यञ्चान्यशास्त्रम् । ५. तद्व्यपदेशं च ।

६. नामधेये गुणश्रुतेः स्याद् विधानमिति चेत् ?

७. तुल्यत्वात् क्रिययोर्न । ८. ऐकशब्द्ये परार्थवत् ।

---

१. 'एकधर्मो' इति पाठा० ।

२. इतोऽग्रे—'एकदेशत्वाच्च विभक्तिव्यत्यये स्यात्' इत्यपि सूत्रं क्वचित् ।

९. तद्गुणास्तु विधीयेरन्नविभागाद्विधानार्थेन चेदन्येन शिष्टाः स्युः ।

१०. बर्हिराज्ययोरसंस्कारे शब्दलाभादतच्छब्दः ।

११. प्रोक्षणीष्वर्थसंयोगात् ।

१२. तथा निर्मन्थ्ये ।

१३. वैश्वदेवे विकल्प इति चेत् ?

१४. न वा, प्रकरणात् प्रत्यक्षविधानाच्च न हि प्रकरणं द्रव्यस्य ।

१५. मिथश्चानर्थसम्बन्धः ।

१६. परार्थत्वाद् गुणानाम् ।

१७. पूर्ववन्तोऽविधानार्थास्तत्सामर्थ्यं समाम्नाये ।

१८. गुणस्य तु विधानार्थे तद्गुणाः प्रयोगे स्युरनर्थकाः, न हि तं प्रत्यर्थवत्तास्ति ।

१९. तच्छेषो नोपपद्यते ।

२०. आभास[1] अविभागाद्विधानार्थस्तुत्यर्थे नोपपद्येरन् ।

२१. कारणं स्यात् इति चेत् ?

२२. आनर्थक्यादकारणम्, कर्तुं हि कारणानि, गुणार्थो हि विधीयते ।

२३. तत्सिद्धिः ।

२४. जातिः ।

२५. सारूप्यात् ।

२६. प्रशंसा ।

२७. भूमा ।

२८. लिङ्गसमवायात् ।

२९. सन्दिग्धेषु वाक्यशेषात् ।

३०. अर्थाद् वा कल्पनैकदेशत्वात् ।।

।। इति प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः, प्रथमाध्यायश्च ।।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. भावार्थाः कर्मशब्दाः, तेभ्यः क्रिया प्रतीयेतैष ह्यर्थो विधीयते ।

२. सर्वेषां भावोऽर्थ इति चेत् ?

३. येषामुत्पत्तौ स्वे प्रयोगे रूपोपलब्धिस्तानि नामानि, तस्मात् तेभ्यः पराकाङ्क्षा भूतत्वात् स्वे प्रयोगे ।

---

1. 'आभास' इति क्वचिन्नास्ति ।

४ येषां तूत्पत्तावर्थे स्वे प्रयोगो न विद्यते, तान्याख्यातानि, तस्मात् तेभ्यः प्रतीयेत, आश्रितत्वात् प्रयोगस्य ।

५. चोदना पुनरारम्भः ।

६. तानि द्वैधं गुणप्रधानभूतानि ।

७. यैर्द्रव्यं न चिकीर्ष्यते, तानि प्रधानभूतानि, द्रव्यस्य गुणभूतत्वात् ।

८. यैस्तु द्रव्यं चिकीर्ष्यते, गुणस्तत्र प्रतीयेत, तस्य द्रव्यप्रधानत्वात् ।

९. धर्ममात्रे तु कर्म स्यादनिर्वृत्तेः प्रयाजवत् ।

१०. तुल्यश्रुतित्वाद्वा इतरैः सधर्मः स्यात् ।

११. द्रव्योपदेश इति चेत् ?

१२. न; तदर्थत्वात् लोकवत्. तस्य च शेषभूतत्वात् ।

१३. स्तुतशस्त्रयोस्तु संस्कारो याज्यावद् देवताभिधानत्वात् ।

१४. अर्थेन त्वपकृष्येत देवतानामचोदनार्थस्य गुणभूतत्वात् ।

१५. वशावद्वा गुणार्थं स्यात् ।

१६. न, श्रुतिसमवायित्वात् ।

१७. व्यपदेशभेदाच्च ।

१८. गुणश्चानर्थकः स्यात् ।

१९. तथा याज्यापुरोरुचोः ।

२०. वशायामर्थसमवायात् ।

२१. यत्रेति वाऽर्थवत्त्वात् स्यात् ।

२२. न त्वाम्नातेषु ।

२३. दृश्यते ।

२४. अपि वा श्रुतिसंयोगात् प्रकरणे स्तौतिशंसती क्रियोत्पत्तिं विदध्याताम् ।

२५. शब्दपृथक्त्वाच्च ।

२६. अनर्थकं च तद्वचनम् ।

२७. अन्यश्चार्थः प्रतीयते ।

२८. अभिधानं च कर्मवत् ।

२९. फलनिर्वृत्तिश्च ।

३०. विधिमन्त्रयोरैकार्थ्यमैकशब्द्यात् ।

३१. अपि वा प्रयोगसामर्थ्यात् मन्त्रोऽभिधानवाची स्यात् ।

३२. तच्चोदकेषु मन्त्राख्या ।

३३. शेषे ब्राह्मणशब्दः ।

३४. अनाम्नातेष्वमन्त्रत्वमाम्नातेषु हि विभागः स्यात् ।

३५. तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था ।

३६. गीतिषु सामाख्या ।

३७. शेषे यजुःशब्दः ।

३८. निगदो वा चतुर्थं स्याद्धर्मविशेषात् ।

३९. व्यपदेशाच्च ।

४०. यजूंषि वा तद्रूपत्वात् ।

४१. वचनाद्धर्मविशेषः ।

४२. अर्थाच्च ।

४३. गुणार्थो व्यपदेशः । ४४. सर्वेषामिति चेत ? ४५. न; ऋग्व्यपदेशात् ।
४६. अर्थैकत्वादेकं वाक्यं साकाङ्क्षं चेद्विभागे स्यात् ।
४७. समेषु वाक्यभेदः स्यात् ।
४८. अनुषङ्गो वाक्यसमाप्तिः सर्वेषु तुल्ययोगित्वात् ।
४९. व्यवायान्नानुषज्येत ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. शब्दान्तरे कर्मभेदः कृतानुबन्धत्वात् ।
२. एकस्यैवं पुनः श्रुतिरविशेषादनर्थकं स्यात् ।
३. प्रकरणं तु पौर्णमास्यां रूपावचनात् ।
४. विशेषदर्शनाच्च सर्वेषां समेषु ह्यप्रवृत्तिः स्यात् ।
५. गुणस्तु श्रुतिसंयोगात् ।
६. चोदना वा गुणानां युगपच्छास्त्राच्चोदिते हि तदर्थत्वात्तस्य तस्योपदिश्यते ।
७. व्यपदेशश्च तद्वत् । ८. लिङ्गदर्शनाच्च ।
९. पौर्णमासीवदुपांशुयाजः स्यात् । १०. चोदना वाऽप्रकृतत्वात् ।
११. गुणोपबन्धात् । १२. प्राये वचनाच्च । १३. आघाराग्निहोत्रमरूपत्वात् ।
१४. संज्ञोपबन्धात् । १५. अप्रकृतत्वाच्च ।
१६. चोदना वा शब्दार्थस्य प्रयोगभूतत्वात् तत्सन्निधेर्गुणार्थेन पुनः श्रुतिः ।
१७. द्रव्यसंयोगाच्चोदना पशुसोमयोः, प्रकरणे ह्यनर्थको द्रव्यसंयोगो न हि तस्य गुणार्थेन । १८. अचोदकाश्च संस्काराः ।
१९. तद्भेदात् कर्मणोऽभ्यासो द्रव्यपृथक्त्वादनर्थकं हि स्याद् भेदो द्रव्यगुणीभावात् । २०. संस्कारस्तु न भिद्येत, परार्थत्वात् द्रव्यस्य गुणभूतत्वात् ।
२१. पृथक्त्वनिवेशात् संख्यया कर्मभेदः स्यात् ।
२२. संज्ञा चोत्पत्तिसंयोगात् । २३. गुणश्चापूर्वसंयोगे वाक्ययोः समत्वात् ।
२४. अगुणे तु कर्मशब्दे गुणस्तत्र प्रतीयेत ।

२५. फलश्रुतेस्तु कर्म स्यात् फलस्य कर्मयोगित्वात् ।

२६. अतुल्यत्वात् तु वाक्ययोर्गुणे तस्य प्रतीयेत ।

२७. समेषु कर्म युक्तं स्यात् । २८. सौभरे पुरुषश्रुतेर्निधने कामसंयोगः ।

२९. सर्वस्य वोक्तकामत्वात् तस्मिन् कामश्रुतिः स्यान्निधनार्था पुनः श्रुतिः ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. गुणस्तु क्रतुसंयोगात् कर्मान्तरं प्रयोजयेत् संयोगस्याशेषभूतत्वात् ।

२. एकस्य तु लिङ्गभेदात् प्रयोजनार्थमुच्येतैकत्वं सगुणवाक्यत्वात् ।

३. अवेष्टौ यज्ञसंयोगात् क्रतुप्रधानमुच्यते । ४. आधाने सर्वशेषत्वात् ।

५. अयनेषु चोदनान्तरं संज्ञोपबन्धात् । ६. अगुणाच्च कर्मचोदना ।

७. समाप्तं च फले वाक्यम् । ८. विकारो वा प्रकरणात् ।

९. लिङ्गदर्शनाच्च । १०. गुणात् संज्ञोपबन्धः ।

११. समाप्तिरविशिष्टा । १२. संस्कारश्चाप्रकरणेऽकर्मशब्दत्वात् ।

१३. यावदुक्तं वा, कर्मणः श्रुतिमूलत्वात् ।

१४. यजतिस्तु द्रव्यफलभोक्तृसंयोगादेतेषां कर्मसम्बन्धात् ।

१५ लिङ्गदर्शनाच्च । १६. विशये प्रायदर्शनात् ।

१७ अर्थवादोपपत्तेश्च । १८. संयुक्तस्त्वर्थशब्देन तदर्थः श्रुतिसंयोगात् ।

१९. पात्नीवते तु पूर्वत्वादवच्छेदः ।

२०. अद्रव्यत्वात् केवले कर्मशेषः स्यात् ।

२१. अग्निस्तु लिङ्गदर्शनात् क्रतुशब्दः प्रतीयेत ।

२२. द्रव्यं वा स्यात् चोदनायास्तदर्थत्वात् ।

२३. तत्संयोगात् क्रतुस्तदाख्यः स्यात् तेन धर्मविधानानि ।

२४. प्रकरणान्तरे प्रयोजनान्यत्वम् । २५. फलं चाकर्मसन्निधौ ।

२६. सन्निधौ त्वविभागात् फलार्थेन पुनः श्रुतिः ।

२७. आग्नेयस्तूक्तहेतुत्वादभ्यासेन प्रतीयेत ।

२८. अविभागात्तु कर्मणां द्विरुक्तेर्न विधीयते ।
२९. अन्यार्था वा पुनः श्रुतिः ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. यावज्जीविकोऽभ्यासः कर्मधर्मः प्रकरणात् । २. क्रतुर्वा श्रुतिसंयोगात् ।
३. लिङ्गदर्शनाच्च कर्मधर्मे हि प्रक्रमेण नियम्येत तत्रानर्थकमन्यत् स्यात् ।
४. व्यपवर्गं च दर्शयति, कालश्चेत् कर्मभेदः स्यात् ।
५. अनित्यत्वात् तु नैवं स्यात् । ६. विरोधश्चापि पूर्ववत् ।
७. कर्तुस्तु धर्मनियमात् कालशास्त्रं निमित्तं स्यात् ।
८. नामरूपधर्मविशेषपुनरुक्तिनिन्दाऽशक्तिसमाप्तिवचनप्रायश्चित्तान्यार्थदर्शनात् शाखान्तरेषु कर्मभेदः स्यात् । ९. एकं वा संयोगरूपचोदनाख्याविशेषात् ।
१०. न नाम्ना स्यादचोदनाभिधानत्वात् ।
११. सर्वेषां चैककर्म्यं स्यात् । १२. कृतकं चाभिधानम् ।
१३. एकत्वेऽपि परम् । १४. विद्यायां धर्मशास्त्रम् ।
१५. आग्नेयवत् पुनर्वचनम् । १६. अद्विर्वचनं वा श्रुतिसंयोगाविशेषात् ।
१७. अर्थासन्निधेश्च । १८. न चैकं प्रतिशिष्यते ।
१९. समाप्तिवच्च सम्प्रेक्षा ।
२०. एकत्वेऽपि पराणि निन्दाशक्तिसमाप्तिवचनानि ।
२१. प्रायश्चित्तं निमित्तेन । २२. प्रक्रमाद्वा नियोगेन ।
२३. समाप्तिः पूर्ववत्त्वाद् यथाज्ञाते प्रतीयेत ।
२४. लिङ्गमविशिष्टं सर्वशेषत्वान्न हि तत्र कर्मचोदना, तस्मात् द्वादशाहस्याहारव्यपदेशः स्यात् ।
२५. द्रव्ये चाचोदितत्वाद् विधीनामव्यवस्था स्यादनिर्देशाद् व्यवतिष्ठेत, तस्मान्नित्यानुवादः स्यात् । २६. विहितप्रतिषेधात् पक्षेऽतिरेकः स्यात् ।
२७. सारस्वते विप्रतिषेधाद् यदेति स्यात् । २८. उपहव्येऽप्रतिप्रसवः ।

२९. गुणार्था वा पुनः श्रुतिः । ३०. प्रत्ययश्चापि दर्शयति ।
३१. अपि वा क्रमसंयोगाद् विधिपृथक्त्वमेकस्यां व्यवतिष्ठेत ।
३२. विरोधिना त्वसंयोगादैककर्म्ये तत्संयोगाद्विधीनां सर्वकर्मप्रत्ययः स्यात् ।

इति द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः, द्वितीयोऽध्यायश्च ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. अथातः शेषलक्षणम् । २. शेषः परार्थत्वात् ।
३. द्रव्यगुणसंस्कारेषु बादरिः ।
४. कर्माण्यपि जैमिनिः, फलार्थत्वात् । ५. फलं च पुरुषार्थत्वात् ।
६. पुरुषश्च कर्मार्थत्वात् । ७. तेषामर्थेन सम्बन्धः ।
८. विहितस्तु सर्वधर्मः स्यात्, संयोगतोऽविशेषात् प्रकरणाविशेषाच्च ।
९. अर्थलोपादकर्म स्यात् ।
१०. फलन्तु सह चेष्टया शब्दार्थोऽभावाद्विप्रयोगे स्यात् ।
११. द्रव्यं चोत्पत्तिसंयोगात्तदर्थमेव चोद्येत ।
१२. अर्थैकत्वे द्रव्यगुणयोरैककर्म्यान्नियमः स्यात् ।
१३. एकत्वयुक्तमेकस्य श्रुतिसंयोगात् ।
१४. सर्वेषां वा लक्षणत्वादविशिष्टं हि लक्षणम् ।
१५. चोदिते तु परार्थत्वाद् यथाश्रुति प्रतीयेत ।
१६. संस्काराद्वा गुणानामव्यवस्था स्यात् ।
१७. व्यवस्था वाऽर्थस्य श्रुतिसंयोगात्, तस्य शब्दप्रमाणत्वात् ।
१८. आनर्थक्यात्तदङ्गेषु । १९. कर्तृगुणे तु कर्मासमवायाद् वाक्यभेदः स्यात् ।
२०. साकाङ्क्षं त्वेकवाक्यं स्यादसमाप्तं हि पूर्वेण ।
२१. सन्दिग्धे तु व्यवायाद् वाक्यभेदः स्यात् ।
२२. गुणानां च परार्थत्वादसम्बन्धः समत्वात् स्यात् ।

२३. मिथश्चानर्थसम्बन्धात् । २४. आनन्तर्यमचोदना ।

२५. वाक्यानाञ्च समाप्तत्वात् ।

२६. शेषस्तु गुणसंयुक्तः साधारणः प्रतीयेत, मिथस्तेषामसम्बन्धात् ।

२७. व्यवस्था वाऽर्थसंयोगात् लिङ्गस्यार्थेन सम्बन्धात् लक्षणार्था गुणश्रुतिः ॥

इति तृतीयाऽध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. अर्थाभिधानसामर्थ्यान्मन्त्रेषु शेषभावः स्यात्तस्मादुत्पत्तिसम्बन्धोऽर्थेन नित्य-संयोगात् । २. संस्कारकत्वादचोदितेन स्यात् ।

३. वचनात्त्वयथार्थमैन्द्री स्यात् ।

४. गुणाद्वाऽप्यभिधानं स्यात्, सम्बन्धस्याशास्त्रहेतुत्वात् ।

५. तथाह्वानमपीति चेत् ? ६. न; कालविधिश्चोदितत्वात् ।

७. गुणाभावात् । ८. लिङ्गाच्च ।

९. विधिकोपश्चोपदेशे स्यात् । १०. तथोत्थानविसर्जने ।

११. सूक्तवाके च कालविधिः, परार्थत्वात् ।

१२. उपदेशो वा याज्याशब्दो हि नाकस्मात् ।

१३. स देवतार्थस्तत्संयोगात् ।

१४. प्रतिपत्तिरिति चेत् ? स्विष्टकृद्वदुभयसंस्कारः स्यात् ।

१५. कृत्स्नोपदेशादुभयत्र सर्ववचनम् ।

१६. यथार्थं वा शेषभूतसंस्कारात् । १७. वचनादिति चेत् ?

१८. प्रकरणविभागादुभे प्रति कृत्स्नशब्दः ।

१९. लिङ्गक्रमसमाख्यानात् काम्ययुक्तं समाम्नानम् ।

२०. अधिकारे च मन्त्रविधिस्तदाख्येषु शिष्टत्वात् ।

२१. तदाख्यो वा प्रकरणोपपत्तिभ्याम् ।

२२. अनर्थकश्चोपदेशः स्यादसम्बन्धात् फलवता न[1] ह्युपस्थानं फलवत्[1] ।

१–१. नास्ति क्वचित् पुस्तके ।

२३. सर्वेषां चोपदिष्टत्वात् ।

२४. लिङ्गसमाख्यानाभ्यां भक्षार्थताऽनुवाकस्य ।

२५. तस्य रूपोपदेशाभ्यामपकर्षोऽर्थस्य चोदितत्वात् ।

२६. गुणाभिधानान्मन्द्रादिरेकमन्त्रः स्यात्, तयोरेकार्थसंयोगात् ।

२७. लिङ्गविशेषनिर्देशात् समानविधानेष्वनैन्द्राणाममन्त्रत्वम् ।

२८. यथादेवतं वा तत्प्रकृतित्वं हि दर्शयति ।

२९ पुनरभ्युन्नीतेषु सर्वेषामुपलक्षणं द्विशेषत्वात् ।

३०. अपनयाद्वा पूर्वस्याऽनुपलक्षणम् ।

३१. ग्रहणाद्वापनयः स्यात् ।

३२. पात्नीवते तु पूर्ववत् ।

३३. ग्रहणाद्वाऽपनीतं स्यात् ।

३४. त्वष्टारं तूपलक्षयेत् पानात्[1] ।

३५. अतुल्यत्वात्तु नैवं स्यात् ।

३६. त्रिंशच्च परार्थत्वात् ।

३७. वषट्कारश्च कर्तृवत् ।

३८. छन्दःप्रतिषेधस्तु सर्वगामित्वात् ।

३९. ऐन्द्राग्ने तु लिङ्गभावात् स्यात् ।

४०. एकस्मिन् वा देवतान्तराद् विभागवत् ।

४१. छन्दश्च देवतावत् ।

४२. सर्वेषु वाऽभावादेकच्छन्दसः ।

४३. सर्वेषां त्वैकमन्त्यमैतिशायनस्य भक्तिपानत्वात् सवनाधिकारो हि ।।

इति तृतीयाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः ।।

तृतीयः पादः

१. श्रुतेर्जाताधिकारः स्यात् ।

२. वेदो वा प्रायदर्शनात् ।

३. लिङ्गाच्च ।

४. धर्म्मोपदेशाच्च न हि द्रव्येण सम्बन्धः ।

५. त्रयीविद्याख्या च तद्विदि ।

६. व्यतिक्रमे यथाश्रुतीति चेत् ?

७. न; सर्व्वस्मिन्निवेशात् ।

८. वेदसंयोगान्न प्रकरणेन बाध्येत ।

९. गुणमुख्यव्यतिक्रमे तदर्थत्वान्मुख्येन वेदसंयोगः ।

१०. भूयस्त्वेनोभयश्रुति ।

---

१. पानादिति नास्ति क्वचित् ।

११. असंयुक्तं प्रकरणादितिकर्त्तव्यतार्थित्वात् ।

१२. क्रमश्च देशसामान्यात् । १३. आख्या चैवं तदर्थत्वात् ।

१४. श्रुति-लिङ्ग-वाक्य-प्रकरण-स्थान-समाख्यानां समवाये पारदौर्बल्यमर्थ-विप्रकर्षात् । १५. अहीनो वा प्रकरणाद् गौणः ।

१६. असंयोगात्तु मुख्यस्य तस्मादपकृष्येत ।

१७. द्वित्वबहुत्वयुक्तं चाचोदनात्तस्य ।

१८. पक्षेणार्थकृतस्येति चेत् ? १९. न; प्रकृतेरेकसंयोगात् ।

२०. जाघनी चैकदेशत्वात् ? २१. चोदना वाऽपूर्वत्वात् ।

२२. एकदेश इति चेत् ? २३. न; प्रकृतेरशास्त्रनिष्पत्तेः ।

२४. सन्तर्दनं प्रकृतौ क्रयणवदनर्थलोपात् स्यात् ।

२५. उत्कर्षो वा, ग्रहणाद्विशेषस्य ।

२६. कर्तृतो वा, विशेषस्य तन्निमित्तत्वात् ।

२७. क्रतुतो वाऽर्थवादानुपपत्तेः स्यात् ।

२८. संस्थाश्च कर्तृवद्धारणार्थाविशेषात् ।

२९. उक्थ्यादिषु वाऽर्थस्य विद्यमानत्वात् ।

३०. अविशेषात् स्तुतिर्व्यर्थेति चेत् ? ३१. स्यादनित्यत्वात् ।

३२. सङ्ख्यायुक्तं क्रतोः प्रकरणात् स्यात् ।

३३. नैमित्तिकं वा कर्तृसंयोगाल्लिङ्गस्य तन्निमित्तत्वात् ।

३४. पौष्णं पेषणं विकृतौ प्रतीयेताऽचोदनात् प्रकृतौ ।

३५. तत्सर्वार्थमविशेषात् ।

३६. चरौ वा, अर्थोक्तं पुरोडाशेऽर्थविप्रतिषेधात्पशौ स्यात् ।

३७. चरावपीति चेत् ? ३८. न; पक्तिनामत्वात् ।

३९. एकस्मिन्नेकसंयोगात् । ४०. धर्मविप्रतिषेधाच्च ।

४१. अपि वा, सद्वितीये स्याद् देवतानिमित्तत्वाद् ।

४२. लिङ्गदर्शनाच्च ।

४३. वचनात्सर्वपेषणं तं प्रति शास्त्रवत्त्वादर्थाभावात् द्विचरावपेषणं भवति ।

४४. एकस्मिन् वाऽर्थधर्मत्वादैन्द्राग्नवदुभयोर्न स्यादचोदितत्वात् ।
४५. हेतुमात्रमदन्तत्वम् । ४६. वचनं परम् ॥

इति तृतीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. निवीतमिति मनुष्यधर्मः, शब्दस्य तत्प्रधानत्वात् ।
२. अपदेशो वाऽर्थस्य विद्यमानत्वात् ।
३. विधिस्त्वपूर्वत्वात् स्यात् ।
४. स प्रायात्कर्मधर्मः स्यात् । ५. वाक्यशेषत्वात् ।
६. तत्प्रकरणे यत्संयुक्तमविप्रतिषेधात् ।
७. तत्प्रधाने वा तुल्यवत्प्रसंख्यानादितरस्य तदर्थत्वात् ।
८. अर्थवादो वा प्रकरणात् । ९. विधिना चैकवाक्यत्वात् ।
१०. उपवीतं लिङ्गदर्शनात् सर्वधर्मः स्यात् ।
११. न वा प्रकरणात् तस्य दर्शनम् ।
१२. विधिर्वा स्यादपूर्वत्वात् । १३. उदक्त्वं चापूर्वत्वात् ।
१४. सतो वा लिङ्गदर्शनम् । १५. विधिस्तु धारणेऽपूर्वत्वात् ।
१६. दिग्विभागश्च तद्वत्सम्बन्धस्यार्थहेतुत्वात् ।
१७. परुषि दित–पूर्णघृत–विदग्धञ्च तद्वत् ।
१८. अकर्म्म क्रतुसंयुक्तं संयोगान्नित्यानुवादः स्यात् ।
१९. विधिर्वा संयोगान्तरात् । २०. अहीनवत्पुरुषधर्मस्तदर्थत्वात् ।
२१. प्रकरणविशेषाद्वा तद्युक्तस्य संस्कारो द्रव्यवत् ।
२२. व्यपदेशादपकृष्येत । २३. शंयौ च सर्वपरिदानात् ।
२४. प्रागपरोधात्[1] मलवद्वाससः । २५. अन्नप्रतिषेधाच्च ।
२६. अप्रकरणे तु तद्धर्मस्ततो विशेषात् । २७. अद्रव्यत्वात्तु शेषः स्यात् ।
२८. वेदसंयोगात् । २९. द्रव्यसंयोगाच्च ।

---

१. प्रागवरोधादिति पाठा० ।

३०. स्याद्वास्य संयोगवत् फलेन सम्बन्धस्तस्मात् कर्मैतिशायनः ।
३१. शेषोऽप्रकरणेऽविशेषात् सर्वकर्मणाम् ।
३२. होमास्तु व्यवतिष्ठेरन्नाहवनीयसंयोगात् । ३३. शेषश्च समाख्यानात् ।
३४. दोषात्त्विष्टिर्लौकिके स्याच्छास्त्राद्धि वैदिके न दोषः स्यात् ।
३५. अर्थवादो वाऽनुपपातात् तस्माद्यज्ञे प्रतीयेत ।
३६. अचोदितं च कर्मभेदात् ।
३७. सालिङ्गादार्त्विजे स्यात् । ३८. पानव्यापच्च तद्वत् ।
३९. दोषात्तु वैदिके स्यादर्थाद्धि लौकिके न दोषः स्यात् ।
४०. तत्सर्वत्राविशेषात् । ४१. स्वामिनो वा तदर्थत्वात् ।
४२. लिङ्गदर्शनाच्च । ४३. सर्वप्रदानं हविषस्तदर्थत्वात् ।
४४. निरवदानात्तु शेषः स्यात् । ४५. उपायो वा तदर्थत्वात् ।
४६. कृतत्वात्तु कर्मणः सकृत् स्याद् द्रव्यस्य गुणभूतत्वात् ।
४७. शेषदर्शनाच्च ।
४८. अप्रयोजकत्वादेकस्मात् क्रियेरन् शेषस्य गुणभूतत्वात् ।
४९. संस्कृतत्वाच्च ।
५०. सर्वेभ्यो वा कारणाविशेषात्, संस्कारस्य तदर्थत्वात् ।
५१. लिङ्गदर्शनाच्च । ५२. एकस्माच्चेद् याथाकाम्यमविशेषात् ।
५३. मुख्याद्वा पूर्वकालत्वात् । ५४. भक्षाश्रवणाद्दानशब्दः परिक्रये ।
५५. तत्संस्तवाच्च । ५६. भक्षार्थो वा द्रव्ये समत्वात् ।
५७. व्यादेशाद्दानसंस्तुतिः ॥

इति तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः

पञ्चमः पादः

१. आज्याच्च सर्वसंयोगात् । २. कारणाच्च ।
३. एकस्मिन् समवत्तशब्दात् ।
४. आज्ये च दर्शनात् स्विष्टकृदर्थवादस्य ।

५. अशेषत्वात्तु नैवं स्यात् सर्वादानादशेषता ।

६. साधारण्यान्न ध्रुवायां स्यात् ।

७. अक्तत्वाच्च[1] जुह्वां, तस्य च होमसंयोगात् ।

८. चमसवदिति चेत् ? ९. चोदनाविरोधाद्धविप्रकल्पनाच्च ।

१०. उत्पन्नाधिकारात् सति सर्ववचनम् ।

११. जातिविशेषात् परम् । १२. अन्त्यमरेकार्थे ।

१३. साकंप्रस्थाय्ये[2] स्विष्टकृदिडञ्च तद्वत् ।

१४. सौत्रामण्यां च ग्रहेषु । १५. तद्वच्च शेषवचनम् ।

१६. द्रव्यैकत्वे कर्म्मभेदात् प्रतिकर्म्मं क्रियेरन् ।

१७. अविभागाच्च शेषस्य, सर्वान् प्रत्यविशिष्टत्वात् ।

१८. ऐन्द्रवायवे तु वचनात् प्रतिकर्म्म भक्षः स्यात् ।

१९. सोमेऽवचनाद्भक्षो न विद्यते । २०. स्याद्वाऽन्यार्थदर्शनात् ।

२१. वचनानि त्वपूर्वत्वात्तस्माद् यथोपदेशं स्युः ।

२२. चमसेषु समाख्यानात् संयोगस्य तन्निमित्तत्वात् ।

२३. उद्गातृचमसमेकः[3] श्रुतिसंयोगात् । २४. सर्वे वा सर्वसंयोगात् ।

२५. स्तोत्रकारिणां वा तत्संयोगाद् बहुश्रुतेः ।

२६. सर्वे तु वेदसंयोगात् कारणादेकदेशे स्यात् ।

२७. ग्रावस्तुतो भक्षो न विद्यते, अनाम्नानात् ।

२८. हारियोजने वा सर्वसंयोगात् । २९. चमसिनां वा सन्निधानात् ।

३०. सर्वेषां तु विधित्वात्तदर्था चमसिश्रुतिः ।

३१. वषट्काराच्च भक्षयेत् । ३२. होमाऽभिषवाभ्याञ्च ।

३३. प्रत्यक्षोपदेशाच्चमसानामव्यक्तः शेषे ।

३४. स्याद्वा कारणभावादनिर्देशश्चमसानां कर्तुस्तद्वचनत्वात् ।

३५. चमसे चान्यदर्शनात् ।

---

१. अवत्तत्वाच्चेति क्वचित् । २. साकंप्रस्थायीये इत्यपि क्वचित् ।
३. ०मेकस्येति पाठः० ।

३६. एकपात्रे क्रमादध्वर्युः पूर्वो भक्षयेत् ।
३७. होता वा मंत्रवर्णात् । ३८. वचनाच्च ।
३९. कारणानुपूर्व्याच्च । ४०. वचनादनुज्ञातभक्षणम् ।
४१. तदुपहूत उपहूयस्वेत्यनेन अनुज्ञापयेल्लिङ्गात् ।
४२. तत्रार्थात् प्रतिवचनम् । ४३. तदेकपात्राणां समवायात् ।
४४. याज्यापनयेनापनीतो भक्षः प्रवरवत् ।
४५. यष्टुर्वा कारणागमात् । ४६. प्रवृत्तत्वात् प्रवरस्यानपायः ।
४७. फलचमसो नैमित्तिको भक्षविकारः श्रुतिसंयोगात् ।
४८. इज्याविकारो वा संस्कारस्य तदर्थत्वात् । ४९. होमात् ।
५०. चमसैश्च तुल्यकालत्वात् । ५१. लिङ्गदर्शनाच्च ।
५२. अनुप्रसर्पिषु सामान्यात् । ५३. ब्राह्मणा वा तुल्यशब्दत्वात् ॥

इति तृतीयाध्यायस्य पञ्चमः पादः ॥

षष्टः पादः

१. सर्वार्थमप्रकरणात् । २. प्रकृतौ वाऽद्विरुक्तत्वात् ।
३. तद्वर्जं तु वचनप्राप्ते । ४. दर्शनादिति चेत् ?
५. न, चोदनैकार्थ्यात् । ६. उत्पत्तिरिति चेत् ? ७. न, तुल्यत्वात् ।
८. चोदनार्थकात्स्न्यात्तु मुख्यविप्रतिषेधात् प्रकृत्यर्थः ।
९. प्रकरणविशेषात्तु विकृतौ विरोधि स्यात् ।
१०. नैमित्तिकं तु प्रकृतौ, तद्विकारः संयोगविशेषात् ।
११. इष्टयर्थमग्न्याधेयं प्रकरणात् ।
१२. न वा तासां तदर्थत्वात् । १३. लिङ्गदर्शनाच्च ।
१४. तत्प्रकृत्यर्थं यथान्येऽनारभ्यवादाः ।
१५. सर्वार्थं वाऽऽधानस्य स्वकालत्वात् ।
१६. तासामग्निः प्रकृतितः प्रयाजवत् स्यात् ।
१७. न वा तासां तदर्थत्वात् ।

१८. तुल्यः सर्वेषां पशुविधिः प्रकरणाविशेषात् ।

१९. स्थानाच्च पूर्वस्य । २०. श्वस्त्वेकेषां तत्र प्राक्श्रुतिर्गुणार्था ।

२१. तेनोत्कृष्टस्य कालविधिरिति चेत् ? २२. नैकदेशत्वात् ।

२३. अर्थेनेति चेत् ? २४. न; श्रुतिविप्रतिषेधात् ।

२५. स्थानात्तु पूर्वस्य संस्कारस्य तदर्थत्वात् ।

२६. लिङ्गदर्शनाच्च । २७. अचोदना वा गुणार्थेन ।

२८. दोहयोः कालभेदादसंयुक्तं शृतं स्यात् ।

२९. प्रकरणाविभागाद्वा तत्संयुक्तस्य कालशास्त्रम् ।

३०. तद्वत् सवनान्तरे ग्रहाम्नानम् । ३१. रशना च लिङ्गदर्शनात् ।

३२. आराच्छिष्टमसंयुक्तमितरैः सन्निधानात् ।

३३. संयुक्तं वा तदर्थत्वाच्छेषस्य तन्निमित्तत्वात् ।

३४. निर्देशाद् व्यवतिष्ठेत । ३५. अग्न्यङ्गमप्रकरणे तद्वत् ।

३६. नैमित्तिकमतुल्यत्वादसमानविधानं स्यात् ।

३७. प्रतिनिधिश्च तद्वत् । ३८. तद्वत् प्रयोजनैकत्वात् ।

३९. अशास्त्रलक्षणत्वाच्च । ४०. नियमार्था गुणश्रुतिः ।

४१. संस्थास्तु समानविधानाः, प्रकरणाविशेषात् । ४२. व्यपदेशश्च तुल्यवत् ।

४३. विकारास्तु कामसंयोगे नित्यस्य समत्वात् ।

४४. अपि वा द्विरुक्तत्वात् प्रकृतेर्भविष्यन्तीति । ४५. वचनात्तु समुच्चयः ।

४६. प्रतिषेधाच्च पूर्वलिङ्गानाम् । ४७. गुणविशेषादेकस्य व्यपदेशः ।

इति तृतीयाध्यायस्य षष्ठः पादः ॥

सप्तमः पादः

१. प्रकरणविशेषादसंयुक्तं प्रधानस्य ।

२. सर्वेषां वा शेषत्वस्यातत्प्रयुक्तत्वात् ।

३. आरादपीति चेत् ? ४. न; तद्वाक्यं हि तदर्थत्वात् ।

५. लिङ्गदर्शनाच्च । ६. फलसंयोगात्तु स्वामियुक्तं प्रधानस्य ।

७. चिकीर्षया च संयोगात् ।

८. तद्युक्ते तु फलश्रुतिः, तस्मात् सर्वचिकीर्षा स्यात् ।
९. तथाऽभिधानेन । १०. गुणाऽभिधानात् सर्वार्थमभिधानम् ।
११. दीक्षादक्षिणं तु वचनात् प्रधानस्य । १२. निवृत्तिदर्शनाच्च ।
१३. तथा यूपस्य वेदिः । १४. देशमात्रं वा शिष्येणैकवाक्यत्वात् ।
१५. सामिधेनीस्तदन्वाहुरिति हविर्द्धानयोर्वचनात् सामिधेनीनाम् ।
१६. देशमात्रं वा प्रत्यक्षं ह्यर्थकर्म सोमस्य । १७. समाख्यानं च तद्वत् ।
१८. शास्त्रफलं प्रयोक्तरि तल्लक्षणत्वात् तस्मात् स्वयंप्रयोगे स्यात् ।
१९. उत्सर्गे तु प्रधानत्वाच्छेषकारी प्रधानस्य, तस्मादन्यः स्वयं वा स्यात् ।
२०. प्रधानत्वात् शेषकारी प्रधानस्य, तस्मादन्यः स्वयं वा स्यात्[1] ।
२१. अन्यो वा स्यात् परिक्रयाम्नानाद् विप्रतिषेधात् प्रत्यगात्मनि ।
२२. तत्रार्थात् कर्तृपरिमाणं स्यादनियमोऽविशेषात् ।
२३. अपि वा श्रुतिभेदात् प्रतिनामधेयं स्युः ।
२४. एकस्य कर्मभेदादिति चेत् ? २५. न; उत्पत्तौ हि ।
२६. चमसाध्वर्यवश्च तैर्व्यपदेशात् । २७. उत्पत्तौ तु बहुश्रुतेः ।
२८. दशत्वं लिङ्गदर्शनात् । २९. शमिता च शब्दभेदात् ।
३०. प्रकरणाद् वोत्पत्त्यसंयोगात् । ३१. उपगाश्च लिङ्गदर्शनात् ।
३२. विक्रयी त्वन्यः कर्मणोऽचोदितत्वात् ।
३३. कर्म्मकार्यात् सर्वेषामृत्विक्त्वमविशेषात् ।
३४. न वा परिसङ्ख्यानात् । ३५. पक्षेणेति चेत् ?
३६. न; सर्वेषामधिकारः । ३७. नियमस्तु दक्षिणाभिः श्रुतिसंयोगात् ।
३८. उक्त्वा च यजमानत्वं तेषां दीक्षाविधानात् ।
३९. स्वामिसप्तदशाः कर्मसामान्यात् ।
४०. ते सर्वार्थाः प्रयुक्तत्वात्, अग्नयश्च स्वकालत्वात् ।
४१. तत्संयोगात् कर्मणो व्यवस्था स्यात्, संयोगस्यार्थवत्त्वात् ।
४२. तस्योपदेशसमाख्यानेन निर्देशः । ४३. तद्वच्च लिङ्गदर्शनम् ।

१. सूत्रमिदं क्वचिन्नास्ति ।

४४. प्रैषाऽनुवचनं मैत्रावरुणस्योपदेशात् ।
४५. पुरोऽनुवाक्याधिकारो वा प्रैषसन्निधानात् ।
४६. प्रातरनुवाके च होतृदर्शनात् ।
४७. चमसांश्चमसाध्वर्यवः समाख्यानात् ।
४८. अध्वर्युर्वा तन्न्यायत्वात् ।
४९. चमसे चान्यदर्शनात् ।
५०. अशक्तौ ते प्रतीयेरन् ।
५१. वेदोपदेशात् पूर्ववद् वेदान्यत्वे यथोपदेशं स्युः ।
५२. तद्गुणाद्वा स्वधर्मः स्यादधिकारसामर्थ्यात् सहाङ्गैरव्यक्तः शेषे ॥

इति तृतीयाध्यायस्य सप्तमः पादः ॥

अष्टमः पादः

१. स्वामिकर्म परिक्रयः कर्मणस्तदर्थत्वात् ।
२. वचनादितरेषां स्यात् ।
३. संस्कारास्तु पुरुषसामर्थ्ये यथावेदं कर्मवद्व्यवतिष्ठेरन् ।
४. याजमानास्तु तत्प्रधानत्वात् कर्मवत् ।
५. व्यपदेशाच्च ।
६. गुणत्वेन तस्य निर्देशः ।
७. चोदनां प्रति भावाच्च ।
८. अतुल्यत्वादसमानविधानाः स्युः ।
९. तपश्च फलसिद्धित्वाल्लोकवत् ।
१०. वाक्यशेषश्च तद्वत् ।
११. वचनादितरेषां स्यात् ।
१२. गुणत्वाच्च वेदेन न व्यवस्था स्यात् ।
१३. तथा कामोऽर्थसंयोगात् ।
१४. व्यपदेशादितरेषां स्यात् ।
१५. मन्त्राश्चाऽकर्मकारणास्तद्वत् ।
१६. विप्रयोगे च दर्शनात् ।
१७. द्व्याम्नातेषूभौ द्व्याम्नानस्याऽर्थवत्त्वात् ।
१८. ज्ञाते च वाचनं न ह्यविद्वान् विहितोऽस्ति ।
१९. याजमाने समाख्यानात् कर्माणि याजमानं स्युः ।
२०. अध्वर्य्युं वा तदर्थो हि न्यायपूर्वं समाख्यानम् ।
२१. विप्रतिषेधे करणम्,[1] समवायविशेषादितरमन्यस्तेषां यतो विशेषः स्यात् ।
२२. प्रैषेषु च पराधिकारात् ।
२३. अध्वर्युस्तु दर्शनात् ।

---

१. करणः–पाठा० ।

२४. गौणो वा कर्मसामान्यात् । २५. ऋत्विक्फलं करणेष्वर्थवत्त्वात् ।
२६. स्वामिनो वा तदर्थत्वात् । २७. लिङ्गदर्शनाच्च ।
२८. कर्मार्थं तु फलं तेषां स्वामिनं प्रत्यर्थवत्त्वात् स्यात् ।
२९. व्यपदेशाच्च । ३०. द्रव्यसंस्कारः प्रकरणाऽविशेषात् सर्वकर्मणाम् ।
३१ निर्देशात्तु विकृतावपूर्वस्याऽनधिकारः ।
३२. विरोधे च श्रुतिविशेषाद्व्यक्तः शेषे ।
३३. अपनयस्त्वेकदेशस्य विद्यमानसंयोगात् ।
३४. विकृतौ सर्वार्थः शेषः प्रकृतिवत् । ३५. मुख्यार्थो वाऽङ्गस्याचोदितत्वात् ।
३६. सन्निधानविशेषादसम्भवे तदङ्गानाम् ।
३७. आधानेऽपि तथेति चेत् ? ३८. न; अप्रकरणत्वादङ्गस्य तन्निमित्तत्वात् ।
३९. तत्काले वा लिङ्गदर्शनात् । ४०. सर्वेषां वाऽविशेषात् ।
४१. न्यायोक्ते लिङ्गदर्शनम् । ४२. मांसं तु सवनीयानाम्, चोदनाविशेषात् ।
४३. भक्तिरसन्निधावन्याय्येति चेत् ? ४४. स्यात् प्रकृतिलिङ्गाद् वैराजवत् ॥

इति तृतीयाध्यास्याऽष्टमः पादः, तृतीयाध्यायश्च ॥

●

अथ चतुर्थोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. अथातः क्रत्वर्थपुरुषार्थयोर्जिज्ञासा ।
२. यस्मिन् प्रीतिः पुरुषस्य तस्य लिप्साऽर्थलक्षणाविभक्तत्वात् ।
३. तदुत्सर्गे कर्माणि पुरुषार्थाय[1], शास्त्रस्यानतिशङ्क्यत्वान्न च द्रव्यं चिकीर्ष्यते तेनार्थेनाभिसम्बन्धात् क्रियायां पुरुषश्रुतिः ।
४. अविशेषात्तु शास्त्रस्य यथाश्रुति फलानि स्युः ।
५. अपि वा कारणाऽग्रहणे तदर्थमर्थस्याऽनभिसम्बन्धात् ।
६. तथा च लोकभूतेषु । ७. द्रव्याणि त्वविशेषणाऽऽनर्थक्यात् प्रदीयेरन् ।

---

१. पुरुषार्थानि—पाठा० ।

८. स्वेन त्वर्थेन सम्बन्धो द्रव्याणां पृथगर्थत्वात् तस्माद्यथाश्रुति स्युः ।
९. चोद्यन्ते चार्थकथासु । १०. लिङ्गदर्शनाच्च ।
११. तत्रैकत्वमयज्ञाङ्गमर्थस्य गुणभूतत्वात् ।
१२. एकश्रुतित्वाच्च । १३. प्रतीयते इति चेत् ?
१४. न; अशब्दं तत्प्रमाणत्वात् पूर्ववत् ।
१५. शब्दवत् तूपलभ्यते, तदागमे हि तद् दृश्यते, तस्य ज्ञानं हि यथाऽन्येषाम् ।
१६. तद्वच्च लिङ्गदर्शनम । १७. तथा च लिङ्गम् ।
१८. आश्रयिष्वविशेषेण भावोऽर्थः प्रतीयेत ।
१९. चोदनायां त्वनारम्भो विभक्तत्वान्न ह्यन्येन विधीयते ।
२०. स्याद्वा द्रव्यचिकीर्षायां भावोऽर्थे च गुणभूतत्वाश्रयाद्विगुणीभावः ।
२१. अर्थे समवैषम्यमतो द्रव्यकर्मणाम् । २२. एकनिष्पत्तेः सर्वं समं स्यात् ।
२३. संसर्गरसनिष्पत्तेरामिक्षा वा प्रधानं स्यात् ।
२४. मुख्यशब्दाभिसंस्तवाच्च । २५. पदकर्म्माप्रयोजकं नयनस्य परार्थत्वात् ।
२६. अर्थाभिधानकर्म च भविष्यता संयोगस्य तन्निमित्तत्वात्तदर्थो हि विधीयते ।
२७. पशावनालम्भाल्लोहितशकृतोरकर्मत्वम् ।
२८. एकदेशद्रव्यस्योत्पत्तौ विद्यमानसंयोगात् ।
२९. निर्देशात्तस्यान्यदर्थादिति चेत् ? ३०. न; शेषसन्निधानात् ।
३१. कर्मकार्यात् । ३२. लिङ्गदर्शनाच्च ।
३३. अभिधारणे विप्रकर्षादनूयाजवत् पात्रभेदः स्यात् ।
३४. न वाऽपात्रत्वादपात्रत्वं त्वेकदेशत्वात् ।
३५. हेतुत्वाच्च सहप्रयोगस्य । ३६. अभावदर्शनाच्च ।
३७. सति सव्यवचनम् । ३८. न तस्येति चेत् ?
३९. स्वात्तस्य मुख्यत्वात् । ४०. समानयनं तु मुख्यं स्यात्, लिङ्गदर्शनात् ।
४१. वचने हि हेत्वसामर्थ्यं । ४२. तत्रोत्पत्तिरविभक्ता स्यात् ।
४३. तत्र जौहवमनुयाजप्रतिषेधार्थम् । ४४. औपभृतं तथेति चेत् ?
४५. स्यात् जुहूप्रतिषेधान्नित्यानुवादः ।

४६. तदष्टसंख्यं श्रवणात् । ४७. अनुग्रहाच्च जौहवस्य ।
४८. द्वयोस्तु हेतुसामर्थ्यं श्रवणं च समानयने ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. स्वरुस्त्वनेकनिष्पत्तिः स्वकर्मशब्दत्वात् ।
२. जात्यन्तराच्च शङ्कते ।
३. तदेकदेशो वा स्वरुत्वस्य तन्निमित्तत्वात् । ४. शकलश्रुतेश्च ।
५. प्रतियूपं च दर्शनात् । ६. आदाने करोतिशब्दः ।
७. शाखायां तत्प्रधानत्वात् ।
८. शाखायां तत्प्रधानत्वादुपवेषेण विभागः स्याद् वैषम्यं[1] तत्[1] ।
९. श्रुत्यपायाच्च ।
१०. हरणे तु जुहोतिर्योगसामान्यात् द्रव्याणां चार्थशेषत्वात् ।
११. प्रतिपत्तिर्वा शब्दस्य तत्प्रधानत्वात् । १२. अर्थेऽपीति चेत् ?
१३. न; तस्यानधिकारादर्थस्य च कृतत्वात् ।
१४. उत्पत्त्यसंयोगात् प्रणीतानामाज्यवद्विभागः स्यात् ।
१५. संयवनार्थानां वा प्रतिपत्तिरितरासां तत्प्रधानत्वात् ।
१६. प्रासनवन्मैत्रावरुणाय दण्डप्रदानं कृतार्थत्वात् ।
१७. अर्थकर्म वा कर्तृसंयोगात् स्रग्वत् । १८. कर्मयुक्ते च दर्शनात् ।
१९. उत्पत्तौ येन संयुक्तं तदर्थं तत्, श्रुतिहेतुत्वात्तस्यार्थान्तरगमने शेषत्वात् प्रतिपत्तिः स्यात् ।
२०. सौमिके च कृतार्थत्वात् । २१. अर्थकर्म वाऽभिधानसंयोगात् ।
२२. प्रतिपत्तिर्वा तन्न्यायत्वाद् देशार्थाऽवभृथश्रुतिः ।
२३. कर्तृदेशकालानामचोदनं प्रयोगे नित्यसमवायात् ।
२४. नियमार्था वा श्रुतिः । २५. तथा द्रव्येषु गुणश्रुतिरुत्पत्तिसंयोगात् ।

१–१. वैषम्यात्—पाठा० ।

२६. संस्कारे च तत्प्रधानत्वात् ।
२७. यजतिचोदना द्रव्यदेवताक्रियं समुदाये कृतार्थत्वात् ।
२८. तदुक्तेः श्रवणाज्जुहोतिरासेचनाधिकः स्यात् ।
२९. विधेः कर्मापवर्गित्वादर्थान्तरे विधिप्रदेशः स्यात् ।
३०. अपि वोत्पत्तिसंयोगादर्थसम्बन्धोऽविशिष्टानां प्रयोगैकत्वहेतुः स्यात् ।।

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः ।।

तृतीयः पादः

१. द्रव्यसंस्कारकर्मसु परार्थत्वात् फलश्रुतिरर्थवादः स्यात् ।
२. उत्पत्तेश्चातत्प्रधानत्वात् । ३. फलं तु तत्प्रधानायाम् ।
४. नैमित्तिके विकारत्वात् क्रतुप्रधानमन्यत् स्यात् ।
५. एकस्य तूभयत्वे संयोगपृथक्त्वम् ।
६. शेष इति चेत् ? ७. नार्थपृथक्त्वात् ।
८. द्रव्याणां तु क्रियार्थानां संस्कारः क्रतुधर्मः स्यात् ।
९. पृथक्त्वाद् व्यवतिष्ठेत ।
१०. चोदनायां फलाश्रुतेः कर्ममात्रं विधीयेत न ह्यशब्दं प्रतीयते ।
११. अपि वाऽऽम्नानसामर्थ्याच्चोदनार्थेन गम्यते, अर्थानां ह्यर्थवत्त्वेन वचनानि प्रतीयन्ते, अर्थतो ह्यसमर्थानामानन्तर्य्येऽप्यसम्बन्धः, तस्माच्छ्रुत्येकदेशः ।
१२. वाक्यार्थश्च गुणार्थवत् । १३. तत्सर्वार्थमनादेशात् ।
१४. एकं वा चोदनैकत्वात् । १५. स स्वर्गः स्यात्, सर्वान् प्रत्यविशिष्टत्वात् ।
१६. प्रत्ययाच्च । १७. क्रतौ फलार्थवादमङ्गवत् कार्ष्णाजिनिः ।
१८. फलमात्रेयो निर्देशादश्रुतौ ह्यनुमानं स्यात् ।
१९. अङ्गेषु स्तुतिः परार्थत्वात् ।
२०. काम्ये कर्मणि नित्यः स्वर्गो यथा यज्ञाङ्गे क्रत्वर्थः ।
२१. वीते च कारणे नियमात् । २२. कामो वा तत्संयोगेन चोद्यते ।
२३. अङ्गे गुणत्वात् । २४. वीते च नियमस्तदर्थम् ।

२५. सार्वकाम्यमङ्गकामैः प्रकरणात् ।
२६. फलोपदेशो वा प्रधानशब्दसंयोगात् । २७. तत्र सर्वेऽविशेषात् ।
२८. योगसिद्धिर्वाऽर्थस्योत्पत्त्यसंयोगित्वात् ।
२९. समवाये चोदनासंयोगस्यार्थवत्वात् ।
३०. कालश्रुतौ काल इति चेत् ? ३१. न; असमवायात् प्रयोजनेन स्यात् ।
३२. उभयार्थमिति चेत् ? ३३. न; शब्दैकत्वात् ।
३४. प्रकरणादिति चेत् ? ३५. न; उत्पत्तिसंयोगात् ।
३६. अनुत्पत्तौ तु कालः स्यात् प्रयोजनेन सम्बन्धात् ।
३७. उत्पत्तिकालविषये कालः स्याद्वाक्यस्य तत्प्रधानत्वात् ।
३८. फलसंयोगस्त्वचोदितेन स्यादशेषभूतत्वात् ।
३९. अङ्गानां तूपघातसंयोगो निमित्तार्थः ।
४०. प्रधानेनाभिसंयोगादङ्गानां मुख्यकालत्वम् ।
४१. अप्रवृत्ते तु चोदना तत्सामान्यात् स्वकाले स्यात् ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. प्रकरणशब्दसामान्याच्चोदनानामनङ्गत्वम् ।
२. अपि वाङ्गमनिज्याः स्युस्ततो विशिष्टत्वात् । ३. मध्यस्थं यस्य तन्मध्ये ।
४. सर्वासां वा समत्वाच्चोदनातः स्यान्न हि तस्य प्रकरणं देशार्थमुच्यते मध्ये ।
५. प्रकरणाविभागे च विप्रतिषिद्धम् ह्युभयम् ।
६. अपि वा कालमात्रं स्याददर्शनाद्विशेषस्य ।
७. फलवद्वोक्तहेतुत्वादितरस्य प्रधानं स्यात् ।
८. दधिग्रहो नैमित्तिकः श्रुतिसंयोगात् ।
९. नित्यश्च ज्येष्ठशब्दात् । १०. सार्वरूप्याच्च ।
११. नित्यो वा स्यादर्थवादस्तयोः कर्मण्यसम्बन्धाद् भङ्गित्वाच्चान्तरायस्य ।
१२. वैश्वानरश्च नित्यः स्यान्नित्यः समानसङ्ख्यत्वात् ।

१३. पक्षे वोत्पन्नसंयोगात् । १४. षट्चितिः पूर्ववत्त्वात् ।
१५. ताभिश्च तुल्यसंख्यानात् । १६. अर्थवादोपपत्तेश्च ।
१७. एकचितिर्वा स्यादपवृक्ते हि चोद्यते निमित्तेन ।
१८. विप्रतिषेधात्ताभिः समानसङ्ख्यम् ।
१९. पितृयज्ञः स्वकालत्वादनङ्गं स्यात् ।
२०. तुल्यवच्चाप्रसङ्ख्यानात्[1] । २१. प्रतिषिद्धे च दर्शनात् ।
२२. पश्वङ्गं रशना स्यात्तदागमे विधानात् ।
२३. यूपाङ्गम् वा तत्संस्कारात् । २४. अर्थवादश्च तदर्थवत् ।
२५. स्वरुश्चाप्येकदेशत्वात् । २६. निष्क्रयश्च तदङ्गवत् ।
२७. पश्वङ्गम् वार्थकर्मत्वात् । २८. भक्त्या निष्क्रयवादः स्यात् ।
२९. दर्शपूर्णमासयोरिज्याः प्रधानान्यविशेषात् ।
३०. अपि वाङ्गानि कानिचित् येष्वङ्गत्वेन संस्तुतिः, सामान्यो ह्यभिसम्बन्धः ।
३१. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
३२. अवशिष्टं तु कारणं प्रधानेषु गुणस्य विद्यमानत्वात् ।
३३. नानुक्तेऽन्यार्थदर्शनं परार्थत्वात् ।
३४. पृथक्त्वे त्वभिधानयोर्निवेशः, श्रुतितो व्यपदेशाच्च, तत्पुनर्मुख्यलक्षणं यद् फलवत्त्वम्, तत्सन्निधावसंयुक्तं तदङ्गं स्यात्, भागित्वात् कारणस्याश्रुतश्चान्यसम्बन्धः । ३५. गुणाश्च नामसंयुक्ता विधीयन्ते नाङ्गेषूपपद्यन्ते ।
३६. तुल्या च कारणश्रुतिरन्यैरङ्गाङ्गिसम्बन्धः ।
३७. उत्पत्तावभिसम्बन्धस्तस्मादङ्गोपदेशः स्यात् । ३८. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
३९. ज्योतिष्टोमे तुल्यान्यविशिष्टं हि कारणम् ।
४०. गुणानां तूत्पत्तिवाक्येन सम्बन्धात् कारणश्रुतिः, तस्मात् सोमः प्रधानं स्यात् । ४१. तथा चान्यार्थदर्शनम् ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः, चतुर्थोऽध्यायश्च ॥

---

१. तुल्यवत् प्रसङ्ख्यानात्—पाठा० ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. श्रुतिलक्षणमानुपूर्व्यं तत्प्रधानत्वात् ।
२. अर्थाच्च । ३. अनियमोऽन्यत्र ।
४. क्रमेण वा नियम्येत क्रत्वेकत्वे तद्गुणत्वात् ।
५. अशाब्द इति चेत् ? स्याद्वाक्यशब्दत्वात् ।
६. अर्थकृते वाऽनुमानं स्यात्, क्रत्वेकत्वे परार्थत्वात्, स्वेन त्वर्थेन सम्बन्धः, तस्मात् स्वशब्दमुच्यते । ७. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
८. प्रवृत्त्या तुल्यकालानां गुणानां तदुपक्रमात् ।
९. सर्वमिति चेत् ? १०. न; अकृतत्वात् ।
११. क्रत्वन्तरवदिति चेत् ? १२. न; असमवायात् ।
१३. स्थानाच्चोत्पत्तिसंयोगात् । १४. मुख्यक्रमेण वाऽङ्गानां तदर्थत्वात् ।
१५. प्रकृतौ तु स्वशब्दत्वाद् यथाक्रमं प्रतीयेत ।
१६. मन्त्रतस्तु विरोधे स्यात् प्रयोगरूपसामर्थ्यात् तस्मादुत्पत्तिदेशः सः ।
१७. तद्वचनात्तु विकृतौ यथाप्रधानं स्यात् ।
१८. विप्रतिपत्तौ वा प्रकृत्यन्वयाद् यथाप्रकृति ।
१९. विकृतिः प्रकृतिधर्मत्वात्तत्काला स्याद्यथाशिष्टम् ।
२०. अपि वा क्रमकालसंयुक्ता सद्यः क्रियेत, तत्र विधेरनुमानात् प्रकृतिधर्मलोपः स्यात् । २१. कलोत्कर्ष इति चेत् ? २२. न; तत्सम्बन्धात् ।
२३. अङ्गानां मुख्यकालत्वाद्यथोक्तमुत्कर्षे स्यात् ।
२४. तदादि वाऽभिसम्बन्धात्, तदन्तमपकर्षे स्यात् ।
२५. प्रकृत्या[1] कृतकालानाम् । २६. शब्दविप्रतिषेधाच्च ।
२७. असंयोगाव तु वैकृतं तदेव प्रतिकृष्येत ।
२८. प्रासङ्गिकं च नोत्कर्षेदसंयोगात् । २९. तथाऽपूर्वम् ।
३०. सान्तपनीया तूत्कर्षेदग्निहोत्रं सवनवद् वैगुण्यात् ।

प्रवृत्त्या—पाठा० ।

३१. अव्यवायाच्च । ३२. असम्बन्धात्तु नोत्कर्षेत् ।
३३. प्रापणाच्च निमित्तस्य । ३४. सम्बन्धात् सवनोत्कर्षः ।
३५. षोडशी चोक्थ्यसंयोगात् ॥

इति पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. सन्निपाते प्रधानानामेकैकस्य गुणानां सर्वकर्म स्यात् ।
२. सर्वेषां वैकजातीयं कृतानुपूर्वत्वात् । ३. कारणादभ्यावृत्तिः ।
४. मुष्टिकपालावदानाञ्जनाभ्यञ्जनवपनपावनेषु चैकैकेन ।
५. सर्वाणि त्वेककार्य्यत्वादेषां तद्गुणत्वात् ।
६. संयुक्ते तु प्रक्रमात् तदन्तं[1] स्यादितरस्य तदर्थत्वात् ।
७. वचनात्तु परिव्याणान्तमञ्जनादि स्यात् ।
८. कारणाद्वाऽनवसर्गः स्यात् यथा पात्रवृद्धिः ।
९. न वा शब्दकृतत्वान्न्यायमात्रमितरदर्थात्पात्रविवृद्धिः ।
१०. पशुगणे तस्य तस्यापवर्जयेत् पश्वेकत्वात् ।
११. दैवतैर्वैककर्म्यात् । १२. मन्त्रस्य चार्थवत्त्वात् ।
१३. नानाबीजेष्वेकमुलूखलं विभवात् ।
१४. विवृद्धिर्वा नियमादानुपूर्व्यस्य तदर्थत्वात् ।
१५. एकं वा तण्डुलभावाद्धन्तेस्तदर्थत्वात् ।
१६. विकारे त्वनूयाजानां पात्रभेदोऽर्थभेदात् स्यात् ।
१७. प्रकृतेः पूर्वोक्तत्वादपूर्वमन्ते स्यान्न ह्यचोदितस्य शेषाम्नानम् ।
१८. मुख्यानन्तर्य्यमात्रेयः, तेन तुल्यश्रुतित्वादशब्दत्वात्प्राकृतानां व्यवायःस्यात् ।
१९. अन्ते तु वादरायणः, तेषां प्रधानशब्दत्वात् । २०. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
२१. कृतदेशात्तु पूर्वेषां संदेशः स्यात्तेन प्रत्यक्षसंयोगात् न्यायमात्रमितरत् ।
२२. प्राकृताच्च पुरस्ताद्यत् । २३. सन्निपातश्चेत् यथोक्तमन्ते स्यात् ॥

इति पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

---

१. तदङ्गं—पाठा० ।

तृतीयः पादः

१. विवृद्धिः कर्मभेदात् पृषदाज्यवत्तस्य तस्योपदिश्येत ।
२. अपि वा सर्वसङ्ख्यत्वाद्विकारः प्रतीयेत ।
३. स्वस्थानात्तु विवृध्येरन् कृतानुपूर्व्यत्वात् ।
४. समिध्यमानवतीं समिद्धवतीं[1] चान्तरेण धाय्याः स्युर्द्यावापृथिव्योरन्तराले समर्हणात् । ५. तच्छन्दो वा । ६. उष्णिक्ककुभोरन्ते दर्शनात् ।
७. स्तोमविवृद्धौ बहिष्पवमाने पुरस्तात्पर्यासादागन्तवः स्युः. तथा हि दृष्टं द्वादशाहे । ८. पर्यास इति चान्ताख्या ।
९. अन्ते वा तदुक्तम् । १०. वचनात्तु द्वादशाहे ।
११. अतद्विकारश्च । १२. तद्विकारेऽप्यपूर्वत्वात् ।
१३. अन्ते तूत्तरयोर्दध्यात् । १४. अपि वा गायत्रीबृहत्यनुष्टुप्सु वचनात् ।
१५. ग्रहेष्टिक्रमौपानुवाक्यं सवनचितिशेषः स्यात् ।
१६. क्रत्वग्निशेषो वा चोदितत्वादचोदनानुपूर्वस्य ।
१७. अन्ते स्युरव्यवायात् । १८. लिङ्गदर्शनाच्च ।
१९. मध्यमायां तु वचनाद् ब्राह्मणवत्यः ।
२०. प्राग्लोकम्पृणायास्तस्याः सम्पूरणार्थत्वात् ।
२१. संक्रते कर्म, संस्काराणां तदर्थत्वात् ।
२२. अनन्तरं व्रतं तद्भूतत्वात् । २३. पूर्वं च लिङ्गदर्शनात् ।
२४. अर्थवादो वाऽर्थस्य विद्यमानत्वात् । २५. न्यायविप्रतिषेधाच्च ।
२६. सञ्चिते त्वग्निचिद्युक्तं प्रापणान्निमित्तस्य ।
२७. क्रत्वन्ते वा प्रयोगवचनाभावात् । २८. अग्नेः कर्मत्वनिर्देशात् ।
२९. परेणाऽऽवेदनाद्दीक्षितः स्यात्, सर्वैर्दीक्षाभिसम्बन्धात् ।
३०. इष्टयन्ते वा तदर्था ह्यविशेषार्थसम्बन्धात् ।
३१. समाख्यानं च तद्वत् । ३२. अङ्गवत् क्रतूनामानुपूर्व्यम् ।
३३. न वाऽसम्बन्धात् । ३४. काम्यत्वाच्च ।

---

१. समिद्धवतीं–पाठा० ।

३५. आनर्थक्यान्नेति चेत् ?
३६. स्याद्विद्यार्थत्वाद्यथा परेषु सर्वस्वारात् ।
३७. य एतेनेत्यग्निष्टोमः प्रकरणात् ।
३८. लिङ्गाच्च ।
३९. अथान्येनेति संस्थानां सन्निधानात् ।
४०. तत्प्रकृतेर्वाऽऽपत्तिविहारौ हि न तुल्येषूपपद्येते ।
४१. प्रशंसा वा विहरणाभावात् ।
४२. विधिप्रत्ययाद्वा, न ह्यकस्मात् प्रशंसा स्यात् ।
४३. एकस्तोमे वा क्रतुसंयोगात् ।
४४. सर्वेषां वा चोदनाविशेषात् प्रशंसा स्तोमानाम् ॥

इति पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. क्रमको योऽर्थशब्दाभ्यां श्रुतिविशेषादर्थपरत्वाच्च ।
२. अवदानाऽभिघारणाऽऽसादनेष्वानुपूर्व्यं प्रवृत्त्या स्यात् ।
३. यथाप्रदानं वा तदर्थत्वात् ।
४. लिङ्गदर्शनाच्च ।
५. वचनादिष्टिपूर्वत्वम् ।
६. सोमश्चैकेषामग्न्याधेयस्यर्तुनक्षत्राऽतिक्रमवचनात् तदन्तेनानर्थकं हि स्यात् ।
७. तदर्थवचनाच्च नाविशेषात्तदर्थत्वम् ।
८. अयक्ष्यमाणस्य च पवमानहविषां कालनिर्देशादानन्तर्य्याद्विशङ्का स्यात् ।
९. इष्टिरयक्ष्यमाणस्य, तादर्थ्ये सोमपूर्वत्वम् ।
१०. उत्कर्षाद् ब्राह्मणस्य सोमः स्यात् ।
११. पौर्णमासी वा श्रुतिसंयोगात् ।
१२. सर्वस्य वैककर्म्यात् ।
१३. स्याद्वा विधिस्तदर्थेन ।
१४. प्रकरणात्तु कालः स्यात् ।
१५. स्वकाले स्यादविप्रतिषेधात् ।
१६. अपनयो वाऽऽधानस्य सर्वकालत्वात् ।
१७. पौर्णमास्यूर्ध्वं सोमात् ब्राह्मणस्य वचनात् ।
१८. एवं शब्दसामर्थ्यात् प्राक् कृत्स्नविधानात् ।

१९. पुरोडाशस्त्वनिर्देशे तद्युक्ते देवताभावात् ।

२०. आज्यमपीति चेत् ? २१. न; मिश्रदेवतत्वादैन्द्राग्नवत् ।

२२. विकृतेः प्रकृतिकालत्वात् सद्यःकालोत्तरा विकृतिः तयोः प्रत्यक्षशिष्टत्वात् ।

२३. द्वैयहकाल्ये तु यथान्यायम् । २४. वचनाद् वैककाल्यं स्यात् ।

२५. सान्नाय्याग्नीषोमीयविकारा ऊर्ध्वं सोमात् प्रकृतिवत् ।

२६. तथा सोमविकारा दर्शपूर्णमासाभ्याम् ॥

इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः पादः, पञ्चमोऽध्यायश्च ॥



अथ षष्ठोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. द्रव्याणां कर्मसंयोगात् गुणत्वेनाऽभिसम्बन्धः ।

२. असाधकं तु तादर्थ्यात् ।

३. प्रत्यर्थं चाऽभिसंयोगात् कर्मतो ह्यभिसम्बन्धः, तस्मात् कर्मोपदेशः स्यात् ।

४. फलार्थत्वात् कर्मणः शास्त्रं सर्वाधिकारं स्यात् ।

५. कर्तुर्वा श्रुतिसंयोगाद्विधिः कात्स्न्येन गम्यते ।

६. लिङ्गविशेषनिर्देशात्तु पुंयुक्तमैतिशायनः ।

७. तदुक्तित्वाच्च दोषश्रुतिरविज्ञाते ।

८. जातिं तु बादरायणोऽविशेषात्, तस्मात् स्त्र्यपि प्रतीयेत जात्यर्थस्याविशिष्टत्वात् । ९. चोदितत्वाद् यथाश्रुति ।

१०. द्रव्यवत्त्वात्तु पुंसां स्यात् द्रव्यसंयुक्तं क्रयविक्रयाभ्याम्, अद्रव्यत्वं स्त्रीणां द्रव्यैः समानयोगित्वात् ।

११. तथा चाऽन्यार्थदर्शनम् । १२. तादर्थ्यात् कर्मतादर्थ्यम् ।

१३. फलोत्साहाऽविशेषात्तु । १४. अर्थेन च समवेतत्वात् ।

१५. क्रयस्य धर्ममात्रत्वम् । १६. स्ववत्तामपि दर्शयति ।

१७. स्ववतोस्तु वचनादैककर्म्यं स्यात् । १८. लिङ्गदर्शनाच्च ।

१९. क्रीतत्वात्तु भक्त्या स्वामित्वमुच्यते ।

२०. फलार्थित्वात्तु स्वामित्वेनाऽभिसम्बन्धः ।

२१. फलवत्तां दर्शयति । २२. द्व्याधानं च द्वियज्ञवत् ।

२३. गुणस्य तु विधानत्वात् पत्न्या द्वितीयशब्दः स्यात् ।

२४. तस्या यावदुक्तमाशीर्ब्रह्मचर्य्यमतुल्यत्वात् ।

२५. चातुर्वर्ण्यमविशेषात् ।

२६. निर्देशाद्वा त्रयाणां स्यादग्न्याधेये ह्यसम्बन्धः क्रतुषु ब्राह्मणश्रुतिरित्यात्रेयः ।

२७. निमित्तार्थेन बादरिः, तस्मात् सर्वाधिकारः स्यात् ।

२८. अपि वाऽन्यार्थदर्शनात् यथाश्रुति प्रतीयेत ।

२९. निर्देशात्तु पक्षे स्यात् । ३०. वैगुण्यान्नेति चेत् ?

३१. न; काम्यत्वात् । ३२. संस्कारे च तत्प्रधानत्वात् ।

३३. अपि वा वेदनिर्देशादपशूद्राणां प्रतीयेत ।

३४. गुणार्थित्वान्नेति चेत् ?

३५. संस्कारस्य तदर्थत्वात्, विद्यायां पुरुषश्रुतिः ।

३६. विद्यानिर्देशान्नेति चेत् ? ३७. अवैद्यत्वादभावः कर्मणि स्यात् ।

३८. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।

३९. त्रयाणां द्रव्यसम्पन्नः कर्मणो द्रव्यसिद्धित्वात् ।

४०. अनित्यत्वात्तु नैवं स्यादर्थाद्धि द्रव्यसंयोगः ।

४१. अङ्गहीनश्च तद्धर्मा । ४२. उत्पत्तौ नित्यसंयोगात् ।

४३. अत्र्यार्षेयस्य हानं स्यात् ।

४४. वचनाद् रथकारस्याधानेऽस्य[1] सर्वशेषत्वात्[1] ।

४५. न्याय्यो वा कर्म्मसंयोगात् शूद्रस्य प्रतिषिद्धत्वात् ।

४६. अकर्मत्वात्तु नैवं स्यात् । ४७. आनर्थक्यं च संयोगात् ।

४८. गुणार्थेनेति चेत् । ४९. उक्तमनिमित्तत्वम् ।

५०. सौधन्वनास्तु हीनत्वात् मन्त्रवर्णात् प्रतीयेरन् ।

१–१. ०रयाधानस्यासर्व०–पाठा० ।

५१. स्थपतिर्निषादः स्यात् शब्दसामर्थ्यात् । ५२. लिङ्गदर्शनाच्च ॥

इति षष्ठाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. पुरुषार्थैकसिद्धित्वात् तस्य तस्याधिकारः स्यात् ।
२. अपि चोत्पत्तिसंयोगो यथा स्यात् सत्त्वदर्शनम्, तथाभावो विभागे स्यात् ।
३. प्रयोगे पुरुषश्रुतेः यथाकामी प्रयोगे स्यात् ।
४. प्रत्यर्थं श्रुतिभाव इति चेत् ?
५. तादर्थ्ये न गुणार्थताऽनुक्तेऽर्थान्तरत्वात् कर्तुः प्रधानभूतत्वात् ।
६. अपि वा कामसंयोगे सम्बन्धात् प्रयोगायोपदिश्येत, प्रत्यर्थं हि विधिश्रुति-विषाणावत् ।

७. अन्यस्य स्यादिति चेत्? ८. अन्यार्थेनाभिसम्बन्धः ।
९. फलकामो निमित्तमिति चेत् ? १०. न; नित्यत्वात् ।
११. कर्म तथेति चेत् ? १२. न; समवायात् ।
१३. प्रक्रमात् तु नियम्येतासम्भवस्य क्रियानिमित्तत्वात् ।
१४. फलार्थित्वाद्वाऽनियमो यथानुपक्रान्ते ।
१५. नियमो वा तन्निमित्तत्वात् कर्तुस्तत्कारणं स्यात् ।
१६. लोके कर्माणि वेदवत्ततोऽधिपुरुषज्ञानम् ।
१७. अपराधेऽपि च तैः शास्त्रम् ।
१८. अशास्त्रात् तूपसम्प्राप्तिः शास्त्रं स्यान्न प्रकल्पकम् ।
तस्मादर्थेन गम्येताप्राप्ते वा शास्त्रमर्थवत् ॥

१९. प्रतिषेधेष्वकर्मत्वात्क्रिया स्यात् प्रतिषिद्धानां विभक्तत्वादकर्मणाम् ।
२०. शास्त्राणां त्वर्थवत्त्वेन पुरुषार्थो विधीयते,
तयोरसमवायित्वात्तादर्थ्ये विध्यतिक्रमः ।
२१. तस्मिंस्तु शिष्यमाणानि जननेन प्रवर्तेरन् ।
२२. अपि वा वेदतुल्यत्वादुपायेन प्रवर्तेरन् ।

२३. अभ्यासे कर्मशेषत्वात् पुरुषार्थो विधीयते ।

२४. तस्मिन्नसम्भवन्नर्थात् ।

२५. न कालेभ्य उपदिश्यन्ते । २६. दर्शनात् काललिङ्गानाम् ।

२७. कालविधानम् । २८. तेषामौत्पत्तिकत्वादागमेन प्रवर्त्तेत ।

२९. तथा हि लिङ्गदर्शनम् । ३०. तथान्तः क्रतुप्रयुक्तानि ।

३१. आचाराद् गृह्यमाणेषु तथा स्यात् पुरुषार्थत्वात् ।

३२. ब्राह्मणस्य तु सोमविद्याप्रजमृणवाक्येन संयोगात् ॥

इति षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. सर्वशक्तौ प्रवृत्तिः स्यात् तथाभूतोपदेशात् ।

२. अपि वाप्येकदेशे स्यात् प्रधाने ह्यर्थनिर्वृत्तिर्गुणमात्रमितरत्, तदर्थत्वात् ।

३. तदकर्मणि च दोषः, तस्मात् ततो विशेषः स्यात् प्रधानेनाऽभिसम्बन्धात् ।

४. कर्मभेदं तु जैमिनिः, प्रयोगवचनैकत्वात् सर्वेषामुपदेशः स्यादिति ।

५. सर्वस्य व्यपवर्गित्वादेकस्यापि प्रयोगे स्यात् यथा क्रत्वन्तरेषु ।

६. विध्यपराधे च दर्शनात् समाप्तेः । ७. प्रायश्चित्तविधानाच्च ।

८. काम्येषु चैवमर्थित्वात् ।

९. असंयोगात्तु नैवं स्यात् विधेः शब्दप्रमाणत्वात् ।

१०. अकर्मणि चाप्रत्यवायात् ।

११ क्रियाणामाश्रितत्वाद् द्रव्यान्तरे विभागः स्यात् ।

१२. अपि वाऽव्यतिरेकाद् रूपशब्दाविभागाच्च गोत्ववदैककर्म्यं स्यात् नामधेयं च सत्त्ववत् ।

१३. श्रुतिप्रमाणत्वाच्छिष्टाभावे नागमोऽन्यस्याऽशिष्टत्वात् ।

१४. क्वचिद्विधानाच्च । १५. आगमो वा चोदनार्थाविशेषात् ।

१६. नियमार्थः क्वचिद्विधिः । १७. तन्नित्यं तच्चिकीर्षा हि ।

१८. न देवताग्निशब्दक्रियमन्यार्थसंयोगात् । १९. देवतायां च तदर्थत्वात् ।

२०. प्रतिपिद्धं चाविशेषेण हि तच्छ्रुतिः ।
२१. तथा स्वामिनः फलसमवायात् फलस्य कर्मयोगित्वात् ।
२२. बहूनां तु प्रवृत्तेऽन्यमागमयेदवैगुण्यात् ।
२३. स स्वामी स्यात् तत्संयोगात् ।
२४. कर्मकरो वा भृतत्वात् । २५. तस्मिंश्च फलदर्शनात् ।
२६. स तद्धर्मा स्यात्, तत्कर्मसंयोगात्[1] ।
२७. सामान्यं तच्चिकीर्षा हि । २८. निर्देशात्तु विकल्पे यत्प्रवृत्तम् ।
२९. अशब्दमिति चेत् ? ३०. न; अनङ्गत्वात् ।
३१. वचनाच्च [2]न्याय्यमभावे तत्सामान्येन प्रतिनिधिरभावादितरस्य ।
३२. न प्रतिनिधौ समत्वात् । ३३. स्यात् श्रुतिलक्षणे नियतत्वात् ।
३४. न तदीप्सा हि । ३५. मुख्याधिगमे मुख्यमागमो हि तदभावात् ।
३६. प्रवृत्तेऽपीति चेत् ? ३७. न; अनर्थकत्वात् ।
३८. द्रव्यसंस्कारविरोधे द्रव्यं तदर्थत्वात् ।
३९. अर्थद्रव्यविरोधेऽर्थो द्रव्याभावे तदुत्पत्तेर्द्रव्याणामर्थशेषत्वात् ।
४०. विधिरप्येकदेशे स्यात् ।
४१. अपि वाऽर्थस्य शक्यत्वाद् एकदेशेन निर्वर्तेतार्थानामविभक्तत्वाद् गुणमात्रमितरत्तदर्थत्वात् ॥

इति षष्ठाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. शेषाद्द्व्यवदाननाशे स्यात्तदर्थत्वात् । २. निर्देशाद्वाऽन्यदागमयेत् ।
३. अपि वा शेषभाजां स्याद्विशिष्टकारणत्वात् ।
४. निर्देशाच्छेषभक्षोऽन्यैः प्रधानवत् ।
५. सर्वैर्वा समवायात् स्यात् । ६. निर्देशस्य गुणार्थत्वम् ।
७. प्रधाने श्रुतिलक्षणम् । ८. अर्थवदिति चेत् ? ९. न; चोदनाविरोधात् ।

---

१. तद्धर्म्म०—पाठा० । २. अन्याय्यमिति मु० पाठः ।

१०. अर्थसमवायात् प्रायश्चित्तमेकदेशेऽपि । ११. न त्वशेषे वैगुण्यात्तदर्थं हि ।
१२. स्याद्वा प्राप्तनिमित्तत्वादतद्धर्मो नित्यसंयोगान्नहि तस्य गुणार्थेनानित्यत्वात् । १३. गुणानाञ्च परार्थत्वाद्वचनाद् व्यपाश्रयः स्यात् ।
१४. भेदार्थमिति चेत् ? १५. शेषभूतत्वात् । १६. अनर्थकश्च सर्वनाशे स्याद् ।
१७. क्षामे तु सर्वदाहे स्यादेकदेशस्यावर्जनीयत्वात् ।
१८. दर्शनाद्वैकदेशे स्यात् । १९. अन्येन वैतच्छास्त्राद्धि कारणप्राप्तिः ।
२०. तद्धविःशब्दान्नेति चेत् ?
२१. स्यादन्यायत्वादिज्यागामी हविःशब्दस्तल्लिङ्गसंयोगात् ।
२२. यथाश्रुतीति चेत् ? २३. न; तल्लक्षणत्वादुपपातो हि करणम् ।
२४. होमाभिषवभक्षणं च तद्वत् । २५. उभाभ्यां वा न हि तयोर्धर्मशास्त्रम् ।
२६. पुनराधेयमोदनवत् । २७. द्रव्योत्पत्तेर्वोभयोः स्यात् ।
२८. पञ्चशरावस्तु द्रव्यश्रुतेः प्रतिनिधिः स्यात् ।
२९. चोदना वा द्रव्यदेवताविधिरवाच्ये हि ।
३०. स प्रत्यामनेत् स्थानात् । ३१. अङ्गविधिर्वा निमित्तसंयोगात् ।
३२. विश्वजित्त्वप्रवृत्ते भावः कर्मणि स्यात् ।
३३. निष्क्रयवादाच्च । ३४. वत्ससंयोगे व्रतचोदना स्यात् ।
३५. कालो वा उत्पन्नसंयोगात् यथोक्तस्य[1] ।
३६. अर्थापरिमाणाच्च । ३७. वत्सस्तु श्रुतिसंयोगात्तदङ्गं स्यात् ।
३८. कालस्तु स्यादचोदना । ३९. अनर्थकश्च कर्मसंयोगे ।
४०. अवचनाच्च स्वशब्दस्य । ४१. कालश्चेत् सन्नयत्पक्षे तल्लिङ्गसंयोगात् ।
४२. कालार्थत्वाद्वोभयोः प्रतीयेत । ४३. प्रस्तरे शाखाश्रयणवत् ।
४४. कालविधिर्वोभयोर्विद्यमानत्वात् । ४५. अतत्संस्कारार्थत्वाच्च ।
४६. तस्माच्च विप्रयोगे स्यात् । ४७. उपवेषश्च पक्षे स्यात् ॥

इति षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

---

१. क्वचिन्नास्ति ।

पञ्चमः पादः

१. अभ्युदये कालापराधादिज्याचोदना स्यात्, यथा पञ्चशरावे ।

२. अपनयो वा विद्यमानत्वात् । ३. तद्रूपत्वाच्च शब्दानाम् ।

४. आतञ्चनाभ्यासस्य दर्शनात् । ५. अपूर्वत्वाद्विधानं स्यात् ।

६. पयोदोषात् पञ्चशरावेऽदुष्टं हीतरत् । ७. सान्नाय्येऽपि तथेति चेत् ?

८. न; तस्यादुष्टत्वादविशिष्टं हि कारणम् । ९. लक्षणार्था शृतश्रुतिः ।

१०. उपांशुयागेऽवचनाद् यथाप्रकृति । ११. अपनयो वा प्रवृत्त्या यथेतरेषाम् ।

१२. निरुप्ते स्यात्तत्संयोगात् । १३. प्रवृत्ते वा प्रापणान्निमित्तस्य ।

१४. लक्षणमात्रमितरत् । १५. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।

१६. अनिरुप्तेऽभ्युदिते प्राकृतीभ्यो निर्वपेदित्याश्मरथ्यस्तण्डुलभूतेष्वपनयात् ।

१७. व्यूर्ध्वंभाग्भ्यस्त्वालेखनस्तत्कारित्वाद् देवतापनयस्य ।

१८. विनिरुप्ते न मुष्टीनामपनयस्तद्गुणत्वात् ।

१९. अप्राकृतेन हि संयोगस्तत्स्थानीयत्वात् ।

२०. अभावाच्चेतरस्य स्यात् । २१. सान्नाय्यसंयोगान्न सन्नयतः स्यात् ।

२२. ओषधसंयोगाद् वोभयोः ।

२३. वैगुण्यान्नेति चेत् ? २४. न; अतत्संस्कारत्वात् ।

२५. साभ्युत्थाने विश्वजित्क्रीते विभागसंयोगात् ।

२६. प्रवृत्ते वा प्रापणान्निमित्तस्य । २७. आदेशार्थेतरा श्रुतिः ।

२८. दीक्षापरिमाणे यथाकाम्यविशेषात् । २९. द्वादशाहस्तु लिङ्गात् स्यात् ।

३०. पौर्णमास्यामनियमोऽविशेषात् । ३१. आनन्तर्यात् तु चैत्री स्यात् ।

३२. माघी वैकाष्टकाश्रुतेः । ३३. अन्या अपीति चेत् ?

३४. न; भक्तित्वादेषा हि लोके । ३५. दीक्षापराधे चानुग्रहात् ।

३६. उत्थाने चानुप्ररोहात् । ३७. अस्यां च सर्वलिङ्गानि ।

३८. दीक्षाकालस्य शिष्टत्वादतिक्रमे नियतानामनुत्कर्षः प्राप्तकालत्वात् ।

३९. उत्कर्षो वा दीक्षितत्वादविशिष्टं हि कारणम् ।

४०. तत्र प्रतिहोमो न विद्यते, यथा पूर्वेषाम् ।

४१. कालप्राधान्याच्च । ४२. प्रतिषेधाच्चोर्ध्वमवभृथादिष्टेः ।
४३. प्रतिहोमश्चेत् सायमग्निहोत्रप्रभृतीनि हूयेरन् ।
४४. प्रातस्तु षोडशिनि । ४५. प्रायश्चित्तमधिकारे सर्वत्र दोषसामान्यात् ।
४६. प्रकरणे वा शब्दहेतुत्वात् । ४७. अतद्विकारश्च ।
४८. व्यापन्नस्याप्सु गतौ यदभोज्यमार्य्याणां तत् प्रतीयेत ।
४९. विभागश्रुतेः प्रायश्चित्तं यौगपद्ये न विद्यते ।
५०. स्याद्वा प्राप्तनिमित्तत्वात् कालमात्रमेकम् ।
५१. तत्र विप्रतिषेधाद्विकल्पः स्यात् ।
५२. प्रयोगान्तरे वोभयानुग्रहः स्यात् । ५३. न चैकसंयोगात् ।
५४. पौर्वापर्य्ये पूर्वदौर्बल्यं प्रकृतिवत् ।
५५. यद्युद्गाता जघन्यः स्यात् पुनर्यज्ञे सर्ववेदसं दद्याद् यथेतरस्मिन् ।
५६. अहर्गणे यस्मिन्नपच्छेदस्तदावर्तेत कर्मपृथक्त्वात् ॥

इति षष्ठाध्यायस्य पञ्चमः पादः ॥

षष्ठः पादः

१. सन्निपातेऽवैगुण्यात् प्रकृतिवत् तुल्यकल्पा यजेरन् ।
२. वचनाद्वा शिरोवत् स्यात् । ३. न वाऽनारभ्यवादत्वात् ।
४. स्याद्वा यज्ञार्थत्वादौदुम्बरीवत् । ५. न तत्प्रधानत्वात् ।
६. औदुम्बर्य्याः परार्थत्वात्कपालवत् । ७. अन्येनापीति चेत् ?
८. न; एकत्वात्तस्य चानधिकारात् शब्दस्य चाविभक्तत्वात् ।
९. सन्निपातात्तु निमित्तविघातः स्याद् वृहद्रथन्तरवद्विभक्तशिष्टत्वाद् वसिष्ठनिर्वर्त्ये ।
१० अपि वा कृत्स्नसंयोगादविघातः प्रतीयेत स्वामित्वेनाभिसम्बन्धात् ।
११. साम्नोः कर्मवृद्धचैकदेशेन संयोगे गुणत्वेनाभिसम्वन्धः, तस्मात्तत्र विघातः स्यात् । १२. वचनात्तु द्विसंयोगः, तस्मादेकस्य पाणित्वम् ।
१३. अर्थाभावात्तु नैवं स्यात् ।

१४. अर्थानाञ्च विभक्तत्वाद् न तच्छ्रुतेन सम्बन्धः।
१५. पाणेः प्रत्यङ्गभावादसम्वन्धः प्रतीयेत।
१६. सत्राणि सर्ववर्णानामविशेषात्। १७. लिङ्गदर्शनाच्च।
१८. ब्राह्मणानां वेतरयोरार्त्विज्याभावात्।
१९. वचनादिति चेत् ? २०. न; स्वामित्वं हि विधीयते।
२१. गार्हपते वा स्यातामविप्रतिषेधात्। २२. न वा कल्पविरोधात्।
२३. स्वामित्वादितरेषामहीने लिङ्गदर्शनम्।
२४. वासिष्ठानां वा ब्रह्मत्वस्य नियमात्। २५. सर्वेषां वा प्रतिप्रसवात्।
२६. विश्वामित्रस्य हौत्रनियमाद् भृगुशुनकवसिष्ठानाम् अनधिकारः।
२७. विहारस्य प्रभुत्वादनग्नीनामपि स्यात्। २८. सारस्वते च दर्शनात्।
२९. प्रायश्चित्तविधानाच्च। ३०. साग्नीनां वेष्टिपूर्वत्वात्।
३१. स्वार्थेन च प्रयुक्तत्वात्। ३२. सन्निवापं च दर्शयति।
३३. जुह्वादीनामप्रयुक्तत्वात् सन्देहे यथाकामी प्रतीयेत।
३४. अपि वाऽन्यानि पात्राणि साधारणानि कुर्वीरन् विप्रतिषेधाच्छास्त्रकृतत्वात्। ३५. प्रायश्चित्तमापदि स्यात्।
३६. पुरुषकल्पेन वा विकृतौ कर्तृनियमः स्याद्यज्ञस्य तद्गुणत्वादभावादितरान् प्रत्येकस्मिन्नधिकारः स्यात्। ३७. लिङ्गाच्चेज्याविशेषवत्।
३८. न वा संयोगपृथक्त्वाद् गुणस्येज्याप्रधानत्वादसंयुक्ता हि चोदना।
३९. इज्यायां तद्गुणत्वाद्विशेषेण नियम्येत॥

इति षष्ठाध्यायस्य षष्ठः पादः॥

सप्तमः पादः

१. स्वदाने सर्वमविशेषात्। २. यस्य वा प्रभुः स्यादितरस्याऽशक्यत्वात्।
३. न भूमिः स्यात् सर्वान् प्रत्यविशिष्टत्वात्।
४. अकार्य्यत्वाच्च ततः पुनर्विशेषः स्यात्।
५. नित्यत्वाच्चानित्यैर्नास्ति सम्बन्धः। ६. शूद्रश्च धर्मशास्त्रत्वात्।

७. दक्षिणाकाले यत्स्वं तत्प्रतीयेत तद्दानसंयोगात् ।

८. अशेषत्वात्तदन्तः स्यात् कर्मणो द्रव्यसिद्धित्वात् ।

९. अपि वा शेषकर्म स्यात् क्रतोः प्रत्यक्षशिष्टत्वात् ।

१०. तथा चान्यार्थदर्शनम् । ११. अशेषं तु समञ्जसादानेन शेषकर्म स्यात् ।

१२. नादानस्य नित्यत्वात् ।

१३. दीक्षासु तु विनिर्देशादक्रत्वर्थेन संयोगस्तस्मादविरोधः स्यात् ।

१४. अहर्गणे च तद्धर्मा स्यात् सर्वेषामविशेषात् ।

१५. द्वादशशतं वा प्रकृतिवत् । १६. अतद्गुणत्वात् तु नैवं स्यात् ।

१७. लिङ्गदर्शनाच्च । १८. विकारः सन्नुभयतोऽविशेषात् ।

१९. अधिकं वा प्रतिप्रसवात् । २०. अनुग्रहाच्च पादवत् ।

२१. अपरिमिते[1] शिष्टस्य सङ्ख्याप्रतिषेधस्तच्छ्रुतित्वात् ।

२२. कल्पान्तरं वा तुल्यवत्प्रसङ्ख्यानात् । २३. अनियमोऽविशेषात् ।

२४. अधिकं वा स्याद् बह्वर्थत्वादितरेषां सन्निधानात् ।

२५. अर्थवादश्च तद्वत् ।

२६. परकृतिपुराकल्पं च मनुष्यधर्मः स्यादर्थाय ह्यनुकीर्त्तनम् ।

२७. तद्युक्ते च प्रतिषेधात् । २८. निर्देशाद्वा तद्धर्मः स्यात् पञ्चावत्तवत् ।

२९. विधौ तु वेदसंयोगादुपदेशः स्यात् ।

३०. अर्थवादो वा विधिशेषत्वात्तस्मान्नित्यानुवादः स्यात् ।

३१. सहस्रसंवत्सरं तदायुषामसम्भवात् मनुष्येषु ।

३२. अपि वा तदधिकारान्मनुष्यधर्मः स्यात् ।

३३. नासामर्थ्यात् । ३४. सम्बन्धादर्शनात् ।

३५. स कुलकल्पः स्यादिति कार्ष्णाजिनिरेकस्मिन्नसम्भवात् ।

३६. अपि वा कृत्स्नसंयोगादेकस्यैव प्रयोगः स्यात् ।

३७. विप्रतिषेधात्तु गुण्यन्यतरः स्यादिति लौबुकायनः ।

---

१. अपरिमाणे—पाठा० ।

३८. संवत्सरो विचालित्वात् । ३९. सा प्रकृतिः स्यादधिकारात् ।
४०. अहानि वाऽभिसंख्यत्वात् ॥

इति षष्ठाध्यायस्य सप्तमः पादः ॥

अष्टमः पादः

१. इष्टिपूर्वत्वादक्रतुशेषो होमः संस्कृतेष्वग्निषु स्यादपूर्वोऽप्याधानस्य सर्वशेषत्वात् । २. इष्टित्वेन तु संस्तवश्चतुर्होतृनसंस्कृतेषु दर्शयति ।
३. उपदेशस्त्वपूर्वत्वात् । ४. स सर्वेषामविशेषात् ।
५. अपि वा क्रत्वभावादनाहिताग्नेरशेषभूतनिर्देशः ।
६. जपो वाऽनग्निसंयोगात् ।
७. इष्टित्वेन तु संस्तुते होमः स्यादनारभ्याग्निसंयोगादितरेषामवाच्यत्वात् ।
८. उभयोः पितृयज्ञवत् । ९. निर्देशो वाऽनाहिताग्नेरनारभ्याग्निसंयोगात् ।
१०. पितृयज्ञे संयुक्तस्य पुनर्वचनम् । ११. उपनयन्नादधीत होमसंयोगात् ।
१२. स्थपतीष्टिवल्लौकिके वा विद्याकर्मानुपूर्वत्वात् ।
१३. आधानं च भार्यासंयुक्तम् ।
१४. अकर्म चोर्ध्वमाधानात्तत्समवायो हि कर्मभिः ।
१५. श्राद्धवदिति चेत् ? १६. न; श्रुतिविप्रतिषेधात् ।
१७. सर्वार्थत्वाच्च पुत्रार्थो न प्रयोजयेत् ।
१८. सोमपानात्तु प्रापणं द्वितीयस्य तस्मादुपयच्छेत् ।
१९. पितृयज्ञे तु दर्शनात् प्रागाधानात् प्रतीयेत ।
२०. स्थपतीष्टिः प्रयाजवदग्न्याधेयं प्रयोजयेत्तादर्थ्याच्चापवृज्येत ।
२१. अपि वा लौकिकेऽग्नौ स्यादाधानस्यासर्वशेषत्वात् ।
२२. अवकीर्णिपशुश्च तद्वदाधानस्याप्राप्तकालत्वात् ।
२३. उदगयनपूर्वपक्षाहःपुण्याहेषु दैवानि स्मृतिरूपान्यार्थदर्शनात् ।
२४. अहनि च कर्म्मसाकल्यम् । २५. इतरेषु तु पित्र्याणि ।
२६. याच्ञाक्रयणमविद्यमाने लोकवत् । २७. नियतं वार्थवत्त्वात् स्यात् ।

२८. तथा भक्षप्रैषाच्छादनसंज्ञप्तहोमद्वेषम् ।

२९. अनर्थकं त्वनित्यं स्यात् । ३०. पशुचोदनायामनियमोऽविशेषात् ।

३१. छागो वा मन्त्रवर्णात् । ३२. न चोदनाविरोधात् ।

३३. आर्षेयवदिति चेत् ? ३४. न; तत्र ह्यचोदितत्वात् ।

३५. नियमो वैकार्थ्यं ह्यर्थभेदाद् भेदः पृथक्त्वेनाभिधानात् ।

३६. अनियमो वार्थान्तरत्वादन्यत्वं व्यतिरेकशब्दभेदाभ्याम् ।

३७. रूपाल्लिङ्गाच्च । ३८. छागे न कर्माख्या रूपलिङ्गाभ्याम् ।

३९. रूपान्यत्वान्न जातिशब्दः स्यात् । ४०. विकारो नोत्पत्तिकत्वात् ।

४१. स नैमित्तिकः पशोर्गुणस्याचोदितत्वात् ।

४२. जातेर्वा तत्प्रायवचनार्थवत्त्वाभ्याम् ॥

इति षष्ठाध्यायस्याष्टमः पादः, समाप्तश्च षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. श्रुतिप्रमाणत्वाच्छेषाणां मुख्यभेदे यथाधिकारं भावः स्यात् ।

२. उत्पत्त्यर्थाविभागाद्वा सत्त्ववदैकधर्म्यं स्यात् ।

३. चोदनाशेषभावाद्वा तद्भेदाद्व्यवतिष्ठेरन् उत्पत्तेर्गुणभूतत्वात् ।

४. सत्त्वे लक्षणसंयोगात् सार्वत्रिकं प्रतीयेत ।

५. अविभागात्तु नैवं स्यात् । ६. द्व्यर्थत्वं च विप्रतिषिद्धम् ।

७. उत्पत्तौ विध्यभावाद्वा चोदनायां प्रवृत्तिः स्यात्, ततश्च कर्मभेदः स्यात् ।

८. यदि वाऽप्यभिधानवत् सामान्यात् सर्वधर्मः स्यात् ।

९. अर्थस्य त्वविभक्तत्वात्तथा स्यादभिधानेषु पूर्ववत्त्वात् प्रयोगस्य, कर्मणः शब्दभाव्यत्वाद्विभागाच्छेषाणामप्रवृत्तिः स्यात् ।

१०. स्मृतिरिति चेत् ? ११. न; पूर्ववत्त्वात् ।

१२. अर्थस्य शब्दभाव्यत्वात् प्रकरणनिबन्धनाच्छब्दादेवान्यत्र भावऽस्यात् ।
१३. समानेऽपूर्ववत्त्वादुत्पन्नाधिकारः स्यात् ।
१४. श्येनस्येति चेत् ? १५. न; असन्निधानात् ।
१६. अपि वा यद्यपूर्वत्वादितरदधिकार्थे ज्यौतिष्टोमिकाद्विधेस्तद्वाचकं समानं स्यात् । १७. पञ्चसञ्चरेष्वर्थवादातिदेशः सन्निधानात् ।
१८. सर्वस्य वैकशब्द्यात् । १९. लिङ्गदर्शनाच्च ।
२०. विहिताम्नानान्नेति चेत् ? २१. न; इतरार्थत्वात् ।
२२. एककपालैन्द्राग्नौ च तद्वत् ।
२३. एककपालानां वैश्वदेविकः प्रकृतिराग्रयणे सर्वहोमापरिवृत्तिदर्शनादवभृथे च सकृद् द्व्यवदानस्य वचनात् ।।

इति सप्तमाध्यायस्य प्रथमः पादः ।।

द्वितीयः पादः

१. साम्नोऽभिधानशब्देन प्रवृत्तिः स्याद्यथाशिष्टम् ।
२. शब्दैस्त्वर्थविधित्वादर्थान्तरेऽप्रवृत्तिः स्यात् पृथग्भावात् क्रियाया ह्यभिसम्बन्धः ।
३. स्वार्थे वा स्यात्प्रयोजनं क्रियायास्तदङ्गभावेनोपदिश्येरन् ।
४. शब्दमात्रमिति चेत् ? ५. न; औत्पत्तिकत्वात् ।
६. शास्त्रं चैवमनर्थकं स्यात् । ७. स्वरस्येति चेत् ?
८. न; अर्थाभावाच्छ्रुतेरसम्बन्धः ।
९. स्वरस्तूत्पत्तिषु स्यान्मात्रावर्णाविभक्तत्वात् ।
१०. लिङ्गदर्शनाच्च । ११. अश्रुतेस्तु विकारस्योत्तरासु यथाश्रुति ।
१२. शब्दानां चासामञ्जस्यम् ।
१३. अपि तु कर्मशब्दः स्याद्भावोऽर्थः प्रसिद्धग्रहणत्वाद्विकारो ह्यविशिष्टोऽन्यैः ।
१४. अद्रव्यं चापि दृश्यते ।
१५. तस्य च क्रिया ग्रहणार्था, नानार्थेषु विरूपित्वादर्थो ह्यासामलौकिको विधानात् । १६. तस्मिन् संज्ञाविशेषाः स्युर्विकारपृथक्त्वात् ।

१७. योनिशस्याश्च तुल्यवदितराभिर्विधीयन्ते ।
१८. अयोनौ चापि दृश्यतेऽतथायोनि । १९. ऐकार्थ्ये नास्ति वैरूप्यमिति चेत् ?
२०. स्यादर्थान्तरेष्वनिष्पत्तेर्यथा पाके[1] ।
२१. शब्दानाच्च सामञ्जस्यम् ॥

इति सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. उक्तं क्रियाभिधानं तच्छ्रुतावन्यत्र विधिप्रदेशः स्यात् ।
२. अपूर्वे वापि भागित्वात् । ३. नाम्नस्त्वौत्पत्तिकत्वात् ।
४. प्रत्यक्षाद् गुणसंयोगात् क्रियाभिधानं स्यात् तदभावेऽप्रसिद्धं स्यात् ।
५. अपि वा सत्रकर्मणि गुणार्थैषा श्रुतिः स्यात् ।
६. विश्वजिति सर्वपृष्ठे तत्पूर्वकत्वात् ज्यौतिष्टोमिकानि पृष्ठानि, अस्ति च पृष्ठशब्दः । ७. षडहाद्वा तत्र हि चोदनाः । ८. लिङ्गाच्च ।
९. उत्पन्नाधिकारो ज्योतिष्टोमः । १०. द्वयोर्विधिरिति चेत् ?
११. न; व्यर्थत्वात्सर्वशब्दस्य । १२. तथावभृथः सोमात् ।
१३. प्रकृतेरिति चेत् ? १४. न; भक्तित्वात् । १५. लिङ्गदर्शनाच्च ।
१६. द्रव्यादेशे तद्द्रव्यं[2] श्रुतिसंयोगात् पुरोडाशस्त्वनादेशे तत्प्रकृतित्वात् ।
१७. गुणविधिस्तु न गृह्णीयात्, समत्वात् । १८. निर्मन्थ्यादिषु चैवम् ।
१९. प्रणयनं तु सौमिकमवाच्यं हीतरत् ।
२०. उत्तरवेदिप्रतिषेधश्च तद्वत् । २१. प्राकृतं वाऽनामत्वात् ।
२२. परिसङ्ख्यार्थं श्रवणं गुणार्थमर्थवादो वा ।
२३. प्रथमोत्तमयोः प्रणयनमुत्तरवेदिविप्रतिषेधात् ।
२४. मध्यमयोर्वा गत्यर्थवादात् ।
२५. औत्तरवेदिकोऽनारभ्यवादप्रतिषेधः ।

---

१. लोके—पाठा० ।
२. तद्द्रव्यः—पाठा० ।

२६. स्वरसामैककपालामिक्षं च लिङ्गदर्शनात् ।
२७. चोदनासामान्याद्वा । २८. कर्मजे कर्म यूपवत् ।
२९. रूपं वाऽशेषभूतत्वात् । ३०. विशये लौकिकं स्यात्, सर्वार्थत्वात् ।
३१. न वैदिकमर्थनिर्देशात् । ३२. तथोत्पत्तिरितरेषां समत्वात् ।
३३. संस्कृतं स्यात् तच्छब्दत्वात् ।
३४. भक्त्या वाऽयज्ञशेषत्वाद् गुणानामभिधानत्वाद् ।
३५. कर्मणः पृष्ठशब्दः स्यात् तथाभूतोपदेशात् ।
३६. अभिधानोपदेशाद्वा विप्रतिषेधात् द्रव्येषु पृष्ठशब्दः स्यात् ।

इति सप्तमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. इतिकर्तव्यताविधेर्यजतेः पूर्ववत्त्वम् ।
२. स लौकिकः स्याद् दृष्टप्रवृत्तित्वात् । ३. वचनात्तु ततोऽन्यत्वम् ।
४. लिङ्गेन वा नियम्येत लिङ्गस्य तद्गुणत्वात् ।
५. अपि वाऽन्यायपूर्वत्वाद्यत्र नित्यानुवादवचनानि स्युः ।
६. मिथोविप्रतिषेधाच्च गुणानां यथार्थकल्पना स्यात् ।
७. भागित्वात्तु नियम्येत गुणानामभिधानत्वात्सम्बन्धादभिधानवद् यथा धेनुः किशोरेण । ८. उत्पत्तीनां समत्वाद्वा यथाधिकारं भावः स्यात् ।
९. उत्पत्तिशेषवचनं च विप्रतिषिद्धमेकस्मिन् ।
१०. विध्यन्तो वा प्रकृतिवच्चोदनायां प्रवर्तेत, तथा हि लिङ्गदर्शनम् ।
११. लिङ्गहेतुत्वादलिङ्गे लौकिकं स्यात् ।
१२. लिङ्गस्य पूर्ववत्त्वाच्चोदनाशब्दसामान्यादेकेनापि निरूप्येत यथा स्थालीपुलाकेन ।
१३. द्वादशाहिकमहर्गणे तत्प्रकृतित्वादैकाहिकमधिकागमात्तदाख्यं स्यादेकाहवत् ।
१४. लिङ्गाच्च । १५. न वा क्रत्वभिधानादधिकानामशब्दत्वम् ।
१६. लिङ्गं सङ्घातधर्मः स्यात्तदर्थापत्तेर्द्रव्यवत् ।
१७ न वार्थधर्मत्वात् सङ्घातस्य गुणत्वात् ।

१८. अर्थापत्तेर्द्रव्येषु धर्मलाभः स्यात् । १९. प्रवृत्त्या नियतस्य लिङ्गदर्शनम् ।
२०. विहारदर्शनं विशिष्टस्यानारभ्यवादानां प्रकृत्यर्थत्वात् ।

इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः पादः, समाप्तश्च सप्तमोऽध्यायः ।।

●

अथ अष्टमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. अथ विशेषलक्षणम् । २. यस्य लिङ्गमर्थसंयोगादभिधानवत् ।
३. प्रवृत्तित्वादिष्टेः सोमे प्रवृत्तिः स्यात् ।
४. लिङ्गदर्शनाच्च । ५. कृत्स्नविधानाद्वाऽपूर्वत्वम् ।
६. स्रुगभिघारणाभावस्य च नित्यानुवादात् ।
७. विधिरिति चेत् ? ८. न; वाक्यशेषत्वात् ।
९. शङ्कते चानुपोषणात् । १०. दर्शनमैष्टिकानां स्यात् ।
११. इष्टिषु दर्शपूर्णमासयोः प्रवृत्तिः स्यात् ।
१२. पशौ च लिङ्गदर्शनात् । १३. दैक्षस्य चेतरेषु ।
१४. ऐकादशिनेषु सौत्यस्य द्वैरशन्यस्य दर्शनात् ।
१५. तत्प्रवृत्तिर्गणेषु स्यात् प्रतिपशु यूपदर्शनात् ।
१६. अव्यक्तासु तु सोमस्य । १७. गणेषु द्वादशाहस्य ।
१८. गव्यस्य च तदादिषु । १९. निकायिनां च पूर्वस्योत्तरेषु प्रवृत्तिः स्यात् ।
२०. कर्मणस्त्वप्रवृत्तित्वात्फलनियमकर्तृसमुदायस्यानन्वयस्तद्बन्धनत्वात् ।
२१. प्रवृत्तौ चापि तादर्थ्यात् । २२. अश्रुतित्वाच्च ।
२३. गुणकामेष्वाश्रितत्वात् प्रवृत्ति; स्यात् । २४. निवृत्तिर्वा कर्मभेदात् ।
२५. अपि वाऽतद्विकारत्वात् क्रत्वर्थत्वात् प्रवृत्तिः स्यात् ।
२६. एककर्मणि विकल्पोऽविभागो हि चोदनैकत्वात् ।
२७. लिङ्गसाधारण्याद्विकल्पः स्यात् ।
२८. ऐकार्थ्याद्वा नियम्येत पूर्ववत्त्वाद् विकारो हि ।

२९. अश्रुतित्वान्नेति चेत् ? ३०. स्याल्लिङ्गभावात् ।
३१. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
३२. विप्रतिपत्तौ हविषा नियम्येत कर्मणस्तदुपाख्यत्वात् ।
३३. तेन च कर्मसंयोगात् । ३४. गुणत्वेन देवताश्रुतिः ।
३५. हिरण्यमाज्यधर्म, तेजस्त्वात् । ३६. धर्मानुग्रहाच्च ।
३७. औषधं वा विशदत्वात् । ३८. चरुशब्दाच्च ।
३९. तस्मिंश्च श्रपणश्रुतेः । ४०. मधूदके द्रव्यसामान्यात् पयोविकारः स्यात् ।
४१. आज्यं वा वर्णसामान्यात् । ४२. धर्मानुग्रहाच्च ।
४३. पूर्वस्य चाविशिष्टत्वात् ।

इति अष्टमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. वाजिनेषु सोमपूर्वत्वं सौत्रामण्यां च ग्रहेषु ताच्छब्द्यात् ।
२. अनुवषट्काराच्च । ३. समुपहूय भक्षणाच्च ।
४. क्रयणश्रपणपुरोरुगुपयामग्रहणासादनवासोपनहनञ्च तद्वत् ।
५. हविषा वा नियम्येत तद्विकारत्वात् ।
६. प्रशंसा सोमशब्दः । ७. वचनानीतराणि ।
८. व्यपदेशश्च तद्वत् । ९. पशुपुरोडाशस्य च लिङ्गदर्शनम् ।
१०. पशुः पुरोडाशविकारः स्याद् देवतासामान्यात् ।
११. प्रोक्षणाच्च । १२. पर्य्यग्निकरणाच्च ।
१३. सान्नाय्यं वा तत्प्रभवत्वात् । १४. तस्य च पात्रदर्शनात् ।
१५. दध्नः स्यान्मूर्तिसामान्यात् । १६. पयो वा कालसामान्यात् ।
१७. पश्चानन्तर्यात् । १८. द्रवत्वं चाविशिष्टम् ।
१९. आमिक्षोभयभाव्यत्वादुभयविकारः स्यात् ।
२०. एकं वा चोदनैकत्वात् । २१. दधिसङ्घातसामान्यात् ।
२२. पयो वा तत्प्रधानत्वाल्लोकवद् दध्नस्तदर्थत्वात् । २३. धर्म्मानुग्रहाच्च ।

२४. सत्रमहीनश्च द्वादशाहस्तस्योभयथा प्रवृत्तिरैककर्म्यात् ।
२५. अपि वा यजतिश्रुतेरहीनभूतप्रवृत्तिः स्यात्प्रकृत्या तुल्यशब्दत्वात् ।
२६. द्विरात्रादीनामैकादशरात्रादहीनत्वं यजतिचोदनात् ।
२७. त्रयोदशरात्रादिषु सत्रभूतस्तेष्वासनोपायिचोदनात् । २८. लिङ्गाच्च ।
२९. अन्यतरतोऽतिरात्रत्वात् पञ्चदशरात्रस्याहीनत्वं कुण्डपायिनामयनस्य च तद्भूतेष्वहीनत्वस्य दर्शनात् । ३०. अहीनवचनाच्च ।
३१. सत्रे वोपायिचोदनात् । ३२. सत्रलिङ्गञ्च दर्शयति ॥

इति अष्टमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. हविर्गणे परमुत्तरस्य देशसामान्यात् ।
२. देवतया वा नियम्येत शब्दवत्त्वादितरस्याश्रुतित्वात् ।
३. गणचोदनायां यस्य लिङ्गं तदावृत्तिः प्रतीयेताग्नेयवत् ।
४. नानाहानि वा सङ्घातत्वात् प्रवृत्तिलिङ्गेन चोदनात् ।
५. तथा चान्यार्थदर्शनम् । ६. कालाभ्यासे च[1] बादरिः, कर्मभेदात् ।
७. तदावृत्तिं तु जैमिनिरह्नामप्रत्यक्षसंख्यत्वात् ।
८. संस्थागणेषु तदभ्यासः प्रतीयेत कृतलक्षणग्रहणात् ।
९. अधिकाराद्वा प्रकृतिस्तद्विशिष्टा स्यादभिधानस्य तन्निमित्तत्वात् ।
१०. गणादुपचयस्तत्प्रकृतित्वात् । ११. एकाहाद्वा तेषां समत्वात् स्यात् ।
१२. गायत्रीषु प्राकृतीनामवच्छेदः प्रकृत्यधिकारात् संख्यात्वादग्निष्टोमवदव्यतिरेकात्तदाख्यत्वम् । १३. तन्नित्यवच्च पृथक्सतीषु तद्वचनम् ।
१४. न विंशतौ दशेति चेत् ? १५. ऐकसङ्ख्यमेव स्यात् ।
१६. गुणाद्वा द्रव्यशब्दः स्यादसर्वविषयत्वात् । १७. गोत्ववच्च समन्वयः ।
१८. सङ्ख्यायाश्च शब्दवत्त्वात् । १९. इतरस्याश्रुतित्वाच्च ।
२०. द्रव्यान्तरे निवेशादुक्थ्यलोपैर्विशिष्टं स्यात् । २१. अशास्त्रलक्षणत्वाच्च ।

---

१. अपि–पाठा० ।

२२. उत्पत्तिनामधेयत्वाद् भक्त्या पृथक्सतीषु स्यात् ।
२३. वचनमिति चेत् ? २४. यावदुक्तम् ।
२५. अपूर्वे च विकल्पः स्याद्यदि सङ्ख्याविधानम् ।
२६. ऋग्गुणत्वान्नेति चेत् ? २७. तथा पूर्ववति स्यात् ।
२८. गुणावेशश्च सर्वत्र । २९. निष्पन्नग्रहणान्नेति चेत् ?
३०. तथेहापि स्यात् ।
३१. यदि वाऽविषये नियमः प्रकृत्युपबन्धाच्छब्देष्वपि[1] प्रसिद्धः स्यात् ।
३२. दृष्टः प्रयोग इति चेत् ? ३३. तथा शरेष्वपि ।
३४. भक्त्येति चेत् ? ३५. तथेतरस्मिन् ।
३६. अर्थस्य चासमाप्तत्वात् न तासामेकदेशे स्यात् ।।

इति अष्टमाध्यायस्य तृतीयः पादः ।।

चतुर्थः पादः

१. दर्विहोमो यज्ञाभिधानं होमसंयोगात् ।
२. स लौकिकानां स्यात् कर्तुस्तदाख्यत्वात् ।
३. सर्वेषां वा दर्शनाद्वास्तुहोमे । ४. जुहोतिचोदनायां वा तत्संयोगात् ।
५. द्रव्योपदेशाद्वा गुणाभिधानं स्यात् ।
३. न लौकिकानामाचारग्रहणत्वाच्छब्दवतां चान्यार्थविधानात् ।
७. दर्शनाच्चान्यपात्रस्य । ८. तथाग्निहविषोः ।
९. उक्तश्चार्थसम्बन्धः । १०. तस्मिन् सोमः प्रवर्तेताव्यक्तत्वात् ।
११. न वा स्वाहाकारेण संयोगाद्वषट्कारस्य च निर्देशात्तन्त्रे तेन विप्रतिषेधात् ।
१२. शब्दान्तरत्वात् । १३. लिङ्गदर्शनाच्च ।
१४. उत्तरार्थस्तु स्वाहाकारो यथा साप्तदस्यं तत्राविप्रतिषिद्धा पुनः प्रवृत्तिलिङ्गदर्शनात् पशुवत् ।
१५. अनुत्तरार्थो वाऽर्थवत्त्वादानर्थक्याद्धि[2] प्राथम्यस्योपरोधः स्यात् ।

---

१. ०शरेष्वपीति पाठा० । २. प्राकृतस्येति पाठा० ।

१६. न प्रकृतावपीति चेत् ? १७. उक्तं समवाये पारदौर्बल्यम् ।

१८. तच्चोदना वेष्टेः प्रवृत्तित्वाद्विधिः स्यात् ।

१९. शब्दसामर्थ्याच्च । २०. लिङ्गदर्शनाच्च ।

२१. तत्राभावस्य हेतुत्वात्, गुणार्थे स्याददर्शनम् । २२. विधिरिति चेत् ?

२३. न वाक्यशेषत्वात् गुणार्थे च समाधानं नानात्वेनोपपद्यते ।

२४. येषां वाऽपरयोर्होमस्तेषां स्यादविरोधात् ।

२५. तत्रौषधानि चोद्यन्ते, तानि स्थानेन गम्येरन् ।

२६. लिङ्गाद्वा शेषहोमयोः । २७. प्रतिपत्ती तु ते भवतस्तस्मादतद्विकारत्वम् ।

२८. सन्निपाते विरोधिनामप्रवृत्तिः प्रतीयेत, विध्युत्पत्तिव्यवस्थानादर्थस्यापरिणेयत्वात् वचनादतिदेशः स्यात् ॥

इति अष्टमाध्यायस्य चतुर्थः पादः, अष्टमाध्यायश्च ॥

●

अथ नवमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. यज्ञकर्म प्रधानं तद्धि चोदनाभूतं तस्य द्रव्येषु संस्कारस्तत्प्रयुक्तस्तदर्थत्वात् ।

२. संस्कारे युज्यमानानां तादर्थ्यात्तत्प्रयुक्तं स्यात् ।

३. तेन त्वर्थेन यज्ञस्य संयोगाद् धर्मसम्बन्धस्तस्माद्यज्ञप्रयुक्तं स्यात्, संस्कारस्य तदर्थत्वात् । ४. फलदेवतयोश्च । ५. न चोदनातो हि तादगुण्यम् ।

६. देवता वा प्रयोजयेदतिथिवद् भोजनस्य तदर्थत्वात् ।

७. आर्थपत्याच्च । ८ ततश्च तेन सम्बन्धः ।

९. अपि वा शब्दपूर्वत्वाद्यज्ञकर्म प्रधानं स्याद् गुणत्वे देवताश्रुतिः ।

१०. अतिथौ तत्प्रधानत्वमभावः कर्मणि स्यात्तस्य प्रीतिप्रधानत्वात् ।

११. द्रव्यसङ्ख्याहेतुसमुदायं वा श्रुतिसंयोगात् ।

१२. अर्थकारिते च द्रव्येण न व्यवस्था स्यात् ।

१३. अर्थो वा स्यात्प्रयोजनमितिरेषामचोदनात्तस्य च गुणभूतत्वात् ।

१४. अपूर्वत्वाद्व्यवस्था स्यात् । १५. तत्प्रयुक्तत्वं च धर्म्मस्य सर्वविषयत्वम् ।

१६. तद्युक्तस्येति चेत् ? १७. न; अश्रुतित्वात् । १८. अधिकारादिति चेत् ?

१९. तुल्येषु नाधिकारः स्यादचोदितश्च सम्बन्धः, पृथक् सतां यज्ञार्थेनाभिसम्बन्धस्तस्माद्यज्ञप्रयोजनम् ।

२०. देशबद्धमुपांशुत्वं तेषां स्यात् श्रुतिनिर्देशात्तस्य च तत्र भावात् ।

२१. यज्ञस्य वा तत्संयोगात् । २२. अनुवादश्च तदर्थवत् ।

२३. प्रणीतादि तथेति चेत् ? २४. न; यज्ञस्याश्रुतित्वात् ।

२५. तद्देशानां वा सङ्घातस्याचोदितत्वात् ।

२६. अग्निधर्मः प्रतीष्टकं सङ्घातात्पौर्णमासीवत् ।

२७. अग्नेर्वा स्याद् द्रव्यैकत्वादितरासां तदर्थत्वात् ।

२८. चोदनासमुदायात्तु पौर्णमास्यां तथा स्यात् ।

२९. पत्नीसंयाजान्तत्वं सर्वेषामविशेषात् । ३०. लिङ्गाद्वा प्रागुत्तमात् ।

३१. अनुवादो वा दीक्षा यथा नक्तं संस्थापनस्य ।

३२. स्याद्वाऽनारभ्यविधानादन्ते लिङ्गविरोधात् ।

३३. अभ्यासः सामिधेनीनां प्राथम्यात् स्थानधर्मः स्यात् ।

३४. इष्ट्यावृत्तौ प्रयाजवदावर्तेतारम्भणीया ।

३५. सकृद्वाऽऽरम्भसंयोगात् एकः पुनरारम्भो यावज्जीवप्रयोगात् ।

३६. अर्थाभिधानसंयोगान्मन्त्रेषु शेषभावः स्यात्तत्राचोदितमप्राप्तम्, चोदिताभिधानात् । ३७. ततश्चावचनं तेषामितरार्थं प्रयुज्यते ।

३८. गुणशब्दस्तथेति चेत् ? ३९. न; समवायात् ।

४०. चोदिते तु परार्थत्वाद्विधिवदविकारः स्यात् ।

४१. विकारस्तत्प्रधाने स्यात् । ४२. असंयोगात्तदर्थेषु तद्विशिष्टं प्रतीयेत ।

४३. कर्माभावादेवमिति चेत् ? ४४. न; परार्थत्वात् ।

४५. लिङ्गविशेषनिर्देशात् समानविधानेष्वप्राप्ता सारस्वती स्त्रीत्वात् ।

४६. पश्वभिधानाद्वा तद्धि चोदनाभूतं पुंविषयं पुनः पशुत्वम् ।

४७. विशेषो वा तदर्थनिर्देशात् । ४८. पशुत्वं चैकशब्दयात्[१] ।
४९. यथोक्तं वा सन्निधानात् ।
५०. आम्नातादन्यदधिकारे वचनाद्विकारः स्यात् ।
५१. द्वैधं वा तुल्यहेतुत्वात् सामान्याद्विकल्पः स्यात् ।
५२. उपदेशाच्च साम्नः । ५३. नियमो वा श्रुतिविशेषादितरत् साप्तदश्यवत् ।
५४. अप्रमाणाच्छब्दान्यत्वे तथाभूतोपदेशः स्यात् ।
५५. यत्स्थाने वा तद्गीतिः स्यात् पदान्यत्वप्रधानत्वात् ।
५६. गानसंयोगाच्च । ५७. वचनमिति चेत् ? ५८. न; तत्प्रधानत्वात् ।

इति नवमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. सामानि मन्त्रमेके स्मृत्युपदेशाभ्याम् । २. तदुक्तदोषम् ।
३. कर्म वा विधिलक्षणम् । ४. तद्दग्द्रव्यं वचनात् पाकयज्ञवत् ।
५. तत्राविप्रतिषिद्धो द्रव्यान्तरे व्यतिरेकः प्रदेशश्च ।
६. शब्दार्थत्वात्तु नैवं स्यात् । ७. परार्थत्वाच्च शब्दानाम् ।
८. असम्बन्धश्च कर्मणा शब्दयोः पृथगर्थत्वात् ।
९. संस्कारश्चाप्रकरणेऽग्निवत् स्यात् प्रयुक्तत्वात् ।
१०. अकार्य्यत्वाच्च शब्दानामप्रयोगः प्रतीयेत ।
११. आश्रितत्वाच्च[२] । १२. प्रयुज्यत इति चेत् !
१३. ग्रहणार्थं प्रयुज्येत । १४. तृचे स्यात् श्रुतिनिर्देशात् ।
१५, शब्दार्थत्वाद्विकारस्य । १६. दर्शयति च ।
१७. वाक्यानां तु विभक्तत्वात् प्रतिशब्दं समाप्तिः स्यात्, संस्कारस्य तदर्थत्वात् । १८. तथा चान्यार्थदर्शनम् । १९. अनवानोपदेशश्च तद्वत् ।
२०. अभ्यासेनेतरा श्रुतिः । २१. तदभ्यासः समासु स्यात् ।
२२. लिङ्गदर्शनाच्च । २३. नैमित्तिकं तूत्तरात्वमानन्तर्यात् प्रतीयेत ।

---

१. एकशब्दादिति पाठा० । २. अश्रुतत्वाच्चेति पाठा० ।

२४. ऐकार्थ्याच्च तदभ्यासः । २५. प्रागाथिकं तु ।
२६. स्वे च । २७. प्रगाथे च ।
२८. लिङ्गदर्शनाव्यतिरेकाच्च । २९. अर्थैकत्वाद् विकल्पः स्यात् ।
३०. अर्थैकत्वाद्विकल्पः स्याद्, ऋक्सामयोस्तदर्थत्वात् ।
३१. वचनाद्विनियोगः स्यान् ।
३२. सामप्रदेशे विकारस्तदपेक्षः स्याच्छास्त्रकृतत्वात् ।
३३. वर्णे तु बादरिर्यथाद्रव्यं द्रव्यव्यतिरेकात् ।
३४. स्तोभस्यैके द्रव्यान्तरे निवृत्तिमृग्वत् ।
३५. सर्वातिदेशस्तु सामान्याल्लोकवद्विकारः स्यात् ।
३६. अन्वयश्चापि दर्शयति । ३७. निवृत्तिर्वाऽर्थलोपात् ।
३८. अन्वयो वार्थवादः स्यात् ।
३९. अधिकश्च विवर्णश्च जैमिनिः स्तोभशब्दत्वात् ।
४०. धर्मस्यार्थकृतत्वाद् द्रव्यगुणविकारव्यतिक्रमप्रतिषेधे चोदनानुबन्धसमवायात् । ४१. तदुत्पत्तेस्तु निवृत्तिस्तत्कृतत्वात् स्यात् ।
४२. आवेश्येरन्वार्थवत्वात्संस्कारस्य तदर्थत्वात् ।
४३. आख्या चैवं तदावेशाद् विकृतौ स्यादपूर्वत्वात् ।
४४. परार्थे[1] त्वर्थसामान्यं संस्कारस्य तदर्थत्वात् ।
४५. क्रियेरन् वार्थनिर्वृत्तेः । ४६. एकार्थत्वादविभागः स्यात् ।
४७. निर्देशाद्वा व्यवतिष्ठेरन् ।
४८. अप्राकृते तद्विकाराद्विरोधाद् व्यवतिष्ठेरन् ।
४९. उभयसाम्नि चैवमेकार्थापत्तेः ।
५०. स्वार्थत्वाद्वा व्यवस्था स्यात् प्रकृतिवत् ।
५१. पार्वणहोमयोस्त्वप्रवृत्तिः समुदायार्थसंयोगात्तदभीज्या हि ।
५२. कालस्येति चेत् ? ५३. न; अप्रकरणत्वात् । ५४. मन्त्रवर्णाच्च ।

---

१. परार्थेन—पाठा० ।

५५. तदभावेऽग्निवदिति चेत् ? ५६. न; आधिकारिकत्वात् ।
५७. उभयोरविशेषात् । ५८. यदभीज्या वा तद्विषयौ ।
५९. प्रयाजेऽपीति चेत् ? ६०. न; अचोदितत्वात् ।

इति नवमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. प्रकृतौ यथोत्पत्तिवचनमर्थानां तथोत्तरस्यां ततौ प्रत्कृतित्वादर्थं चाकार्यत्वत् ।
२. लिङ्गदर्शनाच्च । ३. जातिनैमित्तिकं यथास्थानम् ।
४. अविकारमेकेऽनार्थत्वात् । ५. लिङ्गदर्शनाच्च ।
६. विकारो वा तदुक्तहेतुः । ७. लिङ्गं मन्त्रचिकीर्षार्थम् ।
८. नियमो वोभयभागित्वात् ।
९. लौकिके दोषसंयोगादपवृक्ते हि चोद्यते निमित्तेन प्रकृतौ स्यादभागित्वात् ।
१०. अन्यायस्त्वविकारेणादृष्टप्रतिघातित्वादविशेषाच्च तेनास्य ।
११. विकारो वा तदर्थत्वात् ।
१२. अपि त्वन्यायसम्बन्धात् प्रकृतिवत् परेष्वपि यथार्थं स्यात् ।
१३. यथार्थं त्वन्यायस्याचोदितत्वात् । १४. छन्दसि तु यथादृष्टम् ।
१५. विप्रतिपत्तौ विकल्पः स्यात् समत्वाद्, गुणे त्वन्यायकल्पनैकदेशत्वात् ।
१६. प्रकरणविशेषाच्च । १७. अर्थाभावात्तु नैवं स्याद् गुणमात्रमितरत् ।
१८. द्यावोस्तथेति चेत् ? १९. न; उत्पत्तिशब्दत्वात् ।
२०. अपूर्वे त्वविकारोऽप्रदेशात् प्रतीयेत । २१. विकृतौ चापि तद्वचनात् ।
२२. अध्रिगुः सवनीयेषु तद्वत्समानविधानाश्चेत् ।
२३. प्रतिनिधौ चाविकारात् । २४. अनाम्नानादशब्दत्वमभावाच्चेतरस्य स्यात् ।
२५. तादर्थ्याद्वा तदाख्यं स्यात् संस्कारैरविशिष्टत्वात् ।
२६. उक्तश्च तत्त्वमस्य । २७. संसर्गिषु चार्थस्यास्थितपरिमाणत्वात् ।
२८. लिङ्गदर्शनाच्च । २९. एकधेत्येकसंयोगादभ्यासेनाभिधानं स्यात्[1] ।
३०. अविकारो वा बहूनामेककर्मवत् ।

---

१. असर्वविषयत्वाद्—इत्यधिकः पाठः क्वचित् ।

३१. सक्तत्वं त्वैकध्यं स्यादेकत्वात्त्वचोऽनभिप्रेतं तत्प्रकृतित्वात् परेष्वभ्यासेन विवृद्धावभिधानं स्यात् ।

३२. मेधपतित्वं स्वामिदेवतस्य समवायात् सर्वत्र च प्रयुक्तत्वात्तस्य चान्याय-निगदत्वात् सर्वत्रैवाविकारः स्यात् ।

३३. अपि वा द्विसमवायोऽर्थान्यत्वे यथासंख्यं प्रयोगः स्यात् ।

३४. स्वामिनो वैकशब्द्यादुत्कर्षो देवतायां स्यात्पत्न्यां द्वितीयशब्दः स्यात् ।

३५. देवता तु तदाशीष्ट्वान् सम्प्राप्तत्वात् स्वामिन्यनर्थिका स्यात् ।

३६. उत्सर्गाच्च भक्त्या तस्मिन् पतित्वं स्यात् ।

३७. उत्कृष्येतैकसंयुक्तो द्विदेवते सम्भवात् ।

३८. एकस्तु समवायात् तस्य तल्लक्षणत्वात् ।

३९. संसर्गित्वाच्च तस्मात् तेन विकल्पः स्यात् ।

४०. एकत्वेऽपि गुणानपायात् । ४१. नियमो वा बहुदेवते विकारः स्यात् ।

४२. विकल्पो वा प्रकृतिवत् ।

४३. अर्थान्तरे विकारः स्याद् देवतापृथक्त्वादेकाभिसमवायात् स्यात् ॥

इति नवमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थं पादः

१. षड्विंशतिरभ्यासेन पशुगणे तत्प्रकृतित्वाद् गुणस्य प्रविभक्तत्वादविकारो हि तासामकार्त्स्न्येनाभिसम्बन्धो विकारान्न समासः स्यादसंयोगाच्च सर्वाभिः ।

२. अभ्यासेऽपि तथेति चेत् ? ३. न; गुणादर्थकृतत्वाच्च ।

४. समासेऽपि तथेति चेत् ? ५. न; असम्भवात् ।

६. स्वाभिश्च वचनं प्रकृतौ तथेह स्यात् ।

७. वङ्क्रीणा तु प्रधानत्वात् समासेनाभिधानं स्यात् प्राधान्यमध्रिगोस्त-दर्थत्वात् । ८. तासां च कृत्स्नवचनात् ।

९. अपि त्वसन्निपातित्वात् पत्नीवदाम्नातेनाभिधानं स्यात् ।

१०. विकारस्तु प्रदेशत्वाद्यजमानवत् । ११. अपूर्वत्वात्तथा पत्न्याम् ।

१२. आम्नातस्त्वविकारात् सङ्ख्यासु सर्वगामित्वात् ।

१३. सङ्ख्या त्वेयं प्रधानं स्याद्वङ्क्रयः पुनः प्रधानम् ।

१४. अनाम्नातवचनमवचनेन हि वङ्क्रीणां स्यान्निर्देशः ।

१५. अभ्यासो वाऽविकारात् स्यात् ।

१६. पशुस्त्वेवं प्रधानं स्यादभ्यासस्य तन्निमित्तत्वात् तस्मात्समासशब्दः स्यात् ।

१७. अश्वस्य चतुस्त्रिंशत् तस्य वचनाद् वैशेषिकम् ।

१८. तत् प्रतिषिध्य प्रकृतिर्नियुज्यते सा चतुस्त्रिंशद्वाच्यत्वात् ।

१९. ऋग्वा स्यादाम्नातत्वादविकल्पश्च न्याय्यः ।

२०. तस्यां तु वचनादैरवत् पदविकारः स्यात् ।

२१. सर्वप्रतिषेधो वाऽसंयोगात् पदेन स्यात् ।

२२. वनिष्ठुसन्निधानादुरूकेण वपाभिधानम् ।

२३. प्रशसाऽस्यभिधानम् । २४. वाहुप्रशंसा वा ।

२५. श्येन-शला-कश्यप-कवषोरु-स्त्रेकपर्णेष्वाकृतिवचनं प्रसिद्धसन्निधानात् ।

२६. कार्त्स्न्यं वा स्यात्तथाभावात् । २७. अध्रिगोश्च तदर्थत्वात् ।

२८. प्रासङ्गिके प्रायश्चित्तं न विद्यते परार्थत्वात्तदर्थे हि विधीयते ।

२९. धारणे च परार्थत्वात् । ३०. क्रियार्थत्वादितरेषु कर्म स्यात् ।

३१. न तूत्पन्ने यस्य चोदनाऽप्राप्तकालत्वात् ।

३२. प्रदानदर्शनं श्रपणे तद्धर्मभोजनार्थत्वात् संसर्गाच्च मधूदकवत् ।

३३. संस्कारप्रतिषेधश्च तद्वत् । ३४. तत्प्रतिषेधे च तथाभूतस्य वर्जनात् ।

३५. अधर्मत्वमप्रदानात् प्रणीतार्थे विधानादतुल्यत्वादसंसर्गः ।

३६. परो नित्यानुवादः स्यात् । ३७. विहितप्रतिषेधो वा ।

३८. वर्जने गुणभावित्वात् तदुक्तप्रतिषेधात् स्यात् कारणात् केवलाशनम् ।

३९. व्रतधर्माच्च लेपवत् । ४०. रसप्रतिषेधो वा पुरुषधर्मत्वात् ।

४१. अभ्युदये दोहापनयः सधर्मा स्यात् प्रवृत्तत्वात् ।

४२. श्रृतोपदेशाच्च । ४३. अपनयो वार्थान्तरे विमानाच्चरुपयोवत् ।

४४. लक्षणार्था श्रृतश्रुतिः । ४५. श्रपणानां त्वपूर्वत्वात्प्रदानार्थे विधानं स्यात् ।

४६. गुणी वा श्रपणार्थत्वात् । ४७. अनिर्देशाच्च ।
४८. श्रुतेश्च तत्प्रधानत्वात् । ४९. अर्थवादश्च तदर्थवत् ।
५०. संस्कारं प्रति भावाच्च तस्मादथ[1] प्रधानं स्यात् ।
५१. पर्यग्निकृतानामुत्सर्गे तादर्थ्यमुपधानवत् ।
५२. शेषप्रतिषेधो वाऽर्थाभावादिडान्तवत् ।
५३. पूर्ववत्त्वाच्च शब्दस्य संस्थापयतीति चाप्रवृत्ते नोपपद्यते ।
५४. प्रवृत्तेर्यज्ञहेतुत्वात् प्रतिषेधे संस्काराणामकर्म स्यात् तत्कारितत्वाद् यथा प्रयाजप्रतिषेधे ग्रहणमाज्यस्य ।
५५. क्रिया वा स्यादवच्छेदादकर्म सर्वहानं स्यात् ।
५६. आज्यसंस्थाने प्रतिनिधिः स्यात् द्रव्योत्सर्गात् । ५७. समाप्तिवचनात् ।
५८. चोदना वा कर्मोत्सर्गादन्यैः स्यादविशिष्टत्वात् ।
५९. अनिज्यां च वनस्पतेः प्रसिद्धां तेन दर्शयति ।
६०. संख्या तद्देवतत्वात् स्यात् ॥

इति नवमाध्यायस्य चतुर्थः पादः, नवमोऽध्यायश्च ॥

अथ दशमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. विधेः प्रकरणान्तरेऽतिदेशात् सर्वकर्म स्यात् ।
२. अपि वाऽभिधानसंस्कारद्रव्यमर्थे क्रियेत तादर्थ्यात् ।
३. तेषामप्रत्यक्षविशिष्टत्वात् ।
४. इष्टिरारम्भसंयोगादङ्गभूतान्निवर्तेतारम्भस्य प्रधानसंयोगात् ।
५. प्रधानाच्चान्यसंयुक्तात् सर्वारम्भान्निवर्तेतानङ्गत्वात् ।
६. तस्यां तु स्यात् प्रयाजवत् । ७. न वाङ्गभूत्वात् । ८. एकवाक्यत्वाच्च ।

१. तस्मादप्य०—पाठा० ।

९. कर्म च द्रव्यसंयोगार्थमर्थाभावान्निवर्तेत तादर्थ्यं श्रुतिसंयोगात् ।
१०. स्थाणौ तु देशमात्रत्वादनिवृत्तिः प्रतीयेत ।
११. अपि वा शेषभूतत्वात् तत्संस्कारः प्रतीयेत ।
१२. समाख्यानं च तद्वत् । १३. मन्त्रवर्णश्च तद्वत् ।
१४ प्रयाजे च तन्न्यायात् । १५. लिङ्गदर्शनाच्च ।
१६. तथाज्यभागाग्निरपीति चेत् ? १७. व्यपदेशाद् देवतान्तरम् ।
१८. समत्वाच्च । १९. पशावपीति चेत् ?
२०. न; तद्भूतवचनात् । २१. लिङ्गदर्शनाच्च ।
२२. गुणो वा स्यात् कपालवद् गुणभूतविकाराच्च ।
२३. अपि वा शेषभूतत्वात्संस्कारः प्रतीयेत स्वाहाकारवदङ्गानामर्थसंयोगात् ।
२४. वृद्धवचनं[1] च विप्रतिपत्तौ तदर्थत्वात् ।
२५. गुणेऽपीति चेत् ? २६. नासंहानात् कपालवत् ।
२७. ग्रहाणाञ्च सम्प्रतिपत्तौ तद्वचनं तदर्थत्वात् ।
२८ ग्रहाभावे च तद्वचनम् । २९. देवतायाश्च हेतुत्वं प्रसिद्धं तेन दर्शयति ।
३०. अविरुद्धोपपत्तिरर्थापत्तेः शृतवत् गुणभूतविकारः स्यात् ।
३१. स द्व्यर्थः स्यादुभयोः श्रुतिभूतत्वाद्विप्रतिपत्तौ तादर्थ्याद्विकारत्वमुक्तं तस्यार्थवादत्वम् । ३२. विप्रतिपत्तौ तासामाख्याविकारः स्यात् ।
३३. अभ्यासो वा प्रयाजकदेकदेशोऽन्यदेवत्यः ।
३४. चरुर्हविर्विकारः स्यादिज्यासंयोगात् । ३५. प्रसिद्धग्रहणत्वाच्च ।
३६. ओदनो वाऽन्नसंयोगात् । ३७. न; द्व्यर्थत्वात् ।
३८. कपालविकारो वा विषयेऽर्थोपपत्तिभ्याम् ।
३९. गुणमुख्यविशेषाच्च । ४०. तच्छ्रुतौ चान्यहविष्ट्वात् ।
४१. लिङ्गदर्शनाच्च । ४२. ओदनो वा प्रयुक्तत्वात् ।
४३. अपूर्वव्यपदेशाच्च । ४४. तथा च लिङ्गदर्शनम् ।
४५. स कपाले प्रकृत्या स्यादन्यस्य चाश्रुतित्वात् ।

---

१. व्यूढ०—इत्यपि पाठः।

४६. एकस्मिन् वा विप्रतिषेधात् ।

४७. न वाऽर्थान्तरसंयोगादपूपे पाकसंयुक्तं धारणार्थं चरौ भवति तत्रार्थात् पात्रलाभः स्यादनियमोऽविशेषात् । ४८. चरौ वा लिङ्गदर्शनात् ।

४९. तस्मिन् पेषणमर्थलोपात् स्यात् । ५०. अक्रिया[1] वा अपूपहेतुत्वात् ।

५१. पिण्डार्थत्वाच्च संयवनम् । ५२. संवपनञ्च तादर्थ्यात् ।

५३. सन्तापनमधःश्रपणार्थत्वात् । ५४. उपधानं च तादर्थ्यात् ।

५५. पृथुश्लक्ष्णे[2] वाऽनपूपत्वात्[2] । ५६. अभ्यूहश्चोपरिपाकार्थत्वात्[3] ।

५७. तथाऽवज्वलनम् । ५८. व्युद्धृत्यासादनं च प्रकृतावश्रुतित्वात् ।।

इति दशमाध्यायस्य प्रथमः पादः ।।

द्वितीयः पादः

१. कृष्णलेष्वर्थलोपादपाकः स्यात् ।

२. स्याद्वा प्रत्यक्षशिष्टत्वात् प्रदानवद् ।

३. उपस्तरणाभिघारणयोरमृतार्थत्वादकर्मं स्यात ।

४. क्रियेत वाऽर्थवादत्वात्तयोः संसर्गहेतुत्वात् ।

५. अकर्मं वा चतुर्भिराप्तिवचनात् सह पूर्णं पुनश्चतुरवत्तम् ।

६. क्रिया वा मुख्यावदानपरिमाणात सामान्यात् तद्गुणत्वम् ।

७. तेषां चैकावदानत्वात् । ८. आप्तिः संख्यासमानत्वात् ।

९. सतोस्त्वाप्तिवचनं व्यर्थम् । १०. विकल्पस्त्वेकावदानत्वात् ।

११. सर्वविकारे त्वभ्यासानर्थक्यं हविषो हीतरस्य स्यादपि वा स्विष्टकृतः स्यादितरस्यान्याय्यत्वात् ।

१२. अकर्म वा संसर्गार्थनिवृत्तित्वात् तस्मादाप्तिसमर्थत्वम् ।

१३. भक्षाणां तु प्रीत्यर्थत्वादकर्म स्यात् । १४. स्याद्वा निर्धानदर्शनात ।

१५. वचनं वाऽऽज्यभक्षस्य प्रकृतौ स्यादभागित्वात् ।

---

१. अकर्म—इत्यपि पाठः ।

२-२. पृथुश्लक्ष्णौ चापूपार्थत्वात्—पाठा० । ३. अभ्यूहनं चो०—पाठा० ।

१६. वचनं वा हिरण्यस्य प्रदानवदाज्यस्य गुणभूतत्वात् ।
१७. एकधोपहारे सहत्वं ब्रह्मभक्षाणां प्रकृतौ व्याहृतत्वात्[१] ।
१८. सर्वत्वं च तेषामधिकारात् स्यात् ।
१९. पुरुषापनयो वा तेषामवाच्यत्वात् ।
२०. पुरुषापनयात् स्वकालत्वम् । २१. एकार्थत्वादविभागः स्यात् ।
२२. ऋत्विग्दानं धर्ममात्रार्थं स्याद्ददातिसामर्थ्यात् ।
२३. परिक्रयार्थं वा कर्मसंयोगाल्लोकवत् । २४. दक्षिणायुक्तवचनाच्च ।
२५. न चाऽन्येनानम्येत परिक्रयात्, कर्मणः परार्थत्वात् ।
२६. परिक्रीतवचनाच्च । २७. सनिवन्त्येव भृतिवचनात् ।
२८. नैष्कर्तृकेण संस्तवाच्च । २९. शेषभक्षाश्च तद्वत् ।
३०. संस्कारो वा द्रव्यस्य परार्थत्वात् । ३१. शेषे च समत्वात् ।
३२. स्वामिनि च दर्शनात् तत्सामान्यादितरेषां तथात्वम् ।
३३. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
३४. वरणमृत्विजामानमनार्थत्वात् सत्रे न स्यात् स्वकर्मत्वात् ।
३५. परिक्रयश्च तादर्थ्यात् । ३६. प्रतिषेधश्च कर्मवत् ।
३७. स्याद्वा प्रासर्पिकस्य धर्ममात्रत्वात् ।
३८. न दक्षिणाशब्दात् तस्मान्नित्यानुवादः स्यात् ।
३९. उदवसानीयः सत्रधर्मा स्यात् तदङ्गत्वात्तत्र दानं धर्ममात्रं स्यात् ।
४०. न त्वेतत्प्रकृतित्वाद्विभक्तचोदितत्वाच्च ।
४१. तेषां तु वचनाद् द्वियज्ञवत् सहप्रयोगः स्यात् ।
४२. तत्रान्यानृत्विजो वृणीरन् ।
४३. एकैकशस्त्वविप्रतिषेधात् प्रकृतेश्चैकसंयोगात् ।
४४. कामेष्टौ च दानशब्दात् । ४५. वचनं वा सत्रत्वात् ।
४६. द्वेष्ये चाचोदनाद्दक्षिणापनयः स्यात् ।
४७. अस्थियज्ञोऽविप्रतिषेधादितरेषां स्याद्विप्रतिषेधादस्थ्नाम् ।

---

१. विहितत्वात्—पाठा० ।

४८. यावदुक्तमुपयोगः स्यात् ।

४९. यदि तु वचनात् तेषां जपसंस्कारमर्थलुप्तं सेष्टि तदर्थत्वात् ।

५०. काम्यानि तु न विद्यन्ते कामाज्ञानाद् यथेतरस्यानूच्यमानानि ।

५१. क्रत्वर्थं तु क्रियेत गुणभूतत्वात् । ५२. ईहार्थाश्चाभावात् सूक्तवाकवद् ।

५३. स्युर्वा अर्थवादत्वात् । ५४. नेच्छाभिधानात् तदभावादितरस्मिन् ।

५५. स्युर्वा होतृकामाः । ५६. न तदाशिष्ट्वात् ।

५७. सर्वस्वारस्य दिष्टगतौ समापनं न विद्यते कर्मणो जीवसंयोगात् ।

५८. स्याद्वोभयोः प्रत्यक्षशिष्टत्वात् । ५९. गते कर्मास्थियज्ञवत् ।

६०. जीवत्यवचनमायुराशिषस्तदर्थत्वात् ।

६१. वचनं वा भागित्वात् प्राग् यथोक्तात् ।

६२. क्रिया स्याद्धर्ममात्राणाम् । ६३. गुणलोपे च मुख्यस्य ।

६४. मुष्टिलोपात् तु संख्यालोपस्तद्गुणत्वात् । ६५. न निर्वापशेषत्वात् ।

६६. संख्या तु चोदनां प्रति सामान्यात् तद्विकारः संयोगाच्च परं मुष्टेः ।

६७. न चोदनाभिसम्बन्धात् प्रकृतौ संस्कारसंयोगात् ।

६८. औत्पत्तिके तु द्रव्यतो विकारः स्यादकार्यत्वात् ।

६९. नैमित्तिके तु कार्यत्वात् प्रकृतेः स्यात् तदापत्तेः ।

७०. विप्रतिषेधे तद्वचनात् प्राकृतगुणलोपः स्यात्, तेन च कर्मसंयोगात् ।

७१. परेषां प्रतिषेधः स्यात् । ७२. प्रतिषेधाच्च ।

७३. अर्थाभावे संस्कारत्वं स्यात् ।

७४. अर्थेन च विपर्यासे तादर्थ्यात् तत्त्वमेव स्यात् ॥

इति दशमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. विकृतौ शब्दवत्त्वात् प्रधानस्य गुणानामधिकोत्पत्तिः सन्निधानात् ।

२. प्रकृतिवत् तस्य चानुपरोधः । ३. चोदनाप्रभुत्वाच्च ।

४. प्रधानं त्वङ्गसंयुक्तं तथाभूतमपूर्वं स्यात् तस्य विध्युपलक्षणात् सर्वो हि पूर्ववान् विधिरविशेषात् प्रवर्त्तितः । ५. न चाङ्गविधिरनङ्गे स्यात् ।

६. कर्मणश्चैकशब्दयात् सन्निधाने विधेराख्यासंयोगो गुणेन तद्विकारः स्यात् शब्दस्य विधिगामित्वात् गुणस्य चोपदेश्यत्वात् ।

७. अकार्य्यत्वाच्च नाम्नः । ८. तुल्या च प्रभुता गुणे ।

९. सर्वैनेवं प्रधानानामिति चेत् ? १०. तथाभूतेन संयोगाद्यथार्थविधयः स्युः ।

११. विधित्वं चाविशिष्टमेवं प्राकृतानां वैकृतैः कर्मणा योगात् तस्मात् सर्वं प्रधानार्थम् । १२. समत्वाच्च तदुत्पत्तेः संस्कारैरधिकारः स्यात् ।

१३. हिरण्यगर्भे पूर्वस्य मन्त्रलिङ्गात् । १४. प्रकृत्यनुपरोधाच्च ।

१५. उत्तरस्य वा मन्त्रार्थित्वात् ।

१६. विध्यप्रतिदेशात् तच्छ्रुतौ विकारः स्याद् गुणानामुपदेश्यत्वात् ।

१७. पूर्वस्मिंश्चामन्त्रत्वदर्शनात् ।

१८. संस्कारे तु क्रियान्तरं तस्य विधायकत्वात् । १९. प्रकृत्यनुपरोधाच्च ।

२०. विधेस्तु तत्र भावात् सन्देहे इस्य शब्दस्तदर्थः स्यात् ।

२१. संस्कारसामार्थ्याद् गुणसंयोगाच्च ।

२२. विप्रतिषेधात् क्रियाप्रकरणे स्यात् ।

२३. षड्भिर्दीक्षयतीति तासां मन्त्रविकारः श्रुतिसंयोगात् ।

२४. अभ्यासात् तु प्रधानस्य । २५. आवृत्त्या मन्त्रकर्म स्यात् ।

२६. अपि वा प्रतिमन्त्रत्वात् प्राकृतानामहानिः स्यादन्यायश्च कृतेऽभ्यासः ।

२७. पौर्वापर्य्यश्चाभ्यासे नोपपद्यते नैमित्तिकत्वात् ।

२८. तत्पृथक्त्वं च दर्शयति । २९. न चाविशेषाद्व्यपदेशः स्यात् ।

३०. आग्न्याधेयस्य नैमित्तिके गुणविकारे दक्षिणादानमधिकं स्याद्वाक्यसंयोगात् ।

३१. शिष्टत्वाच्चेतरासां यथास्थानम् । ३२. विकारस्त्वप्रकरणे हि काम्यानि ।

३३. शङ्कते च निवृत्तेरुभयत्वं हि श्रूयते । ३४. वासो वत्सश्च सामान्यात् ।

३५. अर्थापत्तेस्तद्धर्म्मा स्यान्निमित्ताख्याभिसंयोगात् ।

३६. दाने पाकोऽर्थलक्षणः । ३७. पाकस्य चान्नकारितत्वात् ।

३८. तथाभिघारणस्य । ३९. द्रव्यविधिसन्निधौ सङ्ख्या तेषां गुणत्वात् स्यात् ।

४०. समत्वात् तु गुणानामेकस्य श्रुतिसंयोगात् ।

४१. यस्य वा सन्निधाने स्याद् वाक्यतो ह्यभिसम्बन्धः ।

४२. असंयुक्ता तु तुल्यवदितराभिर्विधीयन्ते तस्मात्सर्वाधिकारः स्यात् ।

४३. असंयोगाद्विधिश्रुतादेकजातात्रिकारः स्यात् श्रुत्याकोपात् क्रतोः ।

४४. शब्दार्थश्चापि लोकवत् । ४५. सा पशूनामुत्पत्तितो विभागात् ।

४६. अनियमोऽविशेषात् । ४७. भागित्वाद्वा गवां स्यात् । ४८. प्रत्ययात् ।

४९. लिङ्गदर्शनाच्च । ५०. तस्य दानं विभागेन प्रदानानां पृथक्त्वात् ।

५१. परिक्रयाच्च लोकवत् । ५२. विभागं चापि दर्शयति ।

५३. समं स्यादश्रुतत्वात् । ५४. अपि वा कर्मवैषम्यात् ।

५५. अतुल्याः स्युः परिक्रय विषमाख्या विधिश्रुतौ परिक्रयान्न कर्मण्युपपद्यते दर्शनाद्विशेषस्य तथाभ्युदये ।

५६. तस्य धेनुरिति गवां प्रकृतौ विभक्तचोदितत्वात् सामान्यात् तद्विकारः स्याद् यथेष्टिर्गुणशब्देन ।

५७. सर्वस्य वा क्रतुसंयोगादेकत्वं दक्षिणार्थस्य गुणानां कार्य्यैकत्वादर्थे विकृतौ श्रुतिभूतं स्यात् तस्मात् समवायाद्धि कर्मभिः ।

५८. चोदनानामनाश्रयाल्लिङ्गेन नियमः स्यात् ।

५९. एकां पञ्चेति धेनुवत् । ६०. त्रिवत्सश्च ।

६१. तथा च लिङ्गदर्शनम् ।

६२. एके तु श्रुतिभूतत्वात् सङ्ख्यया गवां लिङ्गविशेषेण ।

६३. प्राकाशौ तथेति चेत् ?

६४. अपि त्ववयवार्थत्वात् विभक्तप्रकृतित्वात् गुणे दन्ताविकारः स्यात् ।

६५. धेनुवच्चाश्वदक्षिणा, स ब्रह्मण इति पुरुषापनयो यथा हिरण्यस्य ।

६६. एके तु कर्तृसंयोगात् स्रग्वत्तस्य लिङ्गविशेषेण ।

६७. अपि वा तदधिकाराद्धिरण्यवद्विकारः स्यात् । ६८. तथा च सोमचमसः ।

६९. सर्वविकारो वा क्रत्वर्थे प्रतिषेधात् पशूनाम् ।

७०. ब्रह्मदानेऽविशिष्टमिति चेत् ?

७१. उत्सर्गस्य क्रत्वर्थत्वात् प्रतिषिद्धस्य कर्म स्यात् न च गौणः प्रयोजनमर्थः स दक्षिणानां स्यात् ।

७२. यदि तु ब्रह्मणस्तदूनं तद्विकारः स्यात् ।

७३. सर्वं वा पुरुषापनयात्तासां क्रतुप्रधानत्वात् ।

७४. यजुर्युक्ते त्वध्वर्य्योर्दक्षिणा विकारः स्यात् ।

७५. अपि वा श्रुतिभूतत्वात् सर्वासां तस्य भागो नियम्यते ।

इति दशमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. प्रकृतिलिङ्गासंयोगात् कर्मसंस्कारं विकृतावधिकं स्यात् ।

२. चोदनालिङ्गसंयोगे तद्विकारः प्रतीयेत प्रकृतिसन्निधानात् ।

३. सर्वत्र तु ग्रहाम्नानमधिकं स्यात् प्रकृतिवत् ।

४. अधिकैश्चैकवाक्यत्वात् । ५. लिङ्गदर्शनाच्च ।

६. प्राजापत्येषु चाम्नानात् । ७. आमने लिङ्गदर्शनाच्च ।

८. उपगेषु शरवत् स्यात् प्रकृतिलिङ्गसंयोगात् ।

९. आनर्थक्यात् त्वधिकं स्यात् । १०. संस्कारे चान्यसंयोगात् ।

११. प्रयाजवदिति चेत् ? १२. न; अर्थान्यत्वात् ।

१३. आच्छादने त्वैकार्थ्यात् प्राकृतस्य विकारः स्यात् ।

१४. अधिकं वान्यार्थत्वात् । १५. समुच्चयश्च दर्शयति ।

१६. सामस्वर्थान्तरश्रुतेरविकारः प्रतीयेत ।

१७. अर्थे त्वश्रूयमाणे शेषत्वात् प्राकृतस्य विकारः स्यात् ।

१८. सर्वेषामविशेषात् । १९. एकस्य वा श्रुतिसामर्थ्यात् प्रकृतेश्चाविकारात् ।

२०. स्तोमविवृद्धौ त्वधिकं स्यादविवृद्धौ द्रव्यविकारः स्यादितरस्याश्रुतित्वाच्च ।

२१. पवमाने स्यातां तस्मिन्नावापोद्वापदर्शनात् । २२. वचनानि त्वपूर्वत्वात् ।

२३. विधिशब्दस्य मन्त्रत्वे भावः स्यात् तेन चोदना ।

२४. शेषाणां चोदनैकत्वात्तस्मात् सर्वत्र श्रूयते ।

२५. तथोत्तरस्यां ततौ तत्प्रकृतित्वात् ।

२६. प्राकृतस्य गुणश्रुतौ सगुणेनाभिधानं स्यात् ।

२७. अविकारो वाऽर्थशब्दानपायात् स्याद् द्रव्यवत् ।

२८. तथारम्भासमवायाद्वा चोदितेनाभिधानं स्यादर्थस्य श्रुतिसमवायित्वादवचने च गुणशास्त्रमनर्थकं स्यात् ।

२९. द्रव्येष्वारम्भगामित्वादर्थे विकारः सामर्थ्याद् ।

३०. वृधन्वान् पवमानवद्विशेषनिर्देशात् ।

३१. मन्त्रविशेषनिर्देशान्न देवताविकारः स्यात् ।

३२. विधिनिगमभेदात् प्रकृतौ तत्प्रकृतित्वाद्विकृतावपि भेदः स्यात् ।

३३. यथोक्तं वा विप्रतिपत्तेर्न चोदना ।

३४. स्विष्टकृद् देवतान्यत्वे तच्छब्दत्वान्निवर्तेत ।

३५. संयोगो वार्थापत्तेरभिधानस्य कमजत्वात् ।

३६. सगुणस्य गुणलोपे निगमेषु यावदुक्तं स्यात् । ३७. सर्वस्य वैककर्म्यात् ।

३८. स्विष्टकृदावापिकोऽनुयाजे स्यात् प्रयोजनवदङ्गानामर्थसंयोगात् ।

३९. अन्वाहेति च शस्त्रवत् कर्म स्यात् चोदनान्तरात् ।

४०. संस्कारो वा चोदितस्य शब्दवचनार्थत्वात् । ४१. स्याद् गुणार्थत्वात् ।

४२. मनोतायां तु वचनादविकारः स्यात् ।

४३. पृष्ठार्थेऽन्यद्रथन्तरात् तद्योनिपूर्वत्वात् स्यादृचां प्रविभक्तत्वात् ।

४४. स्वयोनौ वा सर्वाख्यत्वात् ।

४५. यूपवदिति चेत् ? ४६. न; कर्मसंयोगात् ।

४७. कार्यत्वादुत्तरयोर्यथाप्रकृति । ४८. समानदेवते वा तृचस्य विभागात् ।

४९. ग्रहाणां देवतान्यत्वे स्तुतशस्त्रयोः कर्मत्वादविकारः स्यात् ।

५०. उभयपानात्पृषदाज्ये दध्नः स्यादुपलक्षणं निगमेषु पातव्यस्योपलक्षणात् ।

५१. न वा परार्थत्वादयज्ञपतिवत् । ५२. स्याद्वा आवाहनस्य तादर्थ्यात् ।

५३. न वा संस्कारशब्दत्वात् । ५४. स्याद्वा द्रव्याभिधानात् ।

५५. दध्नस्तु गुणभूतत्वादाज्यपा निगमाः, स्युर्गुणत्वं श्रुतेराज्यप्रधानत्वात् ।

५६. दधि वा स्यात् प्रधानमाज्ये प्रथमान्त्यसंयोगात् ।

५७. अपि वाज्यप्रधानत्वाद् गुणार्थे व्यपदेशे भक्त्या संस्कारशब्दः स्यात् ।

५८. अपि वाख्याविकारत्वात् तेन स्यादुपलक्षणम् ।

५९. न वा स्याद् गुणशास्त्रत्वात् ।।

इति दशमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ।।

पञ्चमः पादः

१. आनुपूर्व्यवतामेकदेशग्रहणेष्वागमवदन्त्यलोपः स्यात् ।
२. लिङ्गदर्शनाच्च ।
३. विकल्पो वा समत्वात् ।
४. क्रमादुपजनोऽन्ते स्यात् ।
५. लिङ्गमविशिष्टं सङ्ख्याया हि तद् वचनम् ।
६. आदितो वा प्रवृत्तिः स्यादारम्भस्य तदादित्वाद् वचनादन्तविधिः स्यात् ।
७. एकत्रिके तृचादिषु माध्यन्दिने च्छन्दसां श्रुतिभूतत्वात् ।
८. आदितो वा तन्न्यायत्वादितरस्यानुमानिकत्वात् ।
९. यथानिवेशं च प्रकृतिवत् सङ्ख्यामात्रविकारत्वात् ।
१०. त्रिकं तृचेषु धुर्य्ये स्यात् ।
११. एकस्यां वा स्तोमस्यावृत्तिधर्मत्वात् ।
१२. चोदनासु त्वपूर्वत्वाल्लिङ्गेन धर्मनियमः स्यात् ।
१३. प्राप्तिस्तु रात्रिशब्दसम्वन्धात् ।
१४. अपूर्वासु तु सङ्ख्यासु विकल्पः स्यात् सर्वासामर्थवत्त्वात् ।
१५. स्तोमविवृद्धौ प्राकृतानामभ्यासेन सङ्ख्यापूरणमविकारात् सङ्ख्या यां गुणशब्दत्वादन्यस्य चाश्रुतित्वात् ।
१६. आगमेन वाऽभ्यासस्याश्रुतित्वात् ।
१७. सङ्ख्यायाश्च पृथक्त्वनिवेशात् ।
१८. पराक्शब्दत्वात् ।
१९. उक्ताविकाराच्च ।
२०. अश्रुतित्वान्नेति चेत् ?
२१. स्यादर्थचोदितानां परिमाणशास्त्रम् ।
२२. आवापवचनं चाभ्यासे नोपपद्यते ।
२३. साम्नां चोत्पत्तिसामर्थ्यात् ।
२४. धुर्येष्वपीति चेत् ?
२५. न; अवृत्तिधर्म्मत्वात् ।
२६. वहिष्पवमाने तु ऋगागमः सामैकत्वात् ।
२७. अभ्यासेन तु सङ्ख्यापूरणं सामिधेनीष्वभ्यासप्रकृतित्वात् ।
२८. अविशेषात् नेति चेत् ?

२९. स्यात् तद्धर्मत्वात् प्रकृतिवदभ्यस्येता सङ्ख्यापूरणात् ।

३०. यावदुक्तं वा कृतपरिमाणत्वात् । ३१. अधिकानां च दर्शनात् ।

३२. न कर्मस्वपीति चेत् ? ३३. न; चोदितत्वात् ।

३४. षोडशिनो वैकृतत्वं तत्र कृत्स्नविधानात् ।

३५. प्रकृतौ चाभावदर्शनात् । ३६. अयज्ञवचनाच्च ।

३७. प्रकृतौ वा शिष्टत्वात् । ३८. प्रकृतिदर्शनाच्च ।

३९. आम्नातं परिसङ्ख्यार्थम् । ४०. उक्तमभावदर्शनम् ।

४१. गुणादयज्ञत्वम् । ४२. तस्याग्रयणाद् ग्रहणम् ।

४३. उक्थ्याच्च वचनात् । ४४. स तृतीयसवने वचनात् स्यात् ।

४५. अनभ्यासे पराक् शब्दस्य तादर्थ्यात् । ४६. उक्थ्याविच्छेदवचनत्वात् ।

४७. आग्रयणाद्वा पराक्शब्दस्य देशवाचित्वात् पुनराधेयवत् ।

४८. विच्छेदः स्तोमसामान्यात् ।

४९. उक्थ्याऽग्निष्टोमसंयोगादस्तुतशस्त्रः स्यात् सति हि संस्थान्यत्यम् ।

५०. सस्तुतशस्त्रो वा तदङ्गत्वात् । ५१. लिङ्गदर्शनाच्च ।

५२. वचनात् संस्थान्यत्वम् । ५३. अभावादतिरात्रेषु गृह्यते ।

५४. अन्ववो वानारभ्य विधानात् ।

५५. चतुर्थे चतुर्थेऽहन्यहीनस्य गृह्यत इत्यभ्यासेन प्रतीयेत भोजनवत् ।

५६. अपि वा सङ्ख्यावत्त्वात् नानाहीनेषु गृह्यते पक्षवदेकस्मिन् संख्यार्थभावात् । ५७. भोजने तत्सङ्ख्यं स्यात् ।

५८. जगत्साम्नि सामाभावाद् ऋक्तः साम तदाख्यं स्यात् ।

५९. उभयसाम्नि नैमित्तिकं विकल्पेन समत्वात् स्यात् ।

६०. मुख्येन वा नियम्येत । ६१. निमित्तविघाताद् वा क्रतुयुक्तस्य कर्म स्यात् ।

६२. ऐन्द्रवायवस्याग्रवचनादादितः प्रतिकर्षः स्यात् ।

६३. अपि वा धर्मविशेषात् तद्धर्माणां स्वस्थाने प्रकरणादग्रत्वमुच्यते ।

६४. धारासंयोगाच्च । ६५. कामसंयोगे तु वचनादादितः प्रतिकर्षः स्यात् ।

६६. तद्देशानां वाग्रसंयोगात् तद्युक्तं कामशास्त्रं स्यात्, नित्यसंयोगात् ।

६७. परेषु चाग्रशब्दः पूर्ववत् स्यात् तदादिषु ।

६८. प्रतिकर्षो वा नित्यार्थेनाग्रस्य तदसंयोगात् । ६९. प्रतिकर्षश्च दर्शयति ।

७०. पुरस्तादैन्द्रवायवस्याग्रस्य कृतदेशत्वात् । ७१. तुल्यधर्मत्वाच्च ।

७२. तथा च लिङ्गदर्शनम् । ७३. सादनं चापि शेषत्वात् ।

७४. लिङ्गदर्शनाच्च । ७५. प्रदानञ्चापि सादनवत् ।

७६. न वा प्रधानत्वात् शेषत्वाद् सादनं तथा ।

७७. त्र्यनीकायां न्यायोक्तेष्वाम्नानं गुणार्थं स्यात् ।

७८. अपि वाऽहर्गणेष्वग्निवत् समानविधानं स्यात् ।

७९. द्वादशाहस्य व्यूढसमूढत्वं पृष्ठवत् समानविधानं स्यात् ।

८०. व्यूढो वा लिङ्गदर्शनात् समूढविकारः । ८१. कामसंयोगात् ।

८२. तस्योभयथा प्रवृत्तिरैककर्म्यात् ।

८३. एकादशिनवत् त्र्यनीका परिवृत्तिः स्यात् ।

८४. स्वस्थानविवृद्धिर्वाऽह्नामप्रत्यक्षसङ्ख्यत्वात् ।

८५. पृष्ठ्यावृत्तौ चाग्रयणस्य दर्शनात् त्रयस्त्रिंशे परिवृत्तौ पुनरैन्द्रवायवः स्यात् । ८६. वचनात् परिवृत्तिरैकादशिनेषु । ८७. लिङ्गदर्शनाच्च ।

८८. छन्दो व्यतिक्रमाद् व्यूढे भक्षपवमानपरिधिकपालस्य मन्त्राणां यथोत्पत्तिवचनमूहवत् स्यात् ॥

इति दशमाध्यायस्य पञ्चमः पादः ॥

षष्ठः पादः

१. एकर्च्चस्थानि यज्ञे स्युः स्वाध्यायवत् । २. तृचे वा लिङ्गदर्शनात् ।

३. स्वर्दृशं प्रति वीक्षणं कालमात्रं परार्थत्वात् ।

४. पृष्ठ्यस्य युगपद्विधेरेकाहवत् द्विसामत्वम् ।

५. विभक्ते वा समस्तविधानात् तद्विभागे विप्रतिषिद्धम् ।

६. समासस्त्वैकादशिनेषु तत्प्रकृतित्वात् । ७. विहारप्रतिषेधाच्च ।

८. श्रुतितो वा लोकवद्विभागः स्यात् । ९. विहारप्रकृतित्वाच्च ।

१०. विशये च तदासत्तेः । ११. त्रयस्तथेति चेत् ?

१२. न; समत्वात् प्रयाजवत् ।

१३. सर्वपृष्ठे पृष्ठशब्दात्तेषां स्वादेकदेशत्वं पृष्ठस्य कृतदेशत्वात् ।

१४. विधेस्तु विप्रकर्षः स्यात् ।

१५. वैरूपसामा क्रतुसंयोगात् त्रिवृद्वदेकसामा स्यात् ।

१६. पृष्ठार्थे वा प्रकृतिलिङ्गसंयोगात् । १७. त्रिवृद्वदिति चेत् ?

१८. न; प्रकृतावकृत्स्नसंयोगात् । १९. विधित्वान्नेति चेत् ?

२०. स्याद् विशये तन्न्यायत्वात् कर्माविभागात् । २१. प्रकृतेश्चाविकारात् ।

२२. त्रिवृति सङ्ख्यात्वेन[1] सर्वसङ्ख्याविकारः स्यात् ।

२३. स्तोमस्य वा तल्लिङ्गत्वात् । २४. उभयसाम्नि विश्वजिद्वद्विभागः स्यात् ।

२५. पृष्ठार्थे वाऽतदर्थत्वात् । २६. लिङ्गदर्शनाच्च ।

२७. पृष्ठे रसभोजनमावृत्ते संस्थिते त्रयस्त्रिंशेऽहनि स्यात् तदानन्तर्यात् प्रकृतिवत् । २८. अन्ते वा कृतकालत्वात् ।

२९. अभ्यासे च तदभ्यासः कर्मणः पुनः प्रयोगात् ।

३०. अन्ते वा कृतकालत्वात् । ३१. आवृत्तिस्तु व्यवाये कालभेदात् स्यात् ।

३२. मधु न दीक्षिता ब्रह्मचारित्वात् । ३३. प्राश्येते वा यज्ञार्थत्वात् ।

३४. मानसमहरन्तरं स्याद् भेदव्यपदेशात् । ३५. तेन च संस्तवात् ।

३६. अहरन्ताच्च परेण चोदना । ३७. पक्षे सङ्ख्या सहस्रवत् ।

३८. अहरङ्गम् वांशुवच्चोदनाभावात् । ३९. दशमविसर्गवचनाच्च ।

४०. दशमेऽहन्निति च तद्गुणशास्त्रात् । ४१. सङ्ख्यासामञ्जस्यात् ।

४२. पश्चतिरेके चैकस्य भावात् । ४३. स्तुतिव्यपदेशमंगेन विप्रतिपिद्धं व्रतवत् ।

४४. वचनादतदन्तत्वम् । ४५. सत्रमेकः प्रकृतिवत् ।

४६. वचनात तु वहूनां स्यात् । ४७. अपदेशः स्यादिति चेत् ?

४८. न; एकव्यपदेशात् । ४९. सन्निवापश्च दर्शयति ।

५०. वहूनामिति चैकस्मिन् विशेषवचनं व्यर्थम् ।

५१. अन्ये स्युर्ऋत्विजः प्रकृतिवत् ।

---

१. संख्यात्वात्—पाठा० ।

५२. अपि वा यजमानाः स्युर्ऋत्विजामभिधानसंयोगात् तेषां स्याद्यजमानत्वम् ।
५३. कर्तृसंस्कारो वचनादाधातृवदिति चेत् ?
५४. स्याद्विशये तन्न्यायत्वात् प्रकृतिवत् ।
५५. स्वाम्याख्याः स्युर्गृहपतिवदिति चेत् ?
५६. न; प्रसिद्धग्रहणत्वादसंयुक्तस्य तद्धर्मेण ।
५७. दीक्षिताऽदीक्षितव्यपदेशश्च नोपपद्यतेऽर्थयोर्नित्यभावित्वात् ।
५८. अदक्षिणत्वाच्च ।
५९. द्वादशाहस्य सत्रत्वमासनोपायिचोदनेन यजमानबहुत्वेन च सत्रशब्दाभिसंयोगात् । ६०. यजतिचोदनादहीनत्वं स्वामिनां चास्थितपरिमाणत्वात् ।
६१. अहीने दक्षिणाशास्त्रं गुणत्वात् प्रत्यहं कर्मभेदः स्यात् ।
६२. सर्वस्य वैककर्म्यात् । ६३. पृषदाज्यवद्वाऽह्नां गुणशास्त्रं स्यात् ।
६४. ज्यौतिष्टोम्यस्तु दक्षिणाः सर्वासामेककर्मत्वात् प्रकृतिवत्, तस्मान्नाऽऽसां विकारः स्यात् ।
६५. द्वादशाहे वचनात् प्रत्यहं दक्षिणाभेदस्तत्प्रकृतित्वात् परेषु तासां संख्याविकारः स्यात् ।
६६. परिक्रयाविभागाद्वा समस्तस्य विकारः स्यात् । ६७. भेदस्तु गुणसंयोगात् ।
६८. प्रत्यहं सर्वसंस्कारः प्रकृतिवत् सर्वासां सर्वविशेषत्वात् ।
६९. एकार्थत्वान्नेति चेत् ? ७०. स्यादुत्पत्तौ कालभेदात् ।
७१. विभज्य तु संस्कारवचनाद् द्वादशाहवत् ।
७२. लिङ्गेन द्रव्यनिर्देशे सर्वत्र प्रत्ययः स्यात् लिङ्गस्य सर्वगामित्वादाग्नेयवत् ।
७३. यावदर्थं वाऽर्थशेषत्वादल्पेन परिमाणं स्यात् तस्मिंश्च लिङ्गसामर्थ्यम् ।
७४. आग्नेये कृत्स्नविधिः । ७५. ऋजीषस्य प्रधानत्वादहर्गणे सर्वस्य स्यात् ।
७६. वाससि मानोपावहरणे प्रकृतौ सोमस्य वचनात् ।
७७. तत्राहर्गणेऽर्थाद्वासः प्रकृतिः स्यात् ।
७८. मानं प्रत्युत्पादयेत् प्रकृतौ तेन दर्शनादुपावहरणस्य ।
७९. हरणे वा श्रुत्यसंयोगादर्थाद्विकृतौ तेन ।

इति दशमाध्यायस्य षष्ठः पादः ॥

सप्तमः पादः

१. पशोरेकहविष्ट्वं समस्तचोदितत्वात् ।

२. प्रत्यङ्गं वा ग्रहवदङ्गानां पृथक्प्रकल्पनत्वात् ।

३. हविर्भेदात् कर्मणोऽभ्यासस्तस्मात् तेभ्योऽवदानं स्यात् ।

४. आज्यभागवद्वा निर्देशात् परिसङ्ख्या स्यात् ।

५. तेषां वा द्व्यवदानत्वं विवक्षन्नभिनिर्दिशेत् पशोः पञ्चावदानत्वात् ।

६. अंसशिरोनूकसक्थिप्रतिषेधश्च तदन्यपरिसङ्ख्याने ऽनर्थकः स्यात् प्रदानत्वात् तेषां निरवदानप्रतिषेधः स्यात् ।

७. अपि वा परिसङ्ख्या स्यादवदानीयशब्दत्वात् ।

८. अब्राह्मणे च दर्शनात् । ९. श्रुताश्रुतोपदेशाच्च तेषामुत्सर्गवदयज्ञशेषत्वम् ।

१०. इज्याशेषात् स्विष्टकृदिज्येत प्रकृतिवत् ।

११. त्र्यङ्गैर्वा शरवद् विकारः स्यात् ।

१२. अध्यूध्नी तु होतुस्त्र्यङ्गवदिडाभक्षविकारः स्यात् ।

१३. शेषे वा समवैति तस्माद्रथवन्नियमः स्यात् ।

१४. अशास्त्रत्वात्तु नैवं स्यात् ।

१५. अपि वा दानमात्रं स्याद् भक्षशब्दानभिसम्बन्धात् ।

१६. दातुस्त्वविद्यमानत्वादिडाभक्षविकारः स्याच्छेषं प्रत्यविशिष्टत्वात् ।

१७. आग्नीध्रश्च[1] वनिष्टुरध्यूध्नीवत् ।

१८. अप्राकृतत्वान्मैत्रावरुणस्याभक्षत्वम् ।

१९. स्याद्वा होत्रध्वर्युविकारत्वात्तयोः कर्माभिसम्बन्धात् ।

२०. द्विभागः स्याद् द्विकर्मत्वाद् ।

२१. एकत्वाद् वैकभागः स्याद् भागस्याश्रुतिभूतत्वात् ।

२२. प्रतिप्रस्थातुश्च वपाश्रपणात् ।

२३. अभक्षो वा कर्मभेदात्तस्याः सर्वप्रदानत्वात् ।

---

१. अग्नीधश्च—पाठा० ।

२४. विकृतौ प्राकृतस्य विधेग्रहणात् पुनःश्रुतिरनर्थिका स्यात् ।

२५. अपि वाऽऽग्नेयवद् द्विशब्दत्वं स्यात् । २६. न वा शब्दपृथक्त्वात् ।

२७. अधिकं वार्थवत्त्वात् स्यादर्थवादगुणाभावे वचनादविकारे तेषु हि तादर्थ्यं स्यादपूर्वत्वात् । २८. प्रतिषेधः स्यादिति चेत् ?

२९. न; अश्रुतत्वात् । ३०. अग्रहणादिति चेत् ? ३१. न; तुल्यत्वात् ।

३२. तथा तद्ग्रहणे स्यात् । ३३. अपूर्वतां तु दर्शयेत् ग्रहणस्यार्थवत्त्वात् ।

३४. ततोऽपि यावदुक्तं स्यात् ।

३५. स्विष्टकृद्भक्षप्रतिषेधः स्यात् तुल्यकारणत्वात् ।

३६. अप्रतिषेधो वा दर्शनादिडायां स्यात् ।

३७. प्रतिषेधो वा विधिपूर्वस्य दर्शनात् ।

३८. शंय्विडान्तत्वे विकल्पः स्यात् परेषु पत्न्यनुयाजप्रतिषेधोऽनर्थकः स्यात् ।

३९. नित्यानुवादो वा कर्मणः स्यादशब्दत्वात् ।

४०. प्रतिषेधार्थवत्त्वात् चोत्तरस्य परस्तात् प्रतिषेधः स्यात् ।

४१. प्राप्तेर्वा पूर्वस्य वचनादतिक्रमः स्यात् ।

४२. प्रतिषेधस्य त्वरायुक्तत्वात् तस्य च नान्यदेशत्वम् ।

४३. उपसत्सु यावदुक्तकर्म स्यात् ।

४४. स्रौवेण वा गुणत्वात् शेषप्रतिषेधः स्यात् ।

४५. अप्रतिषिद्धं वा प्रतिषिध्य प्रतिप्रसवात् ।

४६. अनिज्या वा शेषस्य मुख्यदेवतानभीज्यत्वात् ।

४७. अवभृथे बर्हिषः प्रतिषेधात् शेषकर्म स्यात् ।

४८. आज्याभागयोर्वा गुणत्वात् शेषप्रतिषेधः स्यात् ।

४९. प्रयाजानां त्वेकदेशप्रतिषेधात् वाक्यशेषत्वम् तस्मान्नित्यानुवादः स्यात् ।

५०. आज्यभागयोर्ग्रहणं नित्यानुवादो गृहमेधीयवत् स्यात् ।

५१. विरोधिनामेकश्रुतौ नियमः स्यात् ग्रहणस्यार्थवत्त्वात् शरवच्च श्रुतितो विशिष्टत्वात् । ५२ उभयप्रदेशान्नेति चेत् ? ५३. शरेष्वपीति चेत् ?

५४. विरोध्यग्रहणात्तथा शरेष्विति चेत् ? ५५. तथेतरस्मिन् ।

५६. श्रुत्यानर्थक्यमिति चेत् ?

५७. ग्रहणस्यार्थवत्त्वादुभयोरप्रतिपत्तिः स्यात् ।

५८. सर्वासाञ्च गुणानामर्थवत्त्वाद् ग्रहणमप्रवृत्ते स्यात् ।

५९. अधिकं स्यादिति चेत् ? ६० न; अर्थाभावात् ।

६१. तथैकार्थविकारे प्राकृतस्याप्रवृत्तिः, प्रवृत्तौ हि विकल्पः स्यात् ।

६२. यावच्छ्रुतीति चेत् ? । ६३. न; प्रकृतावशब्दत्वात् ।

६४. विकृतौ त्वनियमः स्यात् पृषदाज्यवद् ग्रहणस्य गुणार्थत्वात् उभयोश्च प्रदिष्टत्वाद् गुणशास्त्रं यदेति स्यात् ।

६५. ऐकार्थ्याद्वा नियम्येत श्रुतितो विशिष्टत्वात् ।

६६. विरोधित्वाच्च लोकवत् । ६७. क्रतोश्च तद्गुणत्वात् ।

६८. विरोधिनाञ्च तच्छ्रुतावशब्दत्वात् विकल्पः स्यात् ।

६९. पृषदाज्ये समुच्चयाद् ग्रहणस्य गुणार्थत्वम् ।

७०. यद्यपि चतुरवत्तीति तु नियमे नोपपद्यते ।

७१. क्रत्वन्तरे वा तन्न्याय्यत्वात् कर्मभेदात् ।

७२. यथाश्रुतीति चेत् ? ७३. न; चोदनैकत्वात् ॥

इति दशमाध्यायस्य सप्तमः पादः ॥

अष्टमः पादः

१. प्रतिषेधः प्रदेशेऽनारभ्यविधाने च, प्राप्तप्रतिषिद्धत्वाद् विकल्पः स्यात् ।

२. अर्थप्राप्तवदिति चेत् ? ३. न; तुल्यहेतुत्वादुभयं शब्दलक्षणम् ।

४. अपि तु वाक्यशेषः स्यादन्याय्यत्वाद्विकल्पस्य विधीनामेकदेशः ।

५. अपूर्वे चार्थवादः स्यात् । ६. शिष्ट्वा तु प्रतिषेधः स्यात् ।

७. न चेदन्यं प्रकल्पयेत् प्रक्लृप्तावर्थवादः स्यादानर्थक्यापरसामर्थ्याच्च ।

८. पूर्वैश्च तुल्यकालत्वात् । ९. उपवादश्च तद्वत् ।

१०. प्रतिषेधादकर्मेति चेत् ? ११. न; शब्दपूर्वत्वात् ।

१२. दीक्षितस्य दानहोमपाकप्रतिषेधोऽविशेषात् सर्वदानहोमपाकप्रतिषेधः स्यात् । १३. अक्रतुयुक्तानां वा धर्मः स्यात क्रतोः प्रत्यक्षशिष्टत्वात् ।

१४. तस्य वाप्यानुमानिकमविशेषात् ।

१५. अपि तु वाक्यशेषत्वादितरपर्युदासः स्यात्प्रतिषेधे विकल्पः स्यात् ।

१६. अविशेषेण यत् शास्त्रमन्याय्यत्वात् विकल्पस्य तत् सन्दिग्धमाराद्विशेषाः शिष्टं स्यात् । १७. अप्रकरणे तु यच्छास्त्रं विशेषे श्रूयमाणमविकृतमाज्यभागवत् प्राकृतप्रतिषेधार्थम् । १८. विकारे तु तदर्थं स्यात् ।

१९. वाक्यशेषो वा क्रतुना ग्रहणात् स्यादनारभ्यविधानस्य ।

२०. मन्त्रेष्ववाक्यशेषत्वं गुणोपदेशात् स्यात् ।

२१. अनाम्नाते च दर्शनात् । २२. प्रतिषेधाच्च ।

२३. अग्न्यतिग्राह्यस्य विकृतावुपदेशादप्रवृत्तिः स्यात् ।

२४. मासि ग्रहणञ्च तद्वत् । २५. ग्रहणं वा तुल्यत्वात् ।

२६. लिङ्गदर्शनाच्च । २७. ग्रहणं समानविधानं स्यात् ।

२८. मासिग्रहणमभ्यासप्रतिषेधार्थम् ।

२९. उत्पत्तितादर्थ्याच्चतुरवत्तम् प्रधानस्य होमसंयोगादधिकमाज्यमतुल्यत्वाल्लोकवदुत्पत्तेर्गुणभूतत्वात् । ३०. तत्संस्कारश्रुतेश्च ।

३१. ताभ्यां वा सह स्विष्टकृतः सकृत्त्वे द्विरभिधारणेन तदाप्तिवचनात् ।

३२. तुल्यवच्चाभिधाय सर्वेषु भक्त्यनुक्रमणात् । ३३. साप्तदश्यवन्नियम्येत ।

३४. हविषो वा गुणभूतत्वात् तथाभूतविवक्षा स्यात् ।

३५. पुरोडाशाभ्यामित्याधिकृतानां पुरोडशयोरुपदेशस्तच्छ्रुतित्वाद्वैश्यस्तोमवत् ।

३६. न त्वनित्याधिकारोऽस्ति विधौ नित्येन सम्बन्धस्तस्मादवाक्यशेषत्वम् ।

३७. सति च नैकदेशेन कर्त्तुः प्रधानभूतत्वात् ।

३८. कृत्स्नत्वात्तु तथा स्तोमे । ३९. कर्त्तुः स्यादिति चेत् ?

४०. न; गुणार्थत्वात् प्राप्ते च नोपदेशार्थः ।

४१. कर्मणोस्तु प्रकरणे तन्न्यायत्वाद् गुणानां लिङ्गेन कालशास्त्रं स्मात् ।

४२. यदि तु सान्नाय्यं सोमयाजिनो न ताभ्यां समवायोऽस्ति विभक्तकालत्वात् ।

४३. अपि वा विहितत्वाद् गुणार्थायां पुनः श्रुतौ सन्देहे श्रुतिर्द्विदेवतार्था स्याद् यथाऽनभिप्रेतः तथाऽऽग्नेयो दर्शनादेकदेवते ।

४४. विधिं तु बादरायणः। ४५. प्रतिषिद्धविज्ञानाद् वा।
४६. तथा चान्यार्थदर्शनम्।
४७. उपांशुयाजमन्तरा यजतीति हविर्लिङ्गाश्रुतित्वाद् यथाकामी प्रतीयेत।
४८. ध्रौवाद् वा सर्वसंयोगात्। ४९. तद्वच्च देवतायां स्यात्।
५०. तान्त्रीणां वा प्रकारात्। ५१. धर्माद्वा स्यात् प्रजापतिः।
५२. देवतायास्त्वनिर्वचनं तत्र शब्दस्येह मृदुत्वं तस्मादिहाधिकारेण।
५३. विष्णुर्वा स्याद्धौत्राम्नानादमावास्याहविश्च स्यात् हौत्रस्य तत्र दर्शनात्।
५४. अपि वा पौर्णमास्यां स्यात् प्रधानशब्दसंयोगाद् गुणत्वान्मन्त्रो यथा प्रधानं स्यात्। ५५. आनन्तर्य्यंञ्च सान्नाय्यस्य पुरोडाशेन दर्शयति अमावास्याविकारे। ५६. अग्नीषोमविधानात्तु पौर्णमास्यामुभयत्र विधीयते।
५७. प्रतिषिद्धचविधानाद् वा विष्णुः समानदेशः स्यात्।
५८. तथा चान्यार्थदर्शनम्।
५९. न चानङ्गं सकृच्छ्रुतावुभयत्र विधीयेताऽसम्बन्धात्।
६०. गुणानां च परार्थत्वात्, प्रकृतौ विधिलिङ्गानि दर्शयति।
६१. विकारे चाश्रुतित्वात्। ६२. द्विपुरोडाशायां स्यादन्तरार्थत्वात्।
६३. अजामिकरणार्थत्वाच्च। ६४. तदर्थमिति चेन्न, तत्प्रधानत्वात्।
६५. अशिष्टेन च सम्बन्धात्।
६६. उत्पत्तेस्तु निवेशः स्याद् गुणस्यानुपरोधेनार्थस्य विद्यमानत्वाद् विधानादन्तरार्थस्य नैमित्तिकत्वात् तदभावेऽश्रुतौ स्यात्।
६७. उभयोस्तु विधानात्। ६८. गुणानाञ्च परार्थत्वादुपवेषवद्यदेति स्यात्।
६९. अनपायश्च कालस्य लक्षणं हि पुरोडाशौ।
७०. प्रशंसार्थमजामित्वम्॥

इति दशमाध्यायस्य अष्टमः पादः, दशमोऽध्यायश्च॥

अथैकादशोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. प्रयोजनाभिसम्बन्धात् पृथक् सतां ततः स्यादैककर्म्यमेकशब्दाभिसंयोगात् ।
२. शेषवद्वा प्रयोजनं प्रतिकर्म विभज्येत । ३. अविधानात्तु नैवं स्यात् ।
४. शेषस्य हि परार्थत्वाद्विधानात् प्रतिप्रधानभावः स्यात् ।
५. अङ्गानां तु शब्दभेदात् क्रतुवत् स्यात् फलान्यत्वम् ।
६. अर्थभेदस्तु तत्रार्थेह्यैकार्थ्यादैककर्म्यम् । ७. शब्दभेदान्नेति चेत् ?
८. कर्मार्थत्वात् प्रयोगे ताच्छब्द्यं स्यात् तदर्थत्वात् ।
९. कर्तृविधेर्नानार्थत्वाद् गुणप्रधानेषु । १०. [1]आरम्भस्य शब्दपूर्वत्वात् ।
११. एकेनापि समाप्येत कृतार्थत्वाद्यथा क्रत्वन्तरेषु प्राप्तेषु चोत्तरावत् स्यात् ।
१२. फलाभावान्नेति चेत् ? १३. न; कर्मसंयोगात् प्रयोजनमशब्ददोषं स्यात् ।
१४. ऐकशब्द्यादिति चेत् ? १५. न; अर्थपृथक्त्वात् समत्वादगुणत्वम् ।
१६. विधेस्त्वेकश्रुतित्वादपर्य्यायविधानाद् नित्यवच्छ्रुतभूताभिसंयोगात् अर्थेन युगपत् प्राप्तेर्यथाप्राप्तं स्वशब्दार्थो निवीतवत् सर्वप्रयोगे प्रवृत्तिः स्यात् ।
१७. तथा कर्मोपदेशः स्यात् । १८. क्रत्वन्तरेषु पुनर्वचनम् ।
१९. उत्तरास्वश्रुतित्वाद्विशेषाणां कृतार्थत्वात् स्वदोहे यथाकामी प्रतीयेत ।
२०. कर्मण्यारम्भभाव्यत्वात् कृषिवत् प्रत्यारम्भं फलानि स्युः ।
२१. अधिकारश्च सर्वेषां कार्य्यत्वादुपपद्यते विशेषः ।
२२. सकृत्तु स्यात् कृतार्थत्वादङ्गवत् । २३. शब्दार्थश्च तथा लोके ।
२४. अपि वा सम्प्रयोगे यथाकामी सम्प्रतीयेताश्रुतित्वाद्विधिषु वचनानि स्युः ।
२५. ऐकशब्द्यात् तथाङ्गेषु । २६. लोके कर्माऽर्थलक्षणम् ।
२७. क्रियाणामर्थशेषत्वात् प्रत्यक्षोऽतस्तन्निर्वृत्त्याऽपवर्गः स्यात् ।
२८. धर्ममात्रे त्वदर्शनाच्छब्दार्थेनापवर्गः स्यात् ।
२९. क्रतुवच्चानुमानेनाभ्यासे फलभूमा स्यात् ।

---

१. आरम्भः— इत्यपि पाठः क्वचित् ।

३०. सकृद्वा कारणैकत्वात् । ३१. परिमाणे चानियमे न स्यात् ।

३२. फलस्यारम्भनिर्वृत्तेः क्रतुषु स्यात् फलान्यत्वम् ।

३३. अर्थवतस्तु नैकत्वादभ्यासः स्यादनर्थको यथा भोजनमेकस्मिन्नर्थस्यापरिमाणत्वात् प्रधाने च क्रियार्थत्वादनियमः स्यात् ।

३४. पृथक्त्वाद्विधितः परिमाणं स्यात् ।

३५. अनभ्यासो वा प्रयोगवचनैकत्वात् सर्वस्य युगपच्छास्त्रादफलत्वाच्च कर्मणः स्यात् क्रियार्थत्वात् ।

३६. अभ्यासो वा छेदनसंमार्गाऽवदानेषु वचनात् सकृत्त्वस्य ।

३७. अनभ्यासस्तु वाच्यत्वात् । ३८. बहुवचनेन सर्वप्राप्तेर्विकल्पः स्यात् ।

३९. दृष्टः प्रयोग इति चेत् ? ४०. तथेह । ४१. भक्त्येति चेत् ?

४२. तथेतरस्मिन् । ४३. प्रथमं वा नियम्येत कारणादतिक्रमः स्यात् ।

४४. श्रुत्यर्थाविशेषात्[१] । ४५. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।

४६. प्रकृत्या च पूर्ववत् तदासत्तेः[१] ।

४७. उत्तरासु न यावत् स्वमपूर्वत्वात् ।

४८. यावत् स्वं वान्याविधानेनानुवादः स्यात् ।

४९. साकल्यविधानात् । ५०. बह्वर्थत्वाच्च ।

५१. अग्निहोत्रे चाशेषवद्यवागूनियमः ।

५२. तथा पयःप्रतिशेधः कुमाराणाम् ।

५३. सर्वप्रापिणापि लिङ्गेन संयुज्यते देवताभिसंयोगात् ।

५४. प्रधानकर्मार्थत्वादङ्गानां तद्भेदात् कर्मभेदः प्रयोगे स्यात् ।

५५. क्रमकोपश्च यौगपद्ये स्यात् ।

५६. तुल्यानां तु यौगपद्यमेकशब्दोपदेशात् स्याद्विशेषाग्रहणात् ।

५७. ऐकार्थ्यादव्यवायः स्यात् । ५८. तथा चान्यार्थदर्शनं कामुकायनः ।

५९. तन्न्यायत्वादशक्तेरानुपूर्व्यं स्यात् संस्कारस्य तदर्थत्वात् ।

१-१ सूत्रद्वयमिदं क्वचिन्नैव पठितम् ।

६०. असंस्पृष्टोऽपि तादर्थ्यात् । ६१. विभवाद्वा प्रदीपवत् ।
६२. अर्थात्तु लोके विधिः प्रतिप्रधानं स्यात् ।
६३. सकृदिज्यां कामुकायनः; परिमाणविरोधात् ।
६४. विधेस्त्वितरार्थत्वात् सकृदिज्याश्रुतिव्यतिक्रमः स्यात् ।
६५. विधिवत् प्रकरणाविभागे प्रयोगं बादरायणः ।
६६. अपि चैकेन सन्निधानमविशेषको हेतुः ।
६७. क्वचिद् विधानान्नेति चेत् ? ६८. न; विधेश्चोदितत्वात् ।
६९. व्याख्यातं तुल्यानां यौगपद्यमगृह्यमाणविशेषाणाम् ।
७०. भेदस्तु कालभेदाच्चोदनाव्यवायात् स्याद्विशिष्टानां विधिः प्रदानकालत्वात् ।
७१. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
७२. विधिरिति चेत् ? ७३. न; वर्त्तमानापदेशात् ॥

इति एकादशाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. एकदेशकालकर्तृत्वं मुख्यानामेकशब्दोपदेशात् ।
२. अविधिश्चेत् कर्मणामभिसम्बन्धः प्रतीयेत तल्लक्षणार्थाभिसंयोगाद्विधित्वाच्चेतरेषां प्रतिप्रधानं भावः स्यात् ।
३. अङ्गेषु च तदभावः प्रधानं प्रति निर्देशात् ।
४. यदि तु कर्मणो विधिसम्बन्धः स्यादैकशब्द्यात् प्रधानार्थाभिसंयोगात् ।
५. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
६. श्रुतिश्चैषां प्रधानवत् कर्मश्रुतेः परार्थत्वात् कर्मणोऽश्रुतित्वाच्च ।
७. अङ्गानि तु विधानत्वात् प्रधानेनोपदिश्येरन् तस्मात् स्यादेकदेशत्वम् ।
८. द्रव्यदेवतं तथेति चेत् ? ९. न; चोदनाविधिशेषत्वात् नियमार्थो विशेषः ।
१०. तेषु समवेतानां समवायात्तन्त्रमङ्गानि भेदस्तु तद्भेदात् कर्मभेदः प्रयोगे स्यात् तेषां प्रधानशब्दत्वात्, तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
११. इष्टिराजसूयचातुर्मास्येष्वैककर्म्यादङ्गानां तन्त्रभावः स्यात् ।

१२. कालभेदान्नेति चेत् ? १३. न; एकदेशत्वात् पशुवत् ।
१४. अपि वा कर्मपृथक्त्वात्तेषां तन्त्रविधानात् साङ्गानामुपदेशः स्यात् ।
१५. तथा चान्यार्थदर्शनम् । १६. तथा[1] तदवयवेषु स्यात् ।
१७. पशौ तु चोदनैकत्वात्तन्त्रस्य विप्रकर्षः स्यात् ।
१८. तथा स्यादध्वरकल्पेष्टौ विशेषस्यैककालत्वात् ।
१९. इष्टिरिति चैकवच्छ्रुतिः ।
२०. अपि वा कर्मपृथक्त्वात्तेषां तन्त्रविधानात् साङ्गानामुपदेशः स्यात् ।
२१. प्रथमस्य वा कालवचनम् । २२. फलैकत्वादिष्टिशब्दो यथान्यत्र ।
२३. वसाहोमस्तन्त्रम् ऐकदेवत्येषु स्यात् प्रदानस्यैककालत्वात् ।
२४. कालभेदात्त्वावृत्तिर्देवताभेदे । २५. अन्ते यूपाहुतिस्तद्वत् ।
२६. इतरप्रतिषेधो वा । २७. अशास्त्रत्वाच्च देशानाम् ।
२८. अवभृथे प्रधानेऽग्निविकारः स्यान्न हि तद्धेतुरग्निसंयोगः ।
२९. द्रव्यदेवतावत् । ३०. साङ्गो वा प्रयोगवचनैकत्वात् ।
३१. लिङ्गदर्शनाच्च । ३२. शब्दविभागाच्च देवतानपनयः ।
३३. दक्षिणेऽग्नौ वरुणप्रघासेषु देशभेदात् सर्वं क्रियते ।
३४. अचोदनेति चेत् ? ३५. स्यात्, पौर्णमासीवत् ।
३६. प्रयोगचोदनेति चेत् ? ३७. इहापि मारुत्याः प्रयोगश्चोद्यते[2] ।
३८. आसादनमिति चेत् ? ३९. न; उत्तरेणैकवाक्यत्वात् ।
४०. अवाच्यत्वात् । ४१. आम्नायवचनं तद्वत् ।
४२. कर्त्तृभेदस्तथेति चेत् ? ४३. न; समवायात् । ४४. लिङ्गदर्शनाच्च ।
४५. वेदिसंयोगादिति चेत् ? ४६. न; देशमात्रत्वात् ।
४७. एकाग्नित्वापरेषु तन्त्रैः स्यात् । ४८. नाना वा कर्तृभेदात् ।
४९. पर्य्यग्निकृतानामुत्सर्गे प्राजापत्यानां कर्मोत्सर्गः श्रुतिसामान्यादारण्यवत्तस्माद् ब्रह्मसाम्नि चोदनापृथक्त्वं स्यात् ।
५०. संस्कारप्रतिषेधो वा वाक्यैकत्वे क्रतुसामान्यात् ।

---

१. तथेति क्वचिन्न । २. अस्य सूत्रस्य स्थाने "अथेह" इत्येव सूत्रं क्वचित् ।

५१. वपानां चानभिधारणस्य दर्शनात् ।

५२. पञ्चशारदीयास्तथेति चेत् ? ५३. न; चोदनैकवाक्यत्वात् ।

५४. संस्काराणां च तद्दर्शनात् ।

५५. दशपेये क्रयप्रतिकर्षात् प्रतिकर्षः, ततः प्राचां तत्समानं तन्त्रं स्यात् ।

५६. समानवचनं तद्वत् । ५७. अप्रकर्षो वाऽर्थहेतुत्वात् सहत्वं विधीयते ।

५८. पूर्वस्मिश्चावभृथस्य दर्शनात् । ५९. दीक्षाणां चोत्तरस्य ।

६०. समानः कालसामान्यात् ।

६१. निष्कासस्यावभृथे तदेकदेशत्वात् पशुवत् प्रदानविप्रकर्षः स्यात् ।

६२. अपनयो वा प्रतिषिद्धेनाभिसंयोगात् ।

६३. प्रतिपत्तिरिति चेन्न; कर्मसंयोगात् ।

६४. उदयनीये च तद्वत् । ६५. प्रतिपत्तिर्वाऽकर्मसंयोगात् ।

६६. अर्थकर्म वा शेषत्वाच्छ्रयणवत्तदर्थेन विधानात् ।।

इति एकादशाध्यायस्य द्वितीयः पादः ।।

तृतीयः पादः

१. अङ्गानां मुख्यकालत्वाद्वचनादन्यकालत्वम् ।

२. द्रव्यस्य चा कर्मकालनिष्पत्तेः प्रयोगः सर्वार्थः स्यात् स्वकालत्वात् ।

३. यूपश्चाकर्मकालत्वात् । ४. एकयूपं च दर्शयति ।

५. संस्कारास्त्वावर्तेरन्नर्थकालत्वात् ।

६. तत्कालस्तु यूपकर्मत्वात्तस्य धर्मविधानात् सर्वार्थानां च वचनादन्यकालत्वम् ।

७. सकृन्मानं च दर्शयति । ८. स्वरुस्तन्त्रापवर्गः स्यादस्वकालत्वात् ।

९. साधारणे वाऽनुनिष्पत्तिस्तस्य साधारणत्वात् ।

१०. सोमान्ते च प्रतिपत्तिदर्शनात् । ११. तत्कालो वा प्रस्तरवत् ।

१२. न चोत्पत्तिवाक्यत्वात् प्रदेशात् प्रस्तरे तथा ।

१३. अहर्गणे विषाणाप्रासनं धर्मविप्रतिषेधादन्त्ये प्रथमे वाहनि विकल्पः स्यात् ।

१४. पाणेस्त्वश्रुतिभूतत्वाद्विषाणानियमः स्यात् प्रातःसवनमध्यात्वाच्छिष्टे चाभिप्रवृत्तत्वात् । १५. वाग्विसर्गो हविष्कृता बीजभेदे तथा स्यात् ।

१६. पशौ च पुरोडाशे समानतन्त्रं भवेत् ।

१७. अग्नियोगः सोमकाले तदर्थत्वात् संस्कृतकर्मणः परेषु साङ्गस्य तस्मात् सर्वापवर्गे विमोकः स्यात् । १८. प्रधानापवर्गे वा तदर्थत्वात् ।

१९. अवभृथे च तद्वत् प्रधानार्थस्य प्रतिषेधोऽपवृक्तोर्थत्वात् ।

२०. अहर्गणे च प्रत्यहं स्यात् तदर्थत्वात् ।

२१. सुब्रह्मण्या तु तन्त्रं दीक्षावदन्यकालत्वात् ।

२२. तत्कालत्वादावर्तेत[1] प्रयोगवतो विशेषसंयोगात् ।

२३. अप्रयोगाङ्गमिति चेत् ? २४. स्यात्; प्रयोगनिर्देशात् कर्तृभेदवत् ।

२५. तद्भूतस्थानादग्निवदिति चेत्; तदपवर्गस्तदर्थत्वात् ।

२६. अग्निवदिति चेत् ? २७. न; प्रयोगसाधारण्यात् ।

२८. लिङ्गदर्शनाच्च । २९. तद्धि तथेति चेत् ?

३०. न; शिष्टत्वादितरन्यायत्वाच्च । ३१. विध्येकत्वादिति चेत् ?

३२. न; कृत्स्नस्य पुनः प्रयोगात् प्रधानवत् ।

३३. लौकिकेषु यथाकामी संस्कारानर्थलोपात् स्यात् ।

३४. यज्ञायुधानि धार्येरन् प्रतिपत्तिविधानादृजीषवत् ।

३५. यजमानसंस्कारो वा तदर्थः श्रूयते तत्र यथाकामी तदर्थत्वात् ।

३६. मुख्यसाधारणं वा मरणस्यानियतत्वात् ।

३७. यो वा यजनीयेऽहनि म्रियेत सोऽधिकृतः स्यादुपवेषवत् ?

३८. न; शास्त्रलक्षणत्वात् । ३९. उत्पत्तिर्वा प्रयोजकत्वादाशिरवत् ।

४०. शब्दासामञ्जस्यमिति चेत् । ४१. तथाऽऽशिरे ।

४२. शास्त्रात्तु विप्रयोगस्तत्रैकद्रव्यचिकीर्षा प्रकृतावथेहापूर्वार्थवद् भूतोपदेशः ।

४३. प्रकृत्यर्थत्वात् पौर्णमास्याः ।

४४. अग्न्याधेये वा विप्रतिषेधात्तानि धारयेन्मरणस्यानिमित्तत्वात् ।

---

१. तत्काला त्वावर्तेत—इत्यपि क्वचित् पाठः ।

४५. प्रतिपत्तिर्वा यथान्येषाम् ।

४६. उपरिष्टात् सोमानां प्राजापत्यैश्चरन्तीति सर्वेषामविशेषादवाच्यो हि प्रकृतिकालः । ४७. अङ्गविपर्यासो विना वचनादिति चेत् ?

४८; न; उत्कर्षः संयोगात् कालमात्रमितरत्र ।

४९. प्रकृतिकालासत्तेः शस्त्रवतामिति चेत् ?

५०. न; श्रुतिप्रतिषेधात् । ५१. विकारस्थाने इति चेत् ?

५२. न; चोदनापृथक्त्वात् ।

५३. उत्कर्षे सूक्तवाकस्य न सोमदेवतानामुत्कर्षः पश्वनङ्गत्वाद् यथा निष्कर्षेऽनन्वयः । ५४. वाक्यसंयोगाद् वोत्कर्षः समानतन्त्रत्वादर्थलोपादनन्वयः ॥

इति एकादशाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. चोदनैकत्वाद्राजसूयेऽनुक्तदेशकालानां समवायात्तन्त्रमङ्गानि ।

२. प्रतिदक्षिणं वा कर्तृसम्बन्धादिष्टिवदङ्गभूतत्वात् समुदायो हि तन्निर्वृत्त्या तदेकत्वादेकशब्दोपदेशः स्यात् । ३. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।

४. अनियमः स्यादिति चेत् ? ५. न; उपदिष्टत्वात् । ६. लाघवातिपत्तिश्च ।

७. प्रयोजनैकत्वात् । ८. विशेषार्था पुनः श्रुतिः ।

९. अवेष्टौ चैकतन्त्र्यं स्याल्लिङ्गदर्शनात् ।

१०. वचनात् कामसंयोगेन । ११. क्रत्वर्थायामिति चेन्न; वर्णसंयोगात् ।

१२. पवमानहविःष्वैकतन्त्र्यं प्रयोगवचनैकत्वात् । १३. लिङ्गदर्शनाच्च ।

१४. वर्तमानापदेशाद् वचनात्तु तन्त्रभेदः स्यात् ।

१५. सहत्वे नित्यानुवादः स्यात् ।

१६. द्वादशाहे तु प्रकृतित्वादेकैकमहरपवृज्येत कर्मपृथक्त्वात् ।

१७. अह्नां वा श्रुतिभूतत्वात् तत्र साङ्गं क्रियेत यथा माध्यन्दिने ।

१८. अपि वा फलकर्तृसम्बन्धात् सहप्रयोगः स्यादाग्नेयाग्नीषोमीयवत् ।

१९. साङ्गकालश्रुतित्वाद्वा स्वस्थानानां विकारः स्यात् ।

२०. तदपेक्षं च द्वादशाहत्वम् ।

२१. दीक्षोपसदां च संख्या पृथक्पृथक् प्रत्यक्षसंयोगात् ।

२२. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।

२३. चोदनापृथक्त्वे त्वैकतन्त्र्यं समवेतानां कालसंयोगात् तेषां प्रधानशब्दत्वात् ।

२४. भेदस्तु तद्भेदात् कर्मभेदः प्रयोगे स्यात् तेषां प्रधानशब्दत्वात् ।

२५. तथा चान्यार्थदर्शनम् । २६. श्वःसुत्यावचनं तद्वत् ।

२७. पश्वतिरेकश्च । २८. सुत्याविवृद्धौ सुब्रह्मण्यायां सर्वेषामुपलक्षणम्, प्रकृत्यन्वयादावाहनवत् ।

२९. अपि वेन्द्राभिधानत्वात् सकृत् स्यादुपलक्षणम्, कालस्य लक्षणार्थत्वात्, अविभागाच्च ।

३०. पशुगणे कुम्भीशूलवपाश्रपणीनां प्रभुत्वात् तन्त्रभावः स्यात् ।

३१. भेदस्तु सन्देहाद् देवतान्तरे स्यात् । ३२. अर्थाद्वा लिङ्गकर्म स्यात् ।

३३. अयाज्यत्वाद्वसानां भेदः स्यात् स्वयाज्याप्रदानत्वात् ।

३४. अपि वा प्रतिपत्तित्वात् तन्त्रं स्यात् स्वत्वस्याश्रुतिभूतत्वात् ।

३५. सकृदिति चेत् ? ३६. न; कालभेदात् ।

३७. जात्यन्तरेषु भेदः पक्तिवैषम्यात् । ३८. वृद्धिदर्शनाच्च ।

३९. कपालानि च कुम्भीवत्तुल्यसंख्यानाम् । ४०. प्रतिप्रधानं वा प्रकृतिवत् ।

४१. सर्वेषां चाभिप्रथमं स्यात् ।

४२. एकद्रव्ये संस्काराणां व्याख्यातमेककर्मत्वम् ।[1]

४३. द्रव्यान्तरे कृतार्थत्वात् तस्य पुनः प्रयोगान्मन्त्रस्य च तद्गुणत्वात् पुनः प्रयोगः स्यात्तदर्थेन विधानात् ।

४४. निर्वपणलवनतरणाज्यग्रहणेषु चैकद्रव्यवत् प्रयोजनैकत्वात् ।

४५. द्रव्यान्तरवद्वा स्यात् तत्संस्कारात् ।

---

१. एतदग्रे "तस्मिन् मन्त्रार्थनानात्वादावृत्तौ मन्त्रस्यासकृत्प्रयोगः स्यात्" इति सूत्रं क्वचिदधिकं दृश्यते ।

४६. वेदिप्रोक्षणे मन्त्राभ्यासः कर्मणः पुनः प्रयोगात् ।
४७. एकस्य वा गुणविधिः द्रव्यैकत्वात् तस्मात् सकृत् प्रयोगः स्यात् ।
४८. कण्डूयने प्रत्यङ्गं कर्मभेदात् स्यात् ।
४९. अपि वा चोदनैककालमैककर्म्यं स्यात् ।
५०. स्वप्ननदीतरणाभिवर्षणामेध्यप्रतिमन्त्रणेषु चैवम् ।
५१. प्रयाणे त्वार्थनिर्वृत्तेः ।
५२. उपरवमन्त्रस्तन्त्रं स्याल्लोकवद् बहुवचनात् ।
५३. न सन्निपातित्वात् असन्निपातिकर्मणां विशेषग्रहणे कालैकत्वात् सकृद्वचनम् ।
५४. हविष्कृदध्रिगुपुरोऽनुवाक्यामनोतस्यावृत्तः कालभेदात् स्यात् ।
५५. अध्रिगोश्च विपर्यासात् । ५६. करिष्यद्वचनात् ।

इति एकादशाध्यायस्य चतुर्थं पादः, समाप्तश्चैकादशोऽध्यायः ॥

०

अथ द्वादशोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. तन्त्रिसमवाये चोदनातः समानानामेकतन्त्रत्वमतुल्येषु तु भेदः विधिप्रक्रमतादर्थ्यात् तादर्थ्ये श्रुतिकालनिर्देशात् ।
२. गुणकालविकाराच्च तन्त्रभेदः स्यात् ।
३. तन्त्रमध्ये विधानाद्वा मुख्यतन्त्रेण सिद्धिः स्यात्तन्त्रार्थस्याविशिष्टत्वात् ।
४. विकाराच्च न भेदः स्यादर्थस्याविकृतत्वात् ।
५. एकेषां चाशक्यत्वात् । ६. एकाग्निवच्च दर्शनम् ।
७. जैमिनेः परतन्त्रत्वापत्तेः स्वतन्त्रः प्रतिषेधः स्यात् ।
८. नानार्थत्वात् सोमे दर्शपूर्णमासप्रकृतीनां वेदिकर्म स्यात् ।
९. अकर्म वा कृतदूषा स्यात् ।
१०. पात्रेषु च प्रसङ्गः स्याद्धोमार्थत्वात् ।

११. न्याय्यानि वा प्रयुक्तत्वादप्रयुक्ते प्रसङ्गः स्यात् ।
१२. शामित्रे च पशुपुरोडाशो न स्यादितरस्य प्रयुक्तत्वात् ।
१३. श्रपणं चाग्निहोत्रस्य शालामुखीये न स्यात्, प्राजहितस्य विद्यमानत्वात् ।
१४. हविर्धाने निर्वपणार्थं साधयेतां प्रयुक्तत्वात् ।
१५. अप्रसिद्धिर्वाऽन्यदेशत्वात् प्रधानवैगुण्यादवैगुण्ये प्रसङ्गः स्यात् ।
१६. अनसाश्च दर्शनात् । १७. तद्युक्तश्च कालभेदात् ।
१८. मन्त्राश्च सन्निपातित्वात् ।
१९. धारणार्थत्वात् सोमेऽन्यन्वाधानं न विद्यते ।
२०. तथा व्रतमुपेतत्वात् । २१. विप्रतिषेधाच्च ।
२२. सत्यवदिति चेत् ? २३. न; संयोगपृथक्त्वात् ।
२४. ग्रहणार्थं च पूर्वमिष्टेस्तदर्थत्वात् ।
२५. शेषवदिति चेत् ? २६. न, वैश्वदेवो हि ।
२७. स्याद् वा व्यपदेशात् ? २८. न; गुणार्थत्वात् ।
२९. सन्नहनश्च वृत्तत्वात् ।
३०. अन्यविधानादारण्यभोजनं न स्यादुभयं वृत्त्यर्थम् ।
३१. शेषभक्षास्तथेति चेत् ? न; अन्यार्थत्वात् ।
३२. भृतत्वाच्च परिक्रयः ।
३३. शेषभक्षास्तथेति चेत् ? ३४. न; कर्मसंयोगात् ।
३५. प्रवृत्तवरणात् प्रतितन्त्रं वरणं होतुः क्रियेत ।
३६. ब्रह्मापीति चेत् ? ३७. न; प्राक् नियमात्तदर्थं हि ।
३८. निर्दिष्टस्येति चेत् ? ३९. न; अश्रुतत्वात् ।
४०. होतुस्तथेति चेत् ? ४१. न; कर्मसंयोगात् ।
४२. यज्ञोत्पत्त्युपदेशे निष्ठितकर्मप्रयोगभेदात् प्रतितन्त्रं क्रियेत ।
४३. न वा कृतत्वात् तदुपदेशो हि । ४४. देशपृथक्त्वात् मन्त्रोऽभ्यावर्त्तते ।
४५. सन्नहनहरणे तथेति चेत् ? ४६. न; अन्यार्थत्वात् ।

इति द्वादशाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. विहारो लौकिकानामर्थं साधयेत् प्रभुत्वात् ।
२. मांसपाकप्रतिषेधश्च तद्वत् । ३. निर्देशाद् वा वैदिकानां स्यात् ।
४. सति चौपासनस्य दर्शनात् । ५. अभावदर्शनाच्च ।
६. मांसपाको विहितप्रतिषेधः स्यादाहुतिसंयोगात् ।
७. वाक्यशेषो वा दक्षिणेऽस्मिन्ननारभ्यविधानस्य ।
८. सवनीये छिद्रापिधानार्थत्वात् पशुपुरोडाशो न स्यादन्येषामेवमर्थत्वात् ।
९. क्रिया वा देवतार्थत्वात् । १०. लिङ्गदर्शनाच्च ।
११. हविष्कृत्सवनीयेषु न स्यात् प्रकृतौ यदि सर्वार्था पशुं प्रत्याहूता सा कुर्याद् विद्यमानत्वात् । १२. पशौ तु संस्कृते विधानात्[१] ।
१३. योगाद्वा यज्ञाय तद्विमोके विसर्गः स्यात् ।
१४. निशि यज्ञे प्राकृतस्याप्रवृत्तिः स्यात् प्रत्यक्षशिष्टत्वात् ।
१५. कालवाक्यभेदाच्च तन्त्रभेदः स्यात् ।
१६. वेद्युद्धननव्रतं विप्रतिषेधात्तदेव स्यात् ।
१७. तन्त्रमध्ये विधानाद्वा तत्तन्त्रा सवनीयवत् ।
१८. वैगुण्यादिध्मावर्हिर्नं साधयेदग्न्याधानं च यदि देवतार्थम् ।
१९. आरम्भणीया विकृतौ न स्यात् प्रकृतिकालमध्यत्वात् कृता पुनस्तदर्थेन ।
२०. स्याद्वा कालस्याशेषभूतत्वात् । २१. आरम्भविभागाच्च ।
२२. विप्रतिषिद्धधर्माणां समवाये भूयसां स्यात् सधर्म्मत्वम् ।
२३. मुख्यं वा पूर्वचोदनाल्लोकवत् । २४. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
२५. अङ्गगुणविरोधे च तादर्थ्यात् । २६. परिधिद्व्यर्थत्वादुभयधर्मा स्यात् ।
२७. यौप्यस्तु विरोधे स्यान्मुख्यानन्तर्यात् ।
२८. इतरो वा तस्य तत्र विधानात् । २९. उभयोश्चाङ्गसंयोगः ।
३०. पशुसवनीयेषु विकल्पः स्यात् । ३१. वैकृतश्चेदुभयोरश्रुतिभूतत्वात् ।

१.० 'तार्तीयसवनिकेषु स्यात् सौम्याश्विनयोश्चाप्रवृत्तत्वात्' इति समग्रं सूत्रम् ।

३२. पाशुकं वा तस्य वैशेषिकाम्नानात्तदनर्थकं विकल्पे स्यात् ।
३३. पशोश्च विप्रकर्षस्तन्त्रमध्ये विधानात् ।
३४. अपूर्वं च प्रकृतौ समानतन्त्रा चेदनित्यत्वादनर्थकं हि स्यात् ।
३५. अधिकश्च गुणः साधारणेऽविरोधात् कांस्यभोजिवदमुख्येऽपि ।
३६. तत्प्रवृत्त्या तु तन्त्रस्य नियमः स्याद्यथा पाशुकं सूक्तवाकेन ।
३७. न वाऽविरोधात् । ३८. शास्त्रलक्षणत्वाच्च ॥

इति द्वादशाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. विश्वजिति वत्सत्वङ्नामधेयाऽहतमितरथा तन्त्रभूयस्त्वादहतं स्यात् ।
२. अविरोधो वा उपरिवासो हि वत्सत्वक् ।
३. अनुनिर्वाप्येषु भूयस्त्वेन तन्त्रनियमः स्यात् ।
४. आगन्तुकत्वाद्वा स्वधर्मा स्यात् श्रुतिविशेषादितरस्य च मुख्यत्वात् ।
५. स्वस्थानत्वाच्च ।
६. स्विष्टकृच्छ्रवणान्नेति चेत् ? ७. विकारः पवमानवत् ।
८. अविकारो वां प्रकृतिवच्चोदनां प्रति भावाच्च ।
९. एककर्मणि शिष्टत्वाद् गुणानां सर्वकर्म स्यात् ।
१०. एकार्थास्तु विकल्पेरन् समुच्चये ह्यावृत्तिः स्यात् पधानस्य ।
११. अभ्यस्येतार्थवत्त्वादिति चेत् ? १२. न; अश्रुतित्वात् ।
१३. सति चाभ्यासशास्त्रत्वात् । १४. विकल्पवच्च दर्शयति ।
१५. कालान्तरेऽर्थवत्त्वं स्यात् ।
१६. प्रायश्चित्तेषु चैकार्थ्यान्निष्पन्ने नाभिसंयोगः, तस्मात् सर्वस्य निर्घातः ।
१७. समुच्चयस्त्वदोषनिर्घातार्थेषु ।
१८. मन्त्राणां कर्मसंयोगात् स्वधर्मेण प्रयोगः स्याद् धर्मस्य तन्निमित्तत्वात् ।
१९. विद्यां प्रति विधानाद्वा सर्वकालं प्रयोगः स्यात् कर्मार्थत्वात् प्रयोगस्य ।
२०. भाषास्वरोपदेशादैरवत्प्रायवचनप्रतिषेधः स्यात् ।

२१. मन्त्रोपदेशो वा न भाषिकस्य प्रायोपपत्तेर्भाषिकश्रुतिः ।

२२. विकारः कारणाग्रहणे । २३. तन्न्यायत्वाददृष्टेऽप्येवम् ।

२४. तदुत्पत्तेर्वा प्रवचनलक्षणत्वात् ।

२५. मन्त्राणां करणार्थत्वात् मन्त्रान्तेन कर्मादिसन्निपातः स्यात् सर्वस्य वचनार्थत्वात् । २६. सन्ततवचनाद्धारायामादिसंयोगः ।

२७. कर्मसन्तानो वा नानाकर्मत्वादितरस्याशक्यत्वात् ।

२८. आधारे च दीर्घधारत्वात् ।

२९. मन्त्राणां सन्निपातित्वादेकार्थानां विकल्पः स्यात् ।

३०. संख्याविहितेषु समुच्चयोऽसन्निपातित्वात् ।

३१. ब्राह्मणविहितेषु च संख्यावत् सर्वेषामुपदिष्टत्वात् ।

३२. याज्यावषट्कारयोश्च समुच्चयदर्शनं तद्वत् ।

३३. विकल्पो वा समुच्चयस्याश्रुतित्वात् । ३४. गुणार्थत्वादुपदेशस्य ।

३५. वषट्कारे नानार्थत्वात् समुच्चयः ।

३६. हौत्रास्तु विकल्प्येरन्नेकार्थत्वात् ।

३७. समुच्चयो वा क्रियामाणानुवादित्वात् । ३८. समुच्चयं च दर्शयति ॥

इति द्वादशाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. जपाश्चाकर्मयुक्ताः स्तुत्याशीरभिधानं च याजमानेसु समुच्चयः स्यादाशीः-पृथक्त्वात् । २. समुच्चयं च दर्शयति ।

३. याज्यानुवाक्यासु तु विकल्पः स्याद् देवतोपलक्षणार्थत्वात् ।

४. लिङ्गदर्शनाच्च । ५. क्रयणेषु त्वविकल्पः स्यादेकार्थत्वात् ।

६. समुच्चयो वा प्रयोगेद्रव्यसमवायात् ।

७. समुच्चयं च दर्शयति । ८. संस्कारे च तत्प्रधानत्वात् ।

९. संख्यासु तु विकल्पः स्यात् श्रुतिविप्रतिषेधात् ।

१०. द्रव्यविकारं तु पूर्ववदर्थकर्म स्यात्, तथा विकल्पे न नियमः प्रधानत्वात् ।

११. द्रव्यत्वेऽपि समुच्चयो द्रव्यकर्मनिष्पत्तेः प्रतिपशु कर्मभेदादेवं सतियथाप्रकृति।

१२. कपालेऽपि तथेति चेत् ? १३. न; कर्मणः परार्थत्वात् ।
१४. प्रतिपत्तिस्तु शेषत्वात् । १५. सृतेऽपि पूर्ववत्त्वात् स्यात् ।
१६. विकल्पे त्वर्थकर्म नियमप्रधानत्वात् शेषे च कर्मकार्य्यसमवायात्, तस्मात् तेनार्थकर्म स्यात् ।
१७. उखायां काम्यनित्यसमुच्चयो नियोगे कामदर्शनात् ।
१८. असति चासंस्कृतेषु कर्म स्यात् ।
१९. तस्य च देवतार्थत्वात् । २०. विकारो वा तदुक्तहेतुः ।
२१. वचनादसंस्कृतेषु कर्म स्यात् । २२. संसर्गे चापि दोषः स्यात् ।
२३. वचनादिति चेत् ? २४. तथेतरस्मिन् ।
२५. उत्सर्गेऽपि परिग्रहः, कर्मणः कृतत्वात् ।
२६. स आहवनीयः स्यादाहुतिसंयोगात् । २७. अन्यो वोद्धृत्याहरणात् ।
२८. तस्मिंस्तु संस्कारकर्म शिष्टत्वात् । २९. स्थानाद्वा परिलुप्येरन् ।
३०. नित्यधारणे विकल्पो न ह्यकस्मात् प्रतिषेधः स्यात् ।
३१. नित्यधारणाद्वा प्रतिषेधो गतश्रियः ।
३२. परार्थान्येको यजमानगणे । ३३. अनियमोऽविशेषात् ।
३४. मुख्यो वा विप्रतिषेधात् । ३५. सत्रे गृहपतिसंयोगद्धौत्रवत् ।
३६. आम्नायवचनाच्च । ३७. सर्वैर्वा तदर्थत्वात् ।
३८. गृहपतिरिति च समाख्यासामान्यात् । ३९. विप्रतिषेधे परम् ।
४०. हौत्रे परार्थत्वात् । ४१. वचनं परम् ।
४२. प्रभुत्वादार्त्विज्यं सर्ववर्णानां स्यात् । ४३. स्मृतेर्वा स्याद् ब्राह्मणानाम् ।
४४. फलचमसविधानाच्चेतरेषाम् ।
४५. सान्नाय्येऽप्येवं प्रतिषेधोऽसोमपीथहेतुत्वात् ।
४६. चतुर्धाकरणे च निर्देशात् । ४७. अन्वाहार्य्ये च दर्शनात् ॥

इति द्वादशाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

सम्पूर्णश्च द्वादशोऽध्यायः ॥

मीमांसाशास्त्रञ्च सम्पूर्णम् ॥

२.

वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठः

(वेदान्तदर्शनम्)

—:०:—

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. अथातो ब्रह्मजिज्ञासा । २. जन्माद्यस्य यतः । ३. शास्त्रयोनित्वात् ।
४. तत्तु समन्वयात् । ५. ईक्षतेर्नाशब्दम् । ६. गौणश्चेन्नात्मशब्दात् ।
७. तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात् । ८. हेयत्वावचनाच्च । ९. स्वाप्यात् ।
१०. गतिसामान्यात् । ११. श्रुतत्वाच्च । १२. आनन्दमयोऽभ्यासात् ।
१३. विकारशब्दान्नेति चेन्न; प्राचुर्यात् । १४. तद्धेतुव्यपदेशाच्च ।
१५. मान्त्रवर्णिकमेव च गीयते । १६. नेतरोऽनुपपत्तेः ।
१७. भेदव्यपदेशाच्च । १८. कामाच्च नानुमानापेक्षा ।
१९. अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति । २०. अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ।
२१. भेदव्यपदेशाच्चान्यः । २२. आकाशस्तल्लिङ्गात् ।
२३. अत एव प्राणः । २४. ज्योतिश्चरणाभिधानात् ।
२५. छन्दोऽभिधान्नेति चेन्न तथा चेतोऽर्पणनिगदात्तथा हि दर्शनम् ।
२६. भूतादिपादव्यपदेशोपपत्तेश्चैवम् ।
२७. उपदेशभेदान्नेति चेन्न; उभयस्मिन्नप्यविरोधात् । २८. प्राणस्तथानुगमात् ।
२९. न वक्तुरात्मोपदेशादिति चेदध्यात्मसम्बन्धभूमा ह्यस्मिन् ।
३०. शास्त्रदृष्टया तूपदेशो वामदेववत् ।
३१. जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेन्न; उपासात्रैविध्यादाश्रितत्वादिह तद्योगात् ॥

इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् । २. विवक्षितगुणोपपत्तेश्च ।
३. अनुपपत्तेस्तु न शारीरः । ४. कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च ।
५. शब्दविशेषात् । ६. स्मृतेश्च ।
७. अर्भकौकस्त्वात्तद्व्यपदेशाच्च नेति चेन्न; निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च ।
८. सम्भोगप्राप्तिरिति चेन्न; वैशेष्यात् ।
९. अत्ता चराचरग्रहणात् । १०. प्रकरणाच्च ।
११. गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् । १२. विशेषणाच्च ।
१३. अन्तर उपपत्तेः । १४. स्थानादिव्यपदेशाच्च ।
१५. सुखविशिष्टाभिधानादेव च । १६. श्रुतोपनिषत्कगत्यभिधानाच्च ।
१७. अनवस्थितेरसम्भवाच्च नेतरः ।
१८. अन्तर्याम्याधिदेवादिषु तद्धर्म्मव्यपदेशात् ।
१९. न च स्मार्त्तमतद्धर्माभिलापात् ।
२०. शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते ।
२१. अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः ।
२२. विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ । २३. रूपोपन्यासाच्च ।
२४. वैश्वानरः साधारणशब्दविशेषात् । २५. स्मर्य्यमाणमनुमानं स्यादिति ।
२६. शब्दादिभ्योऽन्तःप्रतिष्ठानान्नेति चेन्न; तथादृष्टयुपदेशादसम्भवात् पुरुषमपि चैनमधीयते ।
२७. अत एव न देवता भूतं च । २८. साक्षादप्यविरोधं जैमिनिः ।
२९. अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्यः । ३०. अनुस्मृतेर्बादरिः ।
३१. सम्पत्तेरिति जैमिनिस्तथाहि दर्शयति । ३२. आमनन्ति चैनमस्मिन् ॥

इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात् । २. मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात् ।
३. नानुमानतमतच्छब्दात् । ४. प्राणभृच्च ।

५. भेदव्यपदेशात् ।
६. प्रकरणात् ।
७. स्थित्यदनाभ्यां च ।
८. भूमा सम्प्रसादादध्युपदेशात् ।
९. धर्म्मोपपत्तेश्च ।
१०. अक्षरमम्बरान्तधृतेः ।
११. सा च प्रशासनात् ।
१२. अन्यभावव्यावृत्तेश्च ।
१३. ईक्षतिकर्मव्यपदेशात् सः ।
१४. दहर उत्तरेभ्यः ।
१५. गतिशब्दाभ्यां तथाहि दृष्टं लिङ्गञ्च ।
१६. धृतेश्च महिम्नोऽस्यास्मिन्नुपलब्धेः ।
१७. प्रसिद्धेश्च ।
१८. इतरपरामर्शात् स इति चेन्न; असम्भवात् ।
१९. उत्तराच्चेदाविर्भूतस्वरूपस्तु ।
२०. अन्यार्थश्च परामर्शः ।
२१. अल्पश्रुतेरिति चेत् तदुक्तम् ।
२२. अनुकृतेस्तस्य च ।
२३. अपि च स्मर्यते ।
२४. शब्दादेव प्रमितः ।
२५. हृद्यपेक्षया तु मनुष्याधिकारत्वात् ।
२६. तदुपर्यपि बादरायणः सम्भवात् ।
२७. विरोधः कर्मणीति चेन्न; अनेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात् ।
२८. शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ।
२९. अत एव च नित्यत्वम् ।
३०. समाननामरूपत्वाच्चावृत्तावप्यविरोधो दर्शनात् स्मृतेश्च ।
३१. मध्वादिष्वसम्भवादनधिकारं जैमिनिः ।
३२. ज्योतिषि भावाच्च ।
३३. भावं तु बादरायणोऽस्ति हि ।
३४. शुगस्य तदनादरश्रवणात् तदाद्रवणात् सूच्यते हि ।
३५. क्षत्रियत्वगतेश्चोत्तरत्र चैत्ररथेन लिङ्गात् ।
३६. संस्कारपरामर्शात् तदभावाभिलापाच्च ।
३७. तदभावनिर्द्धारणे च प्रवृत्तेः ।
३८. श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात् स्मृतेश्च ।
३९. कम्पनात् ।
४०. ज्योतिर्दर्शनात् ।
४१. आकाशोऽर्थान्तरत्वादिव्यपदेशात् ।

४२. सुषुप्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेन । ४३. पत्यादिशब्देभ्यः ॥

इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. आनुमानिकमप्येकेषामिति चेन्न; शरीररूपकविन्यस्तगृहीतेर्दर्शयति च ।
२. सूक्ष्मं तु तदर्हत्वात् । ३. तदधीनत्वादर्थवत् ।
४. ज्ञेयत्वावचनाच्च । ५. वदतीति चेन्न; प्राज्ञो हि प्रकरणात् ।
६. त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च । ७. महद्वच्च ।
८. चमसवदविशेषात् । ९. ज्योतिरुपक्रमा तु तथा ह्यधीयत एके ।
१०. कल्पनोपदेशाच्च मध्वादिवदविरोधः ।
११. न संख्योपसंग्रहादपि नानाभावादतिरेकाच्च ।
१२. प्राणादयो वाक्यशेषात् । १३. ज्योतिषैकेषामसत्यन्ने ।
१४. कारणत्वेन चाकाशादिषु यथा व्यपदिष्टोक्तेः ।
१५. समाकर्षात् । १६. जगद्वाचित्वात् ।
१७. जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेत्, तद्व्याख्यातम् ।
१८. अन्यार्थं तु जैमिनिः प्रश्नव्याख्यानाभ्यामपि चैवमेके ।
१९. वाक्यान्वयात् । २०. प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्गमाश्मरथ्यः ।
२१. उत्क्रमिष्यत एवंभावादित्यौडुलोमिः । २२. अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः ।
२३. प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् ।
२४. अभिध्योपदेशाच्च । २५. साक्षाच्चोभयाम्नानात् ।
२६. आत्मकृतेः परिणामात् । २७. योनिश्च हि गीयते ।
२८. एतेन सर्वे व्याख्याता व्याख्याताः ॥

इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे प्रथमाध्यायस्य
चतुर्थः पादः, प्रथमोऽध्यायश्च ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात् ।

२. इतरेषां चानुपलब्धेः । ३. एतेन योगः प्रत्युक्तः ।

४. न विलक्षणत्वादस्य तथात्वञ्च शब्दात् ।

५. अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम् । ६. दृश्यते तु ।

७. असदिति चेन्न; प्रतिषेधमात्रत्वात् ।

८. अपीतौ तद्वत् प्रसङ्गादसमञ्जसम् ।

९. न तु दृष्टान्तभावात् । १०. स्वपक्षदोषाच्च ।

११. तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथानुमेयमिति चेदेवमप्यविमोक्षप्रसङ्गः ।

१२. एतेन शिष्टापरिग्रहा अपि व्याख्याताः ।

१३. भोक्त्रापत्तेरविभागश्चेत् स्याल्लोकवत् ।

१४. तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः ।

१५. भावे चोपलब्धेः । १६. सत्त्वाच्चावरस्य ।

१७. असद्व्यपदेशान्नेति चेन्न; धर्म्मान्तरेण वाक्यशेषात् ।

१८. युक्तेः शब्दान्तराच्च । १९. पटवच्च ।

२०. यथा च प्राणादि । २१. इतरव्यपदेशाद्धिताकरणादिदोषप्रसक्तिः ।

२२. अधिकं तु भेदनिर्देशात् । २३. अश्मादिवच्च तदनुपपत्तिः ।

२४. उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि । २५. देवादिवदपि लोके ।

२६. कृत्स्नप्रसक्तिर्निरवयवत्वशब्दकोपो वा । २७. श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् ।

२८. आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि । २९. स्वपक्षदोषाच्च ।

३०. सर्वोपेता च तद्दर्शनात् । ३१. विकरणत्वान्नेति चेत्तदुक्तम् ।

३२. न प्रयोजनवत्त्वात् । ३३. लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् ।

३४. वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथा हि दर्शयति ।

३५. न कर्माविभागादिति चेन्न; अनादित्वात् ।

३६. उपपद्यते चाप्युलभ्यते च । ३७. सर्वधर्म्मोपपत्तेश्च ॥

इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम् । २. प्रवृत्तेश्च ।

३. पयोऽम्बुवच्चेत् तत्रापि । ४. व्यतिरेकानवस्थितेश्चानपेक्षत्वात् ।

५. अन्यत्राभावाच्च न तृणादिवत् । ६. अभ्युपगमेऽप्यर्थाभावात् ।

७. पुरुषाश्मवदिति चेत् तथापि । ८. अङ्गित्वानुपपत्तेश्च ।

९. अन्यथानुमितौ च ज्ञशक्तिवियोगात् । १०. विप्रतिषेधाच्चासमञ्जसम् ।

११. महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् । १२. उभयथापि न कर्मातस्तदभावः ।

१३. समवायाभ्युपगमाच्च साम्यादनवस्थितेः ।

१४. नित्यमेव च भावात् । १५. रूपादिमत्त्वाच्च विपर्य्ययो दर्शनात् ।

१६. उभयथा च दोषात् । १७. अपरिग्रहाच्चात्यन्तमनपेक्षा ।

१८. समुदाय उभयहेतुकेऽपि तदप्राप्तिः ।

१९ इतरेतरप्रत्ययत्वादिति चेन्न; उत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात् ।

२०. उत्तरोत्पादे च पूर्वनिरोधात् ।

२१. असति प्रतिज्ञोपरोधो यौगपद्यमन्यथा ।

२२. प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्यानिरोधाप्राप्तिरविच्छेदात् ।

२३. उभयथा च दोषात् । २४. आकाशे चाविशेषात् ।

२५. अनुस्मृतेश्च । २६. नासतोऽदृष्टत्वात् ।

२७. उदासीनानामपि चैवं सिद्धिः । २८. नाभाव उपलब्धेः ।

२९. वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् । ३०. न भावोऽनुपलब्धेः ।

३१. क्षणिकत्वाच्च । ३२. सर्वथानुपपत्तेश्च । ३३. नैकस्मिन्नसम्भावात् ।

३४. एवञ्चात्माऽकार्त्स्न्यम् । ३५. न च पर्यायादप्यविरोधो विकारादिभ्यः ।

३६. अन्त्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वादविशेषः ।

३७. पत्युरसामञ्जस्याद् । ३८. सम्बन्धानुपपत्तेश्च ।

३९. अधिष्ठानानुपत्तेश्च । ४०. करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः ।

४१. अन्तवत्त्वमसर्वज्ञता वा । ४२. उत्पत्त्यसम्भवात् ।

४३. न च कर्तुः करणम् ।

४४. विज्ञानादिभावे वा तदप्रतिषेधः । ४५. विप्रतिषेधाच्च ॥

इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. न वियदश्रुतेः । २. अस्ति तु ।

३. गौण्यसम्भवात् । ४. शब्दाच्च ।

५. स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत् । ६. प्रतिज्ञाऽहानिरव्यतिरेकाच्छब्देभ्यः ।

७. यावद्विकारन्तु विभागो लोकवत् ।

८. एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः । ९. असम्भवस्तु सतोऽनुपपत्तेः ।

१०. तेजोऽतस्तथा ह्याह । ११. आपः ।

१२. पृथिव्यधिकाररूपशब्दान्तरेभ्यः ।

१३. तदभिध्यानादेव तु तल्लिङ्गात् सः ।

१४. विपर्ययेण तु क्रमोऽत उपपद्यते च ।

१५. अन्तरा विज्ञानमनसी क्रमेण तल्लिङ्गादिति चेन्न, अविशेषात् ।

१६. चराचरव्यपाश्रयस्तु स्यात्तद्व्यपदेशो भाक्तस्तद्भावभावित्वात् ।

१७. नात्माऽश्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्यः । १८. ज्ञोऽत एव ।

१९. उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् । २०. स्वात्मना चोत्तरयोः ।

२१. नाणुरतच्छ्रुतेरिति चेन्न; इतराधिकारात् ।

२२. स्वशब्दोन्मानाभ्याञ्च । २३. अविरोधश्चन्दनवत् ।

२४. अवस्थितिवैशेष्यादिति चेन्न; अभ्युपगमाद्धृदि हि ।

२५. गुणाद्वा लोकवत् । २६. व्यतिरेको गन्धवत् । २७. तथा च दर्शयति ।

२८. पृथगुपदेशात् । २९. तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् ।

३०. यावदात्मभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात् ।

३१. पुंस्त्वादिवत्त्वस्य सतोऽभिव्यक्तियोगात् ।

३२. नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसङ्गोऽन्यतरनियमो वाऽन्यथा ।
३३. कर्त्ता शास्त्रार्थवत्त्वात् । ३४. विहारोपदेशात् ।
३५. उपादानात् । ३६. व्यपदेशाच्च क्रियायां न चेन्निर्देशविपर्ययः ।
३७. उपलब्धिवदनियमः । ३८. शक्तिविपर्य्ययात् ।
३९. समाध्यभावाच्च । ४०. यथा च तक्षोभयथा । ४१. परात्तु तच्छ्रुतेः ।
४२. कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः ।
४३. अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयत एके ।
४४. मन्त्रवर्णाच्च । ४५. अपि च स्मर्य्यते । ४६. प्रकाशादिवन्नैवं परः ।
४७. स्मरन्ति च । ४८. अनुज्ञापरिहारौ देहसम्बन्धाज्ज्योतिरादिवत् ।
४९. असन्ततेश्चाव्यतिकरः । ५०. आभास एव च ।
५१. अदृष्टानियमात् । ५२. अभिसन्ध्यादिष्वपि चैवम् ।
५३. प्रदेशादिति चेन्न; अन्तर्भावात् ॥

इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे द्वितीयाध्यायस्य तृतीय पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. तथा प्राणाः । २. गौण्यसम्भवात् । ३. प्रतिज्ञानुपरोधाच्च[1] ।
४. तत्प्राक्श्रुतेश्च । ५. तत्पूर्वकत्वाद्वाचः । ६. सप्तगतेर्विशेषितत्वाच्च ।
७. हस्तादयस्तु स्थितेऽतो नैवम् । ८. अणवश्च ।
९. श्रेष्ठश्च । १०. न वायुक्रिये पृथगुपदेशात् ।
११. चक्षुरादिवत्तु तत् सहशिष्ट्यादिभ्यः ।
१२. अकरणत्वाच्च न दोषस्तथा हि दर्शयति ।
१३. पञ्चवृत्तिर्मनोवद् व्यपदिश्यते । १४. अणुश्च ।
१५. ज्योतिराद्यधिष्ठानं तु तदामननात् ।
१६. प्राणवता शब्दात् । १७. तस्य च नित्यत्वात् ।
१८. त इन्द्रियाणि तद्व्यपदेशादन्यत्र श्रेष्ठात् । १९. भेदश्रुतेः ।
२०. वैलक्षण्याच्च । २१. संज्ञामूर्त्तिक्लृप्तिस्तु त्रिवृत्कुर्वत उपदेशात् ।

---

१. क्वचिदिदं सूत्रं न संगृहीतम् ।

२२. मांसादि भौमं यथाशब्दमितरयोश्च ।
२३. वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः ।।

इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः,

द्वितीयोऽध्यायश्च ॥

•

अथ तृतीयोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. तदन्तरप्रतिपत्तौ रंहति संपरिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम् ।
२. त्र्यात्मकत्वाद् भूयस्त्वात् । ३. प्राणगतेश्च ।
४. अग्न्यादिगतिश्रुतेरिति चेन्न; भाक्तत्वात् ।
५. प्रथमेऽश्रवणादिति चेन्न; ता एव ह्युपपत्तेः ।
६. अश्रुतत्वादिति चेन्न; इष्टादिकारिणां प्रतीतेः ।
७. भाक्तं वाऽनात्मवित्त्वात्तथा हि दर्शयति ।
८. कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्याम् यथेतमनेवं च ।
९. चरणादिति चेन्न; उपलक्षणार्थेति कार्ष्णाजिनिः ।
१०. आनर्थक्यमिति चेन्न; तदपेक्षत्वात् ।
११. सुकृतदुष्कृते एवेति तु बादरिः ।
१२. अनिष्टादिकारिणामपि च श्रुतम् ।
१३. संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्गतिदर्शनात् ।
१४. स्मरन्ति च । १५. अपि च सप्त ।
१६. तत्रापि च तद्व्यापारादविरोधः ।
१७. विद्याकर्मणोरिति तु प्रकृतत्वात् ।
१८. न तृतीये तथोपलब्धेः । १९. स्मर्यतेऽपि च लोके ।
२०. दर्शनाच्च । २१. तृतीयशब्दावरोधः संशोकजस्य ।

२२. साभाव्यापत्तिरुपपत्तेः । २३. नातिचिरेण विशेषात् ।
२४. अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात् ।
२५. अशुद्धमिति चेन्न; शब्दात् । २६. रेतःसिग्योगोऽथ ।
२७. योनेः शरीरम् ॥

इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. सन्ध्ये सृष्टिराह हि । २. निर्म्मातारं चैके पुत्रादयश्च ।
३. मायामात्रन्तु कार्त्स्न्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात् ।
४. सूचकश्च हि श्रुतेराचक्षते च तद्विदः ।
५. पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययौ ।
६. देहयोगाद्वा सोऽपि । ७. तदभावो नाड़ीषु तच्छ्रुतेरात्मनि च ।
८. अतः प्रबोधोऽस्मात् । ९. स एव तु कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्यः ।
१०. मुग्धेऽर्धसम्पत्तिः परिशेषात् ।
११. न स्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि ।
१२. न भेदादिति चेन्न; प्रत्येकमतद्वचनात् । १३. अपि चैवमेके ।
१४. अरूपवदेव हि तत् प्रधानत्वात् ।
१५. प्रकाशवच्चावैयर्थ्यात् । १६. आह च तन्मात्रम् ।
१७. दर्शयति चाथोअपि स्मर्यते । १८. अत एव चोपमा सूर्य्यकादिवत् ।
१९. अम्बुवदग्रहणात्तु न तथात्वम् ।
२०. वृद्धिह्रासभाक्त्वमन्तर्भावादुभयसामञ्जस्यादेवम् । २१. दर्शनाच्च ।
२२. प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः ।
२३. तदव्यक्तमाह हि । २४. अपि च संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ।
२५. प्रकाशादिवच्चावैशेष्यम्, प्रकाशवच्च कर्मण्यभ्यासात् ।
२६. अतोऽनन्तेन तथा हि लिङ्गम् ।
२७. उभयव्यपदेशात्त्वहिकुण्डलवत् । २८. प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात् ।

२९. पूर्ववद्वा । ३०. प्रतिषेधाच्च ।
३१. परमतः सेतून्मानसम्वन्धभेदव्यपदेशेभ्यः । ३२. सामान्यात् तु ।
३३. बुद्धयर्थः पादवत् । ३४. स्थानविशेषात् प्रकाशादिवत् ।
३५. उपपत्तेश्च । ३६. तथान्यप्रतिषेधात् ।
३७. अनेन सर्वगतत्वमायामशब्दादिभ्यः । ३८ फलमत उपपत्तेः ।
३९. श्रुतत्वाच्च । ४०. धर्मं जैमिनिरत एव ।
४१. पूर्वं तु वादरायणो हेतुव्यपदेशात् ॥

इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. सर्ववेदान्तप्रत्ययं चोदनाद्यविशेषात् ।
२. भेदान्नेति चेन्न; एकस्यामपि ।
३. स्वाध्यायस्य तथात्वेन हि समाचारेऽधिकाराच्च[१] ।
४. सववच्च तन्नियमः[१] । ५. दर्शयति च ।
६. उपसंहारोऽर्थाभेदाद्विधिशेषवत् समाने च ।
७. अन्यथात्वं शब्दादिति चेन्न; अविशेषात् ।
८. न वा प्रकरणभेदात् परोवरीयस्त्वादिवत् ।
९. संज्ञातश्चेत् तदुक्तमस्ति तु तदपि ।
१०. व्याप्तेश्च समञ्जसम् । ११. सर्वाभेदादन्यत्रेमे ।
१२. आनन्दादयः प्रधानस्य ।
१३. प्रियशिरस्त्वाद्यप्राप्तिरुपचयापचयौ हि भेदे ।
१४. इतरे त्वर्थसामान्यात् । १५. आध्यानाय प्रयोजनाभावात् ।
१६. आत्मशब्दाच्च । १७. आत्मगृहीतिरितरवदुत्तरात् ।
१८. अन्वयादिति चेत् ? स्यादवधारणात् । १९. कार्य्याख्यानादपूर्वम् ।
२०. समान एवञ्चाभेदात् । २१. सम्बन्धादेवमन्यत्रापि ।
२२. न वा विशेषात् ।

१-१. क्वचिदुभयोरेकस्मिन्नेव सूत्रे पाठः ।

२३. दर्शयति च । २४. सम्भृतिद्युव्याप्त्यपि चातः ।

२५. पुरुषविद्यायामिव चेतरेषामनाम्नात् । २६. वेधाद्यर्थभेदात् ।

२७. हानौ तूपायनशब्दशेषत्वात् कुशाच्छन्दः स्तुत्युपगानवत्तदुक्तम् ।

२८. साम्पराये तर्त्तव्याभावात् तथा ह्यन्ये ।

२९. छन्दत उभयाविरोधात् ।

३०. गतेरर्थवत्त्वमुभयथा, अन्यथा हि विरोधः ।

३१. उपपन्नस्तल्लक्षणार्थोपलब्धेर्लोकवत् ।

३२. अनियमः सर्वासामविरोधः शब्दानुमानाभ्याम् ।

३३. यावदधिकारभवस्थितिराधिकारिकाणाम् ।

३४. अक्षरधियां त्ववरोधः सामान्यतद्भावाभ्यामौपसदवत् तदुक्तम् ।

३५. इयदामननात् । ३६. अन्तरा भूतग्रामवत् स्वात्मनः ।

३७. अन्यथा भेदानुपपत्तिरिति चेन्न; उपदेशान्तरवत् ।

३८. व्यतिहारो विशिंषन्ति हीतरवत् । ३९. सैव हि सत्यादयः ।

४०. कामादीतरत्र तत्र चायतनादिभ्यः । ४१. आदरादलोपः ।

४२. उपस्थितेऽतस्तद्वचनात् ।

४३. तन्निर्धारणानियमस्तद्दृष्टेः पृथग्घ्यप्रतिबन्धः फलम् ।

४४. प्रदानवदेव तदुक्तम् । ४५. लिङ्गभूयस्त्वात्तद्धि बलीयस्तदपि ।

४६. पूर्वविकल्पः प्रकरणात् स्यात् क्रिया मानसवत् ।

४७. अतिदेशाच्च । ४८. विद्यैव तु निर्धारणात् ।

४९. दर्शनाच्च । ५०. श्रुत्यादिबलीयस्त्वाच्च न बाधः ।

५१. अनुबन्धादिभ्यः । ५२. प्रज्ञान्तरपृथक्त्ववद् दृष्टश्च तदुक्तम् ।

५३. न सामान्यादप्युपलब्धेर्मृत्युवन्न हि लोकापत्तिः ।

५४. परेण च शब्दस्य ताद्विध्यं भूयस्त्वात्त्वनुबन्धः ।

५५. एक आत्मनः शरीरे भावात् ।

५६. व्यतिरेकस्तद्भावाभावित्वान्न तूपलब्धिवत् ।

५७. अङ्गावबद्धास्तु न शाखासु हि प्रतिवेदम् । ५८. मन्त्रादिवद्वाऽविरोधः ।

५९. भूम्नः क्रतुवत् ज्यायस्त्वं तथा दर्शयति ।
६०. नानाशब्दादिभेदात् । ६१. विकल्पोऽविशिष्टफलत्वात् ।
६२. काम्यास्तु यथाकामं समुच्चीयेरन्न वाऽपूर्वहेत्वभावात् ।
६३. अङ्गेषु यथाश्रयभावः । ६४. शिष्टेश्च ।
६५. समाहारात् । ६६. गुणसाधारण्यश्रुतेश्च ।
६७. न वा तत् सहभावाश्रुतेः । ६८. दर्शनाच्च ॥

इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. पुरुषार्थोऽतः शब्दादिति बादरायणः ।
२. शेषत्वात् पुरुषार्थवादो यथाऽन्येष्विति जैमिनिः ।
३. आचारदर्शनात् तच्छ्रुतेः । ४. समन्वारम्भणात् ।
५. तद्वतो विधानात् । ६. नियमाच्च ।
७. अधिकोपदेशात्तु बादरायणस्यैवं तद्दर्शनात् ।
८. तुल्यं तु दर्शनम् । ९. असार्वत्रिकी ।
१०. विभागः शतवत् । ११. अध्ययनमात्रवतः ।
१२. नाविशेषात् । १३. स्तुतयेऽनुमतिर्वा ।
१४. कामकारेण चैके । १५. उपमर्दं च ।
१६. ऊर्ध्वरेतःसु च शब्दे हि ।
१७. परामर्शं जैमिनिरचोदना चापवदति हि ।
१८. अनुष्ठेयं बादरायणः साम्यश्रुतेः । १९. विधिर्वा धारणवत् ।
२०. स्तुतिमात्रमुपादानादिति चेन्न; अपूर्वत्वात् । २१. भावशब्दाच्च ।
२२. पारिप्लवार्था इति चेन्न; विशेषितत्वात् ।
२३. तथा चैकवाक्यतोपबन्धात् । २४. अत एव चाग्नीन्धनाद्यनपेक्षा ।
२५. सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्ववत् ।
२६. शमदमाद्युपेतः स्यात्तथापि तु तद्विधेस्तदङ्गतया तेषामवश्यानुष्ठेयत्वात् ।

२७. सर्वान्नानुमतिश्च प्राणात्यये तद्दर्शनात् । २८. अबाधाच्च ।
२९. अपि च स्मर्यते । ३०. शब्दश्चातोऽकामकारे ।
३१. विहितत्वाच्चाश्रमकर्मापि । ३२. सहकारित्वेन च ।
३३. सर्वथापि तु त एवोभयलिङ्गात् । ३४. अनभिभवं च दर्शयति ।
३५. अन्तरा चापि तु तद्दृष्टेः । ३६. अपि च स्मर्य्यते ।
३७. विशेषानुग्रहश्च । ३८. अतस्त्वितरज्यायो लिङ्गाच्च ।
३९. तद्भूतस्य तु नातद्भावो जैमिनेरपि नियमात्तद्रूपाभावेभ्यः ।
४०. न चाधिकारिकमपि पतनानुमानात् तदयोगात् ।
४१. उपपूर्वमपि त्वेके भावमशनवत् तदुक्तम् ।
४२. वहिस्तूभयथापि स्मृतेराचाराच्च ।
४३. स्वामिनः फलश्रुतेरित्यात्रेयः ।
४४. आर्त्विज्यमित्यौडुलोमिस्तस्मै हि परिक्रीयते । ४५. श्रुतेश्च ।
४६. सहकार्यन्तरविधिः पक्षेण तृतीयं तद्वतो विध्यादिवत् ।
४७. कृत्स्नभावात्तु गृहिणोपसंहारः । ४८. मौनवदितरेषामप्युपदेशात् ।
४९. अनाविष्कुर्वन्नन्वयात् । ५०. ऐहिकमप्यप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनात् ।
५१. एवं मुक्तिफलानियमस्तदवस्थावधृतेस्तदवस्थावधृतेः ॥

इति ब्रह्मसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य चतुर्थं पादः, समाप्तश्च तृतीयोऽध्यायः ॥

●

अथ चतुर्थोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. आवृत्तिरसकृदुपदेशात् । २. लिङ्गाच्च ।
३. आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च । ४. न प्रतीके न हि सः ।
५. ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् । ६. आदित्यादिमतयश्चाङ्ग उपपत्तेः ।
७. आसीनः सम्भवात् । ८. ध्यानाच्च ।
९. अचलत्वं चापेक्ष्य । १०. स्मरन्ति च ।
११. यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात् । १२. आप्रायणात् तत्रापि हि दृष्टम् ।

१३. तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् ।
१४. इतरस्याप्येवमसंश्लेषः पाते तु । १५. अनारब्धकार्ये एव तु पूर्वे तदवधेः ।
१६. अग्निहोत्रादि तु तत्कार्यायैव तद्दर्शनात् ।
१७. अतोऽन्यापि ह्येकेषामुभयोः । १८. यदेव विद्ययेति हि ।
१९. भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा सम्पद्यते ॥

इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. वाङ्मनसि दर्शनाच्छब्दाच्च । २. अत एव च सर्वाण्यनु ।
३. तन्मनः प्राण उत्तरात् । ४. सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः ।
५. भूतेषु तच्छ्रुतेः । ६. नैकस्मिन् दर्शयतो हि ।
७. समाना चासृत्युपक्रमादमृतत्वं चानुपोष्य ।
८. तदापीतेः संसारव्यपदेशात् ।
९. सूक्ष्मं प्रमाणतश्च तथोपलब्धेः । १०. नोपमर्देनातः ।
११. अस्यैव चोपपत्तेरेष ऊष्मा । १२. प्रतिषेधादिति चेन्न; शारीरात् ।
१३. स्पष्टो ह्येकेषाम् । १४. स्मर्य्यते च ।
१५. तानि परे तथा ह्याह । १६. अविभागो वचनात् ।
१७. तदोकोग्रज्वलनं तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्यात्तच्छेषगत्यनुस्मृतियोगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकया । १८. रश्म्यनुसारी ।
१९. निशि नेति चेन्न; सम्बन्धात् यावद्देहभावित्वाद्दर्शयति च ।
२०. अतश्चायनेऽपि हि दक्षिणे ।
२१. योगिनः प्रति च स्मर्य्यते स्मार्त्ते चैते ॥

इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. अर्चिरादिना तत्प्रथितेः । २. वायुमब्दादविशेषविशेषाभ्याम् ।
३. तडितोऽधिवरुणः सम्बन्धात् । ४. आतिवाहिकस्तल्लिङ्गात् ।
५. उभयव्यामोहात् तत्सिद्धेः । ६. वैद्युतेनैव ततस्तच्छ्रुतेः ।

७. कार्यं बादरिरस्य गत्युपपत्तेः । ८. विशेषितत्वाच्च ।
९. सामीप्यात्तु तद्व्यपदेशः ।
१०. कार्य्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात् ।
११. स्मृतेश्च । १२. परं जैमिनिर्मुख्यत्वात् ।
१३. दर्शनाच्च । १४. न च कार्ये प्रतिपत्त्यभिसन्धिः ।
१५. अप्रतीकालम्बनान्नयतीति बादरायण उभयथा ह्यदोषात् तत्क्रतुश्च ।
१६. विशेषञ्च दर्शयति ॥

इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. सम्पद्याविर्भावः स्वेन शब्दात् । २. मुक्तः प्रतिज्ञानात् ।
३. आत्मा प्रकरणात् । ४. अविभागेनैव दृष्टत्वात् ।
५. ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ।
६. चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ।
७. एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ।
८. सङ्कल्पादेव तु तच्छ्रुतेः । ९. अत एव चानन्याधिपतिः ।
१०. अभावं बादरिराह ह्येवम् । ११. भावं जैमिनिर्विकल्पामननात् ।
१२. द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः । १३. तन्वभावे सन्ध्यवदुपपद्यते ।
१४. भावे जाग्रद्वत् । १५. प्रदीपवदावेशस्तथा हि दर्शयति ।
१६. स्वाप्ययसम्पत्त्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि ।
१७. जगद्व्यापारवर्ज्जम् प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च ।
१८. प्रत्यक्षोपदेशादिति चेन्न; आधिकारिकमण्डलस्थोक्तेः ।
१९. विकारावर्त्ति च तथा हि स्थितिमाह ।
२०. दर्शयतश्चैवं प्रत्यक्षानुमाने । २१. भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च ।
२२. अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ।

इति श्रीवैयासिकब्रह्मसूत्रे चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थं पादः, चतुर्थोऽध्यायश्च ॥

समाप्तं च वेदान्तदर्शनम् ॥

कापिलसांख्यसूत्रपाठः

(सांख्यदर्शनम्)

—:०:—

अथ विषयाख्यः प्रथमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ।

२. न दृष्टात् तत्सिद्धिर्निवृत्तेरप्यनुवृत्तिदर्शनात् ।

३. प्रात्यहिकक्षुत्प्रतीकारवत् तत्प्रतीकारचेष्टनात् पुरुषार्थत्वम् ।

४. सर्वासम्भवात् सम्भवेऽपि सत्त्वासम्भवाद्धेयः प्रमाणकुशलैः ।

५. उत्कर्षादपि मोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुतेः । ६. अविशेषश्चोभयोः ।

७. न स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनोपदेशविधिः ।

८. स्वभावस्याऽनपायित्वादननुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम् ।

९. नाशक्योपदेशविधिरुपदिष्टेऽप्यनुपदेशः । १०. शुक्लपटवद्बीजवच्चेत् ।

११. शक्त्युद्भवाऽनुद्भवाभ्यां नाशक्योपदेशः ।

१२. न कालयोगतो व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात् ।

१३. न देशयोगतोऽप्यस्मात् । १४. नावस्थातो देहधर्मत्वात् तस्याः ।

१५. असङ्गोऽयं पुरुष इति । १६. न कर्मणाऽन्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च ।

१७. विचित्रभोगानुपपत्तिरन्यधर्मत्वे ।

१८. प्रकृतिनिबन्धनाच्चेन्न; तस्या अपि पारतन्त्र्यम् ।

१९. न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते ।

२०. नाविद्यातोऽप्यवस्तुना बन्धायोगात् ।

२१. वस्तुत्वे सिद्धान्तहानिः । २२. विजातीयद्वैतापत्तिश्च ।
२३. विरुद्धोभयरूपा चेत् ? २४. न; तादृक्पदार्थाऽप्रतीतेः ।
२५. न वयं षट्पदार्थवादिनो वैशेषिकादिवत् ।
२६. अनियतत्वेऽपि नायौक्तिकस्य संग्रहोऽन्यथा बालोन्मत्तादिसमत्वम् ।
२७. नाऽनादिविषयोपरागनिमित्तकोऽप्यस्य ।
२८. न बाह्याभ्यन्तरयोरुपरञ्ज्योपरञ्जकभावोऽपि देशव्यवधानात् स्रुघ्नस्थ-पाटलिपुत्रस्थयोरिव । २९. द्वयोरेकदेशलब्धोपरागान्न व्यवस्था ।
३०. अदृष्टवशाच्चेत् ? ३१. न; द्वयोरेककालायोगादुपकार्य्योपकारकभावः ।
३२. पुत्रकर्मवदिति चेत् ?
३३. नास्ति हि तत्र स्थिर एकात्मा यो गर्भाधानादिना संस्क्रियते[1] ।
३४. स्थिरकार्य्याऽसिद्धेः क्षणिकत्वम् । ३५. न प्रत्यभिज्ञाबाधात् ।
३६. श्रुतिन्यायविरोधाच्च । ३७. दृष्टान्ताऽसिद्धेश्च ।
३८. युगपज्जायमानयोर्न कार्यकारणभावः । ३९. पूर्वापाये उत्तरायोगात् ।
४०. तद्भावे तदयोगादुभयव्यभिचारादपि न ।
४१. पूर्वभावमात्रे न नियमः । ४२. न विज्ञानमात्रं बाह्यप्रतीतेः ।
४३. तदभावे तदभावाच्छून्यं तर्हि ।
४४. शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य ।
४५. अपवादमात्रमबुद्धानाम् ।
४६. उभयपक्षसमानक्षेमत्वादयमपि । ४७. अपुरुषार्थत्वमुभयथा ।
४८. न गतिविशेषात् । ४९. निष्क्रियस्य तदसम्भवात् ।
५०. मूर्त्तत्वाद् घटादिवत् समानधर्मापत्तावपसिद्धान्तः ।
५१. गतिश्रुतिरप्युपाधियोगादाकाशवत् ।
५२. न कर्मणाऽप्यतद्धर्मत्वात् । ५३. अतिप्रसक्तिरन्यधर्मत्वे ।
५४. निर्गुणादिश्रुतिविरोधश्चेति ।

---

१. संस्क्रियेत—पाठा० ।

५५. तद्योगोऽप्यविवेकान्न समानत्वम् ।

५६. नियतकारणात् तदुच्छित्तिर्ध्वान्तवत् ।

५७. प्रधानाविवेकादन्याविवेकस्य तद्धाने हानम् ।

५८. वाङ्मात्रं न तु तत्त्वं चित्तस्थितेः ।

५९. युक्तितोऽपि न बाध्यते दिङ्मूढवदपरोक्षादृते ।

६०. अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधो धूमादिभिरिव वह्नेः ।

६१. सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः,प्रकृतेर्महान्, महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पञ्च तन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः ।

६२. स्थूलात् पञ्चतन्मात्रस्य । ६३. बाह्याभ्यन्तराभ्यां तैश्चाऽहङ्कारस्य ।

६४. तेनान्तःकरणस्य । ६५. ततः प्रकृतेः ।

६६. संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य । ६७. मूले मूलाभावादमूलं मूलम् ।

६८. पारम्पर्येऽप्येकत्र परिनिष्ठेति संज्ञामात्रम् ।

६९. समानः प्रकृतेर्द्वयोः । ७०. अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः ।

७१. महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः । ७२. चरमोऽहङ्कारः ।

७३. तत्कार्यत्वमन्येषाम् । ७४. आद्यहेतुता तद्द्वारा पारम्पर्येऽप्यणुवत् ।

७५. पूर्वभावित्वे द्वयोरेकतरस्य हानेऽन्यतरयोगः ।

७६. परिच्छिन्नं न सर्वोपादानम् । ७७. तदुत्पत्तिश्रुतेश्च ।

७८. नाऽवस्तुनो वस्तुसिद्धिः ।

७९. अबाधाददुष्टकारणजन्यत्वाच्च नावस्तुत्वम् ।

८०. भावे तद्योगेन तत्सिद्धिरभावे तदभावात् कुतस्तरां तत्सिद्धिः ।

८१. न कर्मण उपादानत्वाऽयोगात् ।

८२. नानुश्रविकादपि तत्सिद्धिः साध्यत्वेनावृत्तियोगादपुरुषार्थत्वम् ।

८३. तत्र प्राप्तविवेकस्याऽनावृत्तिश्रुतिः ।

८४. दुःखाद् दुःखं जलाभिषेकवन्न जाड्यविमोकः ।

८५. काम्येऽकाम्येऽपि साध्यत्वाविशेषात् ।

८६. निजमुक्तस्य बन्धध्वंसमात्रं परं न समानत्वम् ।

८७. द्वयोरेकतरस्य वाऽप्यसन्निकृष्टार्थपरिच्छित्तिः प्रमा, तत्साधकतमं यत् तत् त्रिविधं प्रमाणम् ।

८८. तत्सिद्धौ सर्वसिद्धेर्नाधिक्यसिद्धिः ।

८९. यत् सम्बद्धं सत् तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत् प्रत्यक्षम् ।

९०. योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः ।

९१. लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः ।

९२. ईश्वरासिद्धेः ।

९३. मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः ।

९४. उभयथाप्यसत्करत्वम् ।

९५. मुक्तात्मनः प्रशंसोपासनासिद्धस्य वा ।

९६. तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत् ।

९७. विशेषकार्येष्वपि जीवानाम् ।

९८. सिद्धरूपबोद्धृत्वाद् वाक्यार्थोपदेशः ।

९९. अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वाल्लोहवदधिष्ठातृत्वम् ।

१००. प्रतिबन्धदृशः प्रतिबद्धज्ञानमनुमानम् ।

१०१. आप्तोपदेशः शब्दः ।

१०२. उभयसिद्धिः प्रमाणात् तदुपदेशः ।

१०३. सामान्यतोदृष्टादुभयसिद्धिः ।

१०४. चिदवसानो भोगः ।

१०५. अकर्तुरपि फलोपभोगोऽन्नाद्यवत् ।

१०६. अविवेकाद्वा तत्सिद्धेः कर्तुः फलावगमः ।

१०७. नोभयं च तत्त्वाख्याने ।

१०८. विषयोऽविषयोऽप्यतिदूरादेर्हानोपादानाभ्यामिन्द्रियस्य ।

१०९. सौक्ष्म्यात् तदनुपलब्धिः ।

११०. कार्यदर्शनात् तदुपलब्धेः ।

१११. वादिविप्रतिपत्तेस्तदसिद्धिरिति चेत् ?

११२. तथाप्येकतरदृष्ट्या एकतरसिद्धेर्नापलापः ।

११३. त्रिविधविरोधापत्तेश्च ।

११४. नासदुत्पादो नृशृङ्गवत् ।

११५. उपादाननियमात् ।

११६. सर्वत्र सर्वदा सर्वासम्भवात् ।

११७. शक्तस्य शक्यकरणात् ।

११८. कारणभावाच्च ।

११९. न भावे भावयोगश्चेत् ।

१२०. नाभिव्यक्तिनिबन्धनौ व्यवहाराऽव्यवहारौ ।

१२१. नाशः कारणलयः ।

१२२. पारम्पर्यतोऽन्वेषणा बीजाङ्कुरवत् । १२३. उत्पत्तिवद्वाऽदोषः ।
१२४. हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम् ।
१२५. आञ्जस्यादभेदतो वा गुणसामान्यादेस्तत्सिद्धिः प्रधानव्यपदेशाद्वा ।
१२६. त्रिगुणाचेतनत्वादि द्वयोः ।
१२७. प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योन्यं वैधर्म्यम् ।
१२८. लघ्वादिधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च गुणानाम् ।
१२९. उभयान्यत्वात् कार्यत्वं महदादेर्घटादिवत् ।
१३०. परिमाणात् । १३१. समन्वयात् । १३२. शक्तितश्चेति ।
१३३. तद्धाने प्रकृतिः पुरुषो वा । १३४. तयोरन्यत्वे तुच्छत्वम् ।
१३५. कार्यात् कारणानुमानं तत्साहित्यात् ।
१३६. अव्यक्ते त्रिगुणाल्लिङ्गात् । १३७. तत्कार्यतस्तत्सिद्धेर्नापलापः ।
१३८. सामान्येन विवादाभावाद्धर्मवन्न साधनम् ।
१३९. शरीरादिव्यतिरिक्तः पुमान् । १४०. संहतपरार्थत्वात् ।
१४१. त्रिगुणादिविपर्ययात् । १४२. अधिष्ठानाच्चेति ।
१४३. भोक्तृभावात् । १४४. कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च ।
१४५. पुरुषजड़प्रकाशायोगात् प्रकाशः । १४६. निर्गुणत्वान्न चिद्धर्मा ।
१४७. श्रुत्या सिद्धस्य, नापलापस्तत्प्रत्यक्षबाधात् ।
१४८. सुषुप्त्याद्यस्य साक्षित्वम् । १४९. जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम् ।
१५०. उपाधिभेदेऽप्येकस्य नानायोग आकाशस्येव घटादिभिः ।
१५१. उपाधिर्भिद्यते न तु तद्वान् ।
१५२. एवमेकत्वेन परिवर्त्तमानस्य न विरुद्धधर्माध्यासः ।
१५३. अन्यधर्मत्वेऽपि नारोपात् तत्सिद्धिरेकत्वात् ।
१५४. नाद्वैतश्रुतिविरोधो जातिपरत्वात् ।
१५५. विदितबन्धकारणस्य दृष्टचा तद्रूपम् ।
१५६. नान्धाऽदृष्टचा चक्षुष्मतामनुपलम्भः । १५७. वामदेवादिर्मुक्तो नाद्वैतम् ।
१५८. अनादावद्य यावदभावाद्भविष्यदप्येवम् ।

१५९. इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः । १६०. व्यावृत्तोभयरूपः ।

१६१. साक्षात्सम्वन्धात् साक्षित्वम् ।

१६२. नित्यमुक्तत्वम् । १६३. औदासीन्यं चेति ।

१६४. उपरागात् कर्त्तृत्वं चित्सानिध्याच्चित्सान्निध्यात् ॥

इति कापिलसूत्रपाठे विषयाध्यायः प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ प्रधानकार्याख्यो द्वितीयोऽध्यायः

१. विमुक्तमोक्षार्थं स्वार्थं वा प्रधानस्य । २. विरक्तस्य तत्सिद्धेः ।

३. न श्रवणमात्रात् तत्सिद्धिरनादिवासनाया बलवत्त्वात् ।

४. वहुभृत्यवद्वा प्रत्येकम् । ५. प्रकृतिवास्तवे च पुरुषस्याऽध्याससिद्धिः ।

६. कार्यतस्तत्सिद्धेः । ७. चेतनोद्देशान्नियमः कण्टकमोक्षवत् ।

८. अन्ययोगेऽपि तत्सिद्धिर्नाञ्जस्येनायोदाहावत् ।

९. रागविरागयोर्योगः सृष्टिः । १०. महदादिक्रमेण पञ्चभूतानाम् ।

११. आत्मार्थत्वात् सृष्टेर्नैषामात्मार्थं आरम्भः ।

१२. दिक्कालावाकाशादिभ्यः । १३. अध्यवसायो बुद्धिः ।

१४. तत्कार्यं धर्मादि । १५. महदुपरागाद्विपरीतम् ।

१६. अभिमानोऽहङ्कारः । १७. एकादशपञ्चतन्मात्रं तत्कार्यम् ।

१८. सात्त्विकमेकादशकं प्रवर्तते वैकृतादहङ्कारात् ।

१९. कर्मेन्द्रियवुद्धीन्द्रियैरान्तरमेकादशकम् ।

२०. आहङ्कारिकत्वश्रुतेर्न भौतिकानि । २१. देवतालयश्रुतिर्नारम्भकस्य ।

२२. तदुत्पत्तिश्रुतेर्विनाशदर्शनाच्च ।

२३. अतीन्द्रियमिन्द्रियं भ्रान्तानामधिष्ठाने ।

२४. शक्तिभेदेऽपि भेदसिद्धौ नैकत्वम् ।

२५. न कल्पनाविरोधः प्रमाणदृष्टस्य ।

२६. उभयात्मकं च मनः । २७. गुणपरिणामभेदान्नानात्वमवस्थावत् ।

२८. रूपादिरसमलान्त उभयोः ।

२९. द्रष्टृत्वादिरात्मनः करणत्वमिन्द्रियाणाम् ।

३०. त्रयाणां स्वालक्षण्यम् ।

३१. सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च ।

३२. क्रमशोऽक्रमशश्चेन्द्रियवृत्तिः ।

३३. वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः ।

३४. तन्निवृत्तावुपशान्तोपरागः स्वस्थः । ३५. कुसुमवच्च मणिः ।

३६. पुरुषार्थंकरणोद्भवोऽप्यदृष्टोल्लासात् । ३७. धेनुवद्वत्साय ।

३८. करणं त्रयोदशविधमवान्तरभेदात्[1] ।

३९. इन्द्रियेषु साधकतमत्वगुणयोगात् कुठारवत् ।

४०. द्वयोः प्रधानं मनो लोकवद् भृत्यवर्गेषु ।

४१. अव्यभिचारात् । ४२. तथाऽशेषसंस्काराधारत्वात् ।

४३. स्मृत्यानुमानाच्च । ४४. सम्भवेन्न स्वतः ।

४५. आपेक्षिको गुणप्रधानभावः क्रियाविशेषात् ।

४६. तत्कर्मार्ज्जितत्वात् तदर्थमभिचेष्टा लोकवत् ।

४७. समानकर्मयोगे बुद्धेः प्राधान्यं लोकवल्लोकवत् ।।

इति कापिलसूत्रपाठे प्रधानकार्याख्यो द्वितीयोऽध्यायः ।।



अथ वैराग्याख्यस्तृतीयोऽध्यायः

१. अविशेषाद्विशेषारम्भः । २. तस्माच्छरीरस्य ।

३. तद्बीजात् संसृतिः । ४. आविवेकाच्च प्रवर्त्तनमविशेषाणाम् ।

५. उपभोगादितरस्य । ६. सम्प्रति परिमुक्तो द्वाभ्याम् ।

७. मातापितृजं स्थूलं प्रायश इतरन्न तथा ।

८. पूर्वोत्पत्तेस्तत्कार्यत्वं भोगादेकस्य नेतरस्य ।

---

१. बाह्यान्तर०—इत्यपि क्वचित् पाठः ।

९. सप्तदशैकं लिङ्गम् । १०. व्यक्तिभेदः कर्मविशेषात् ।
११. तदधिष्ठानाश्रये देहे तद्वादात् तद्वादः ।
१२. न स्वातन्त्र्यात् तदृते च्छायावच्चित्रवच्च ।
१३. मूर्तत्वेऽपि न सङ्घातयोगात् तरणिवत् ।
१४. अणुपरिमाणं तत् कृतिश्रुतेः । १५. तदन्नमयत्वश्रुतेश्च ।
१६. पुरुषार्थं संसृतिर्लिङ्गानां सूपकारवद्राज्ञः ।
१७. पाञ्चभौतिको देहः । १८. चातुर्भौतिकमित्येके ।
१९. ऐकभौतिकमित्यपरे । २०. न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः ।
२१. प्रपञ्चमरणाद्यभावश्च ।
२२. मदशक्तिवच्चेत् प्रत्येकपरिदृष्टे[1] सांहत्ये तदुद्भवः ।
२३. ज्ञानान्मुक्तिः । २४. बन्धो विपर्ययात् ।
२५. नियत्तकारणत्वान्न समुच्चयविकल्पौ ।
२६. स्वप्नजागराभ्यामिव मायिकामायिकाभ्यां नोभयोर्मुक्तिः पुरुषस्य ।
२७. इतरस्यापि नात्यन्तिकम् । २८. सङ्कल्पितेऽप्येवम् ।
२९. भावनोपचयाच्छुद्धस्य सर्वं प्रकृतिवत् ।
३०. रागोपहतिर्ध्यानम् । ३१. वृत्तिनिरोधात् तत्सिद्धिः ।
३२. धारणासनस्वकर्मणा तत्सिद्धिः । ३३. निरोधश्छर्दिविधारणाभ्याम् ।
३४. स्थिरसुखमासनम् । ३५. स्वकर्मस्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम् ।
३६. वैराग्यादभ्यासाच्च । ३७. विपर्ययभेदाः पञ्च ।
३८. अशक्तिरष्टाविंशतिधा तु । ३९. तुष्टिर्नवधा ।
४०. सिद्धिरष्टधा । ४१. अवान्तरभेदाः पूर्ववत् ।
४२. एवमितरस्याः । ४३. आध्यात्मिकादिभेदान्नवधा तुष्टिः ।
४४. ऊहादिभिः सिद्धिः । ४५. नेतरादितरहानेन विना ।
४६. दैवादिप्रभेदा । ४७. आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तत्कृते सृष्टिराविवेकात् ।
४८. ऊर्ध्वं सत्त्वविशाला । ४९. तमोविशाला मूलतः ।

---

१. सौक्ष्म्याद्०—इत्यधिकः पाठः क्वचित् ।

५०. मध्ये रजोविशाला । ५१. कर्मवैचित्र्यात् प्रधानचेष्टा गर्भदासवत् ।
५२. आवृत्तिस्तत्राप्युत्तरोत्तरयोनियोगाद्धेयः[१] ।
५३. समानं जरामरणादिजं दुःखम् ।
५४. न कारणलयात् कृतकृत्यता मग्नवदुत्थानात् ।
५५. अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात् ।
५६. स हि सर्ववित् सर्वकर्ता । ५७. ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा ।
५८. प्रधानसृष्टिः परार्थं स्वतोऽप्यभोक्तृत्वादुष्ट्रकुङ्कुमवहनवत् ।
५९. अचेतनत्वेऽपि क्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य ।
६०. कर्मवद् दृष्टेर्वा कालादे ।
६१. स्वभावाच्चेष्टितमनभिसन्धानाद् भृत्यवत् ।
६२. कर्माकृष्टेर्वानादितः ।
६३. विविक्तबोधात् सृष्टिनिवृत्तिः प्रधानस्य सूदवत् पाके ।
६४. इतर इतरवत् तद्दोषात् । ६५. द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्गः ।
६६. अन्यसृष्ट्युपरागेऽपि न विरज्यते प्रबुद्धरज्जुतत्त्वस्येवोरगः ।
६७. कर्मनिमित्तयोगाच्च । ६८. नैरपेक्ष्येऽपि प्रकृत्युपकारेऽविवेको निमित्तम् ।
६९. नर्तकीवत् प्रवृत्तस्यापि निवृत्तिश्चारितार्थ्यात् ।
७०. दोषबोधेऽपि नोपसर्पणं प्रधानस्य कुलवधूवत् ।
७१. नैकान्ततो बन्धमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादृते ।
७२. प्रकृतेराञ्जस्यात् ससङ्गत्वात्[२] पशुवत् ।
७३. रूपैः सप्तभिरात्मानं बध्नाति प्रधानं कोशकारवद्विमोचयत्येकरूपेण ।
७४. निमित्तत्वमविवेकस्य न दृष्टिहानिः ।
७५. तत्त्वाभ्यासान्नेति नेतीति त्यागाद्विवेकसिद्धिः ।
७६. अधिकारिप्रभेदान्न नियमः ।
७७. बाधितानुवृत्त्या मध्यविवेकतोऽप्युपभोगः ।
७८. जीवन्मुक्तश्च । ७९. उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः ।

---

१. उत्तरयोनि०—इत्यपि पाठः क्वचित् । २. संसर्गत्वात्—पाठा० ।

८०. श्रुतिश्च । ८१. इतरथाऽन्धपरम्परा ।

८२. चक्रभ्रमणवद् धृतशरीरः । ८३. संस्कारलेशतस्तत्सिद्धिः ।

८४. विवेकान्निःशेषदुःखनिवृत्तौ कृतकृत्यता नेतरान्नेतरात् ॥

इति कापिलसूत्रपाठे वैराग्याख्यस्तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ आख्यायिकाख्यश्चतुर्थोऽध्यायः

१. राजपुत्रवत् तत्त्वोपदेशात् । २. पिशाचवदन्यार्थोपदेशेऽपि ।

३. आवृत्तिरसकृदुपदेशात् । ४. पितापुत्रवदुभयोर्दृष्टत्वात् ।

५. श्येनवत् सुखदुःखी त्यागवियोगाभ्याम् ।

६. अहिनिर्ल्वयनीवत्[1] । ७. छिन्नहस्तवद्वा ।

८. असाधनानुचिन्तनं बन्धाय भरतवत् ।

९. बहुभिर्योगे विरोधो रागादिभिः कुमारीशङ्खवत् ।

१०. द्वाभ्यामपि तथैव । ११. निराशः सुखी पिङ्गलावत् ।

१२. अनारम्भेऽपि परगृहे सुखी सर्पवत् ।

१३. बहुशास्त्रगुरूपासनेऽपि सारादानं षट्पदवत् ।

१४. इषुकारवन्नैकचित्तस्य समाधिहानिः ।

१५. कृतनियमलङ्घनादानर्थक्यं लोकवत् । १६. तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत् ।

१७. नोपदेशश्रवणेऽपि[2] कृतकृत्यता परामर्शादृते विरोचनवत् ।

१८. दृष्टस्तयोरिन्द्रस्य ।

१९. प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि कृत्वा सिद्धिर्बहुकालात् तद्वत् ।

२०. न कालनियमो वामदेववत् ।

२१. अध्यस्तरूपोपासनात् पारम्पर्येण यज्ञोपासकानामिव ।

२२. इतरलाभेऽप्यावृत्तिः पञ्चाग्नियोगतो जन्मश्रुतेः ।

२३. विरक्तस्य हेयहानमुपादेयोपादानं हंसक्षीरवत् ।

२४. लब्धातिशययोगाद्वा तद्वत् । २५. न कामचारित्वं रागोपहते शुकवत् ।

---

१. निर्ल्वयिनी०—पाठा० । २. नोपदेशेऽपि—पाठा० ।

२६. गुणयोगाद् बद्धः शुकवत् । २७. न भोगाद्रागशान्तिर्मुनिवत् ।
२८. दोषदर्शनादुभयोः । २९. न मलिनचेतस्युपदेशबीजप्ररोहोऽजवत् ।
३०. नाभासमात्रमपि मलिनदर्पणवत् । ३१. न तज्जस्यापि तद्रूपता पङ्कजवत् ।
३२. न भूतियोगेऽपि कृतकृत्यतोपास्यसिद्धिवदुपास्यसिद्धिवत् ॥

इति कापिलसूत्रपाठे आख्यायिकाख्यश्चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ परपक्षनिर्जयाख्यः पञ्चमोऽध्यायः

१. मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनात् श्रुतितश्चेति ।
२. नेश्वराधिष्ठिते फलनिष्पत्तिः कर्मणा तत्सिद्धेः ।
३. स्वोपकारादधिष्ठानं लोकवत् । ४. लौकिकेश्वरवदितरथा ।
५. पारिभाषिको वा । ६. न रागादृते तत्सिद्धिः प्रतिनियतकारणत्वात् ।
७. तद्योगेऽपि न नित्यमुक्तः । ८. प्रधानशक्तियोगाच्चेत् सङ्गापत्तिः ।
९. सत्तामात्राच्चेत् सर्वैश्वर्यम् । १०. प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः ।
११. सम्बन्धाभावान्नानुमानम् । १२. श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य ।
१३. नाविद्याशक्तिसंयोगस्य निःसङ्गस्य ।
१४. तद्योगे तत्सिद्धावन्योन्याश्रयत्वम् ।
१५. न बीजाङ्कुरवत् सादिसंसारश्रुतेः ।
१६. विद्यातोऽन्यत्वे ब्रह्मबाधप्रसङ्गः । १७. अबाधे नैष्फल्यम् ।
१८. विद्याबाध्यत्वे जगतोऽप्येवम् । १९. तद्रूपत्वे सादित्वम् ।
२०. न धर्मापलापः प्रकृतिकार्यवैचित्र्यात् ।
२१. श्रुतिलिङ्गादिभिस्तत्सिद्धिः । २२. न नियमः प्रमाणान्तरावकाशात् ।
२३. उभयत्राप्येवम् । २४. अर्थात् सिद्धिश्चेत् समानमुभयोः ।
२५. अन्तःकरणधर्मत्वं धर्मादीनाम् । २६. गुणादीनां च नात्यन्तबाधः ।
२७. पञ्चावयवयोगात् सुखसंवित्तिः । २८. न सकृद्ग्रहणात् सम्बन्धसिद्धिः ।
२९. नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः ।
३०. न तत्त्वान्तरं वस्तुकल्पनाप्रसक्तेः ।

३१. निजशक्त्युद्भवमित्याचार्याः । ३२. आधेयशक्तियोग इति पंचशिखः ।
३३. न स्वरूपशक्तिर्नियमः पुनर्वादप्रसक्तेः ।
३४. विशेषणानर्थक्यप्रसक्तेः । ३५. पल्लवादिष्वनुपपत्तेश्च ।
३६. आधेयशक्तिसिद्धौ निजशक्तियोगः समानन्यायात् ।
३७. वाच्यवाचकभावः सम्बन्धः शब्दार्थयोः ।
३८. त्रिभिः सम्बन्धसिद्धिः । ३९. न कार्ये नियम उभयथा दर्शनात् ।
४०. लोके व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिः ।
४१. न त्रिभिरपौरुषेयत्वाद् वेदस्य तदर्थस्यातीन्द्रियत्वात् ।
४२. न यज्ञादेः स्वरूपतो धर्मत्वं वैशिष्ट्यात् ।
४३. निजशक्तिर्व्युत्पत्त्या व्यवच्छिद्यते ।
४४. योग्यायोग्येषु प्रतीतिजनकत्वात् तत्सिद्धिः ।
४५. न नित्यत्वं वेदामां कार्यत्वश्रुतेः ।
४६. न पौरुषेयत्वं तत्कर्त्तुः पुरुषस्याभावात् ।
४७. मुक्ताऽमुक्तयोरयोग्यत्वात् । ४८. नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमङ्कुरादिवत् ।
४९. तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादिप्रसक्तिः ।
५०. यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम् ।
५१. निजशक्त्याभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् ।
५२. नासतः ख्यानं नृशृङ्गवत् । ५३. न सतो बाधदर्शनात् ।
५४. नानिर्वचनीयस्य तदभावात् ।
५५. नान्यथाख्यातिः स्ववचोव्याघातात् । ५६. सदसत्ख्यातिर्बाधाबाधात् ।
५७. प्रतीत्यप्रतीतिभ्यां न स्फोटात्मकः शब्दः ।
५८. न शब्दनित्यत्वं कार्यताप्रतीतेः ।
५९. पूर्वसिद्धसत्त्वस्याभिव्यक्तिर्दीपेनेव घटस्य ।
६०. सत्कार्यसिद्धान्तश्चेत् सिद्धसाधनम् ।
६१. नाद्वैतमात्मनो लिङ्गात् तद्भेदप्रतीतेः ।
६२. नाऽनात्मनापि प्रत्यक्षबाधात् । ६३. नोभाभ्यां तेनैव ।

६४. अन्यपरत्वमविवेकानां तत्र ।

६५. नात्माऽविद्या नोभयं जगदुपादानकारणं निःसङ्गत्वात् ।

६६. नैकस्यानन्दचिद्रूपत्वे द्वयोर्भेदात् । ६७. दुःखनिवृत्तेर्गौणः ।

६८. विमुक्तिप्रशंसा मन्दानाम् ।

६९. न व्यापकत्वं मनसः करणत्वादिन्द्रियत्वाद्वा ।[1]

७०. सक्रियत्वाद् गतिश्रुतेः । ७१. न निर्भागत्वं तद्योगाद् घटवत् ।

७२. प्रकृतिपुरुषयोरन्यत् सर्वमनित्यम् ।

७३. न भागलाभो भागिनो निर्भागत्वश्रुतेः ।

७४. नानन्दाभिव्यक्तिर्निर्धर्मत्वात् ।

७५. न विशेषगुणोच्छित्तिस्तद्वत् । ७६. न विशेषगतिर्निष्क्रियस्य ।

७७. नाकारोपरागोच्छित्तिः क्षणिकत्वादिदोषात् ।

७८. न सर्वोच्छित्तिरपुरुषार्थत्वादिदोषात् । ७९. एवं शून्यमपि ।

८०. संयोगाश्च वियोगान्ता इति न देशादिलाभेऽपि ।

८१. न भागियोगो भागस्य ।

८२. नाणिमादियोगोऽप्यवश्यम्भावित्वात् तदुच्छित्तेरितरयोगवत् ।

८३. नेन्द्रादिपदयोगोऽपि तद्वत् ।

८४. न भूतप्रकृतित्वमिन्द्रियाणामाहङ्कारिकत्वश्रुतेः ।

८५. न षट्पदार्थनियमस्तद्बोधान्मुक्तिः । ८६. षोडशादिष्वप्येवम् ।

८७. नाणुनित्यता तत्कार्यत्वश्रुतेः ।

८८. न निर्भागत्वं कार्यत्वात् । ८९. न रूपनिबन्धात् प्रत्यक्षनियमः ।

९०. न परिमाणचातुर्विध्यं द्वाभ्यां तद्योगाच्च ।

९१. अनित्यत्वेऽपि स्थिरतायोगात् प्रत्यभिज्ञानं सामान्यस्य ।

९२. न तदपलापस्तस्मात् । ९३. नान्यनिवृत्तिरूपत्वं भावप्रतीतेः ।

९४. न तत्त्वान्तरं सादृश्यं प्रत्यक्षोपलब्धेः ।

९५. निजशक्त्यभिव्यक्तिर्वा वैशिष्ट्यात् तदुपलब्धेः ।

---

१. वास्यादिवच्चक्षुरादिवच्च—इत्यधिकं क्वचित् ।

९६. न संज्ञासंज्ञिसम्बन्धोऽपि । ९७. न सम्बन्धनित्यतोभयानित्यत्वात् ।

९८. नातः सम्बन्धो धर्मिग्राहकमानबाधात् ।

९९. न समवायोऽस्ति प्रमाणाभावात् ।

१००. उभयत्राऽप्यन्यथासिद्धेर्न प्रत्यक्षमनुमानं वा ।

१०१. नानुमेयत्वमेव क्रियाया नेदिष्ठस्य तत्तद्वतोरेवापरोक्षप्रतीतेः ।

१०२. न पाञ्चभौतिक शरीरं बहूनामुपादानायोगात् ।

१०३. न स्थूलमिति नियमः, आतिवाहिकस्यापि विद्यमानत्वात् ।

१०४. नाप्राप्तप्रकाशकत्वमिन्द्रियाणामप्राप्तेः सर्वप्राप्तेर्वा ।

१०५. न तेजोऽपसर्पणात् तैजसं चक्षुर्वृत्तितस्तत्सिद्धेः ।

१०६. प्राप्त्यार्थप्रकाशलिङ्गाद् वृत्तिसिद्धिः ।

१०७. भागगुणाभ्यां तत्त्वान्तरं वृत्तिः सम्बन्धार्थं सर्पतीति ।

१०८. न द्रव्ये नियमस्तद्योगात् ।

१०९. न देशभेदेऽप्यन्योपादानतास्मदादिवन्नियमः ।

११०. निमित्तव्यपदेशात् तद्व्यपदेशः ।

१११. ऊष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्जसांकल्पिकसांसिद्धिकं चेति न नियमः ।

११२. सर्वेषु पृथिव्युपादानमसाधारण्यात् तद्व्यपदेशः पूर्ववत् ।

११३. न देहारम्भकस्य प्राणत्वमिन्द्रियशक्तितस्तत्सिद्धेः ।

११४. भोक्तुरधिष्ठानाद्भोगायतननिर्माणमन्यथा पूतिभावप्रसङ्गः ।

११५. भृत्यद्वारा स्वाम्यधिष्ठितिर्नैकान्तात् ।

११६. समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता । ११७. द्वयोः सबीजमन्यत्र तद्धतिः ।

११८. द्वयोरिव त्रयस्यापि दृष्टत्वान्न तु द्वौ ।

११९. वासनयानर्थख्यापनं[1] दोषयोगेऽपि न निमित्तस्य प्रधानबाधकत्वम् ।

१२०. एकः संस्कारः क्रियानिर्वर्तको न तु प्रतिक्रियं संस्कारभेदा, बहुकल्पना-
प्रसक्तेः । १२१. न बाह्यबुद्धिनियमः; वृक्षगुल्मलतौषधिवनस्पतितृण-
वीरुधादीनामपि भोक्तृभोगायतनत्वं पूर्ववत्[1] । १२२. स्मृतेश्च ।

---

१. क्वचिदिदं सूत्रद्वयं कृत्वा पठितम् ।

ष० सू० सं० : १०

१२३. न देहमात्रतः कर्माधिकारित्वं वैशिष्टयश्रुतेः ।
१२४. त्रिधा त्रयाणां व्यवस्था कर्मदेहोपभोगदेहोभयदेहाः ।
१२५. न किञ्चिदप्यनुशयिनः ।
१२६. न बुद्ध्यादिनिमित्तत्वमाश्रयविशेषेऽपि वह्निवत् । १२७. आश्रयासिद्धेश्च ।
१२८. योगसिद्धयोऽप्यौषधादिसिद्धिवन्नापलपनीयाः ।
१२९. न भूतचैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः सांहत्येऽपि च सांहत्येऽपि च ॥

इति सांख्यसूत्रपाठे परपक्षनिर्जयाख्यः पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ तन्त्राख्यः षष्ठोऽध्यायः

१. अस्त्यात्मा नास्तित्वसाधनाभावात् ।
२. देहादिव्यतिरिक्तोऽसौ वैचित्र्यात् । ३. षष्ठीव्यपदेशादपि ।
४. न शिलापुत्रवद्धर्मिग्राहकमानबाधात् ।
५. अत्यन्तदुःखनिवृत्त्या कृतकृत्यता ।
६. यथा दुःखात् क्लेशः पुरुषस्य न तथा सुखादभिलाषः ।
७. न कुत्रापि कोऽपि सुखीति ।
८. तदपि दुःखशबलमिति दुःखपक्षे निःक्षिपन्ते विवेचकाः ।
९. सुखलाभाभावादपुरुषार्थत्वमिति चेन्न; द्वैविध्यात् ।
१०. निर्गुणत्वमात्मनोऽसङ्गत्वादिश्रुतेः ।
११. परधर्मत्वेऽपि तत्सिद्धिरविवेकात् ।
१२. अनादिरविवेकोऽन्यथा दोषद्वयप्रसक्तेः ।
१३. न नित्यः स्यादात्मवदन्यथानुच्छित्तिः ।
१४. प्रतिनियतकारणनाश्यत्वमस्य ध्वान्तवत् ।
१५. अत्रापि प्रतिनियमोऽन्वयव्यतिरेकात् ।
१६. प्रकारान्तरासम्भवादविवेक एव बन्धः ।
१७. न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोऽप्यनावृत्तिश्रुतेः ।
१८. अपुरुषार्थत्वमन्यथा । १९. अविशेषापत्तिरुभयोः ।

२०. मुक्तिरन्तरायध्वस्तेर्न परः । २१. तत्राप्यविरोधः ।

२२. अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः । २३. दाढर्यार्थमुत्तरेषाम् ।

२४. स्थिरसुखमासनमिति न नियमः । २५. ध्यानं निर्विषयं मनः ।

२६. उभयथाप्यविशेषश्चेन्नैवमुपरागनिरोधाद्विशेषः ।

२७. निःसङ्गेऽप्युपरागोऽविवेकात् ।

२८. जपास्फटिकयोरिव नोपरागः किन्त्वभिमानः ।

२९. ध्यानधारणाभ्यासवैराग्यादिभिस्तन्निरोधः ।

३०. लयविक्षेपयोर्व्यावृत्त्येत्याचार्याः । ३१. न स्थाननियमश्चित्तप्रसादात् ।

३२. प्रकृतेराद्योपादानतान्येषां कार्यश्रुतेः ।

३३. नित्यत्वेऽपि नात्मनो योगत्वाभावात् ।

३४. श्रुतिविरोधान्न कुतर्कापसदस्यात्मलाभः ।

३५. पारम्पर्येऽपि प्रधानानुवृत्तिरणुवत् । ३६. सर्वत्र कार्यदर्शनाद्विभुत्वम् ।

३७. गतियोगेऽप्याद्यकारणताहानिरणुवत् ।

३८. प्रसिद्धाधिक्यं प्रधानस्य न नियमः ।

३९. सत्त्वादीनामतद्धर्मत्वं तद्रूपत्वात् ।

४०. अनुपभोगेऽपि पुमर्थं सृष्टिः प्रधानस्योष्ट्रकुङ्कुमवहनवत् ।

४१. कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम् । ४२. साम्यवैषम्याभ्यां कार्यद्वयम् ।

४३. विमुक्तबोधान्न सृष्टिः प्रधानस्य लोकवत् ।

४४. नान्योपसर्पणेऽपि मुक्तोपभोगो निमित्ताभावात् ।

४५. पुरुषबहुत्वं व्यवस्थातः । ४६. उपाधिश्चेत् तत्सिद्धौ पुनर्द्वैतम् ।

४७. द्वाभ्यामपि प्रमाणविरोधः ।

४८. द्वाभ्यामप्यविरोधान्न पूर्वमुत्तरं च साधकाभावात् ।

४९. प्रकाशतस्तत्सिद्धौ कर्मकर्तृविरोधः ।

५०. जडव्यावृत्तो जडं प्रकाशयति चिद्रूपः ।

५१. न श्रुतिविरोधो रागिणां वैराग्याय तत्सिद्धेः ।

५२. जगत्सत्यत्वमदुष्टकारणजन्यत्वाद् बाधकाभावात् ।

५३. प्रकारान्तरासम्भवात् सदुत्पत्तिः । ५४. अहङ्कारः कर्ता न पुरुषः ।
५५. चिदवसाना भुक्तिस्तत्कर्मार्जितत्वात् ।
५६. चन्द्रादिलोकेऽप्यावृत्तिर्निमित्तसद्भावात् ।
५७. लोकस्य नोपदेशात् सिद्धिः पूर्ववत् ।
५८. पारम्पर्येण तत्सिद्धौ विमुक्तश्रुतिः ।
५९. गतिश्रुतेश्च व्यापकत्वेऽप्युपाधियोगाद्भोगदेशकाललाभो व्योमवत् ।
६०. अनधिष्ठितस्य पूतिभावप्रसङ्गान्न तत्सिद्धिः ।
६१. अदृष्टद्वारा चेदसम्बन्धस्य तदसम्भवाज्जलादिवदङ्कुरे ।
६२. निर्गुणत्वात् तदसम्भवादहङ्कारधर्मा ह्येते ।
६३. विशिष्टस्य जीवत्वमन्वयव्यतिरेकात् ।
६४. अहङ्कारकर्त्रधीना कार्यसिद्धिर्नेश्वराधीना प्रमाणाभावात् ।
६५. अदृष्टोद्भूतिवत् समानत्वम् । ६६. महतोऽन्यत् ।
६७. कर्मनिमित्तः प्रकृतेः स्वस्वामिभावोऽप्यनादिर्बीजाङ्कुरवत् ।
६८. अविवेकनिमित्तो वा पञ्चशिखः ।
६९. लिङ्गशरीरनिमित्तक इति सनन्दनाचार्यः ।
७०. यद्वा तद्वा तदुच्छित्तिः पुरुषार्थस्तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः ॥

इति श्रीकपिलमुनिविरचिते साङ्ख्यसूत्रपाठे षष्ठस्तन्त्राध्यायः समाप्तः ॥

समाप्तं च साङ्ख्यदर्शनम् ॥

•

सांख्यशास्त्रप्रशंसा

पञ्चविंशतितत्त्वज्ञो यत्र कुत्राश्रमे वसन् ।
जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः ॥

४.

पातञ्जलयोगसूत्रपाठः

(योगदर्शनम्)

—:०:—

प्रथमः समाधिपादः

१. अथ योगानुशासनम् ।   २. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।

३. तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ।   ४. वृत्तिसारूप्यमितरत्र ।

५. वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः[1] ।

६. प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ।

७. प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ।

८. विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ।

९. शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ।

१०. अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ।

११. अनुभूतविषयाऽसम्प्रमोषः स्मृतिः ।

१२. अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।   १३. तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ।

१४. स तु दीर्घकालनैरन्तर्य्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः ।

१५. दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ।

१६. तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ।

१७. वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् सम्प्रज्ञातः ।

१८. विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ।

१९. भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ।

२०. श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ।   २१. तीव्रसंवेगानामासन्नः ।

२२. मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः ।   २३. ईश्वरप्रणिधानाद्वा ।

---

१. क्लिष्टा अक्लिष्टाः इति पाठान्तरम् ।

२४ क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।

२५. तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ।

२६. स एष[1] पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।

२७. तस्य वाचकः प्रणवः । २८. तज्जपस्तदर्थभावनम् ।

२९. ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।

३०. व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थित-त्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ।

३१. दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ।

३२. तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ।

३३. मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसा-दनम् । ३४. प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ।

३५. विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी ।

३६. विशोका वा ज्योतिष्मती । ३७. वीतरागविषयं वा चित्तम् ।

३८. स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा । ३९. यथाभिमतध्यानाद्वा ।

४०. परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ।

४१. क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनतासमापत्तिः ।

४२. तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः सङ्कीर्णा सवितर्का समापत्तिः ।

४३. स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ।

४४. एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ।

४५. सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम् । ४६. ता एव सबीजः समाधिः ।

४७. निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः । ४८. ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ।

४९. श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् ।

५०. तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ।

५१. तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥

इति पातञ्जलयोगसूत्रपाठे समाधिनिर्देशो नाम प्रथमः पादः ॥

---

१. स एष—इति क्वचिन्नास्ति ।

द्वितीयः साधनपादः

१. तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ।

२. समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ।

३. अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः ।

४. अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ।

५. अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ।

६. दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता । ७. सुखानुशयी रागः ।

८. दुःखानुशयी द्वेषः । ९. स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ।

१०. ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः । ११. ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ।

१२. क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ।

१३. सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ।

१४. ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ।

१५. परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ।

१६. हेयं दुःखमनागतम् । १७. द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ।

१८. प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ।

१९. विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ।

२०. द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ।

२१. तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा ।

२२. कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ।

२३. स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ।

२४. तस्य हेतुरविद्या ।

२५. तदभावात् संयोगाभावो हानं तद् दृशेः कैवल्यम् ।

२६. विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ।

२७. तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ।

२८. योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ।

२९. यम–नियमासन–प्राणायाम–प्रत्याहार–धारणा–ध्यान–समाधयोऽष्टावङ्गानि । ३०. अहिंसा[१] सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।

३१. जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ।

३२. शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।

३३. वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ।

३४. वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ।

३५. अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ।

३६. सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ।

३७. अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ।

३८. ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः । ३९. अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः ।

४०. शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ।

४१. सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयाऽऽत्मदर्शनयोग्यत्वानि च ।

४२ सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः । ४३. कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ।

४४ स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः । ४५. समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ।

४६. [२]स्थिरसुखमासनम् । ४७. प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ।

४८. ततो द्वन्द्वानभिघातः ।

४९. तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ।

५०. बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः[३] ।

५१. बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः । ५२. ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ।

५३. धारणासु च योग्यता मनसः ।

५४. स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ।

५५. ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ।।

इति पातञ्जलयोगसूत्रपाठे साधननिर्देशो नाम द्वितीयः पादः ।।

---

१. तत्राहिंसा०–पाठान्तरम् । २. तत्रेति क्वचिदधिकम् ।

३. दीर्घः सूक्ष्म इति पाठा० ।

तृतीयो विभूतिपादः

१. देशबन्धश्चित्तस्य धारणा । २. तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।
३. तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ।
४. त्रयमेकत्र संयमः । ५. तज्जयात् प्रज्ञालोकः ।
६. तस्य भूमिषु विनियोगः । ७. त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ।
८. तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य ।
९. व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः । १०. तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ।
११. सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ।
१२. शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ।
१३. एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ।
१४. शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ।
१५. क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ।
१६. परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ।
१७. शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात् सङ्करस्तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरुतज्ञानम् । १८. संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् ।
१९. प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ।
२०. न च तत्[1] सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् ।
२१. कायरूपसंयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्द्धानम् ।
२२. सोपक्रमं निरुपक्रमञ्च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ।
२३. मैत्र्यादिषु बलानि । २४. बलेषु हस्तिबलादीनि ।
२५. प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ।
२६. भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् । २७. चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ।
२८. ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् । २९. नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ।
३०. कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः । ३१. कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ।

---

१. क्वचित् तदिति नास्ति ।

३२. मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् । ३३. प्रातिभाद्वा सर्वम् ।

३४. हृदये चित्तसंवित् । ३५. सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासङ्कीर्णयोः प्रत्यया-विशेषो भोगः परार्थत्वात् स्वार्थसंयमात् पुरुषज्ञानम् ।

३६. ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्त्ता जायन्ते ।

३७. ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ।

३८. बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ।

३९. उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च ।

४०. समानजयाज्ज्वलनम् ।

४१. श्रोत्राकाशयोः सम्वन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ।

४२. कायाकाशयोः सम्वन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम् ।

४३. बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ।

४४. स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् भूतजयः ।

४५. ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च ।

४६. रूपलावण्यवलवज्रसंहननत्वानि कायसंपत् ।

४७. ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः ।

४८. ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ।

४९. सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ।

५०. तद्वैराग्यादपि दोषवीजक्षये कैवल्यम् ।

५१. स्थान्युपनिमन्त्रणे[1] सङ्गस्मयाकरण पुनरनिष्टप्रसङ्गात् ।

५२. क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ।

५३. जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात्तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ।

५४. तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् ।

५५. सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ॥

इति पातञ्जलयोगसूत्रपाठे विभूतिनिर्देशो नाम तृतीयः पादः ॥

---

१. उपमन्त्रणे; स्वाम्युपनिमन्त्रणे इति पाठान्तरम् ।

चतुर्थः कैवल्यपादः

१. जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः ।

२. जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ।

३. निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ।

४. निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ।

५. प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् । ६. तत्र ध्यानजमनाशयम् ।

७. कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ।

८. ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ।

९. जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ।

१०. तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ।

११. हेतुफलाश्रयालम्बनैः सङ्गृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ।

१२. अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ।

१३. ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मनः । १४. परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्त्वम् ।

१५. वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः ।

१६. न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् !

१७. तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ।

१८. सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ।

१९. न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् । २०. एकसमये चोभयानवधारणम् ।

२१. चित्तान्तरदृश्यत्वे[1] बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसङ्करश्च ।

२२. चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारतापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ।

२३. द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ।

२४. तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ।

२५. विशेषदर्शिन आत्मभावभावनानिवृत्तिः ।

२६. तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ।

२७. तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ।

---

१. चित्तान्तरदृश्ये बुद्धेर० इति क्वचित् पाठः ।

२८. हानमेषां क्लेशवदुक्तम्[१] ।

२९. प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ।

३०. ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ।

३१. तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज् ज्ञेयमल्पम् ।

३२. ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ।

३३. क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ।

३४. पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥

इति श्रीपातञ्जलयोगशास्त्रे कैवल्यनिरूपणं नाम चतुर्थः पादः ॥

समाप्तं च पातञ्जलयोगदर्शनसूत्रपाठः ॥

योगशास्त्रप्रशस्तिः

योगात् परतरं पुण्यं योगात् परतरं शिवम् ।
योगात् परतरं सूक्ष्मं योगात् परतरं नहि ॥

—योगशिखोपनिषद्, १।६७

---

१. दुक्तं यथेति पाठा० ।

५

गौतमीयन्यायसूत्रपाठः

(न्यायदर्शनम्)

—: ० :—

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रथममाह्निकम्

१. प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डा-हेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः ।

२. दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः ।

३. प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि ।

४. इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् । ५. अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत् सामान्यतोदृष्टञ्च ।

६. प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम् ।

७. आप्तोपदेशः शब्दः । ८. स द्विविधो दृष्टादृष्टार्थत्वात् ।

९. आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयम् ।

१०. इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम् ।

११. चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम् ।

१२. घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणीन्द्रियाणि भूतेभ्यः ।

१३. पृथ्व्यापस्तेजो वायुराकाशमिति भूतानि ।

१४. गन्धरसरूपस्पर्शशब्दाः पृथिव्यादिगुणास्तदर्थाः ।

१५. बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम् ।

१६. युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम् ।

१७. प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारम्भः । १८. प्रवर्त्तनालक्षणा दोषाः ।

१९. पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः। २०. प्रवृत्तिदोषजनितोऽर्थः फलम्।

२१. बाधनालक्षणं दुःखम्। २२. तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः।

२३. समानानेकधर्म्मोपपत्तेर्विप्रतिपत्तेरुपलब्ध्यनुपलब्ध्यव्यवस्थातश्च विशेषापेक्षो विमर्शः संशयः। २४. यमर्थमधिकृत्य प्रवर्त्तते तत् प्रयोजनम्।

२६. लौकिकपरीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्तः।

२३. तन्त्राधिकरणाभ्युपगमसंस्थितिः सिद्धान्तः।

२७. स चतुर्विधः सर्वतन्त्रप्रतितन्त्राधिकरणाभ्युपगमसंस्थित्यर्थान्तरभावात्।

२८. सर्वतन्त्राविरुद्धस्तन्त्रेऽधिकृतोऽर्थः सर्वतन्त्रसिद्धान्तः।

२९. समानतन्त्रसिद्धः परतन्त्रासिद्धः प्रतितन्त्रसिद्धान्तः।

३०. यत्सिद्धावन्यप्रकरणसिद्धिः सोऽधिकरणसिद्धान्तः।

३१. अपरीक्षिताभ्युपगमात् तद्विशेषपरीक्षणमभ्युपगमसिद्धान्तः।

३२. प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनान्यवयवाः। ३३. साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञा।

३४. उदाहरणसाधर्म्यात् साध्यसाधनं हेतुः। ३५. तथा वैधर्म्यात्।

३६. साध्यसाधर्म्यात् तद्धर्मभावी दृष्टान्त उदाहरणम्।

३७. तद्विपर्य्ययाद्वा विपरीतम्।

३८. उदाहरणापेक्षस्तथेत्युपसंहारो न तथेति वा साध्यस्योपनयः।

३९. हेत्वपदेशात् प्रतिज्ञायाः पुनर्वचनं निगमनम्।

४०. अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः।

४१. विमृश्य पक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं निर्णयः॥

इति गौतमीयसूत्रपाठे प्रथमाध्याये प्रथममाह्निकम्।

द्वितीयमाह्निकम्

१. प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोपपन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वादः। २. यथोक्तोपपन्नश्छलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालम्भो जल्पः। ३. स प्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा।

४. सव्यभिचारविरुद्धप्रकरणसमसाध्यसमातीतकाला हेत्वाभासाः।

५. अनैकान्तिकः सव्यभिचारः। ६. सिद्धान्तमभ्युपेत्य तद्विरोधी विरुद्धः।

७. यस्मात् प्रकरणचिन्ता स निर्णयार्थमपदिष्टः प्रकरणसमः ।

८. साध्याविशिष्टः साध्यत्वात् साध्यसमः ।

९. कालत्ययापदिष्टः कालातीतः ।

१०. वचनविघातोऽर्थविकल्पोपपत्त्या छलम् ।

११. तत् त्रिविधं वाक्छलं सामान्यच्छलमुपचारच्छलञ्चेति ।

१२. अविशेषाभिहितेऽर्थे वक्तुरभिप्रायादर्थान्तरकल्पना वाक्छलम् ।

१३. सम्भवतोऽर्थस्यातिसामान्ययोगादसम्भूतार्थकल्पना सामान्यछलम् ।

१४. धर्मविकल्पनिर्देशेऽर्थसद्भावप्रतिषेध उपचारच्छलम् ।

१५. वाक्छलमेवोपचारच्छलं तदविशेषात् ? १६. न; तदर्थान्तरभावात् ।

१७. अविशेषे वा किञ्चित्साधर्म्यादेकच्छलप्रसङ्गः ।

१८. साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं जातिः ।

१९. विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानम् ।

२०. तद्विकल्पाज्जातिनिग्रहस्थानबहुत्वम् ।

इति गौतमीयसूत्रपाठे प्रथमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, प्रथमोऽध्यायश्च ॥



अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्रथममाह्निकम्

१. समानानेकधर्माध्यवसायादन्यतरधर्माध्यवसायाद्वा न संशयः ।

२. विप्रतिपत्त्यव्यवस्थाध्यवसायाच्च । ३. विप्रतिपत्तौ च सम्प्रतिपत्तेः ।

४. अव्यवस्थात्मनि व्यस्थितत्वाच्चाव्यवस्थायाः ।

५. तथाऽत्यन्तसंशयस्तद्धर्मसातत्योपपत्तेः ।

६. यथोक्ताध्यवसायादेव तद्विशेषापेक्षात् [1]संशये नासंशयो नात्यन्तसंशयो वा ।

७. यत्र संशयस्तत्रैवमुत्तरोत्तरप्रसङ्गः ।

---

१. संशयेन संशयो—इति मुद्रितोऽपपाठः ।

८. प्रत्यक्षादीनामप्रामाण्यं त्रैकाल्यासिद्धेः ।

९. पूर्वं हि प्रमाणसिद्धौ नेन्द्रियार्थसन्निकर्षात् प्रत्यक्षोत्पत्तिः ।

१०. पश्चात् सिद्धौ न प्रमाणेभ्यः प्रमेयसिद्धिः ?

११. युगपत्सिद्धौ प्रत्यर्थनियतत्वात् क्रमवृत्तित्वाभावो बुद्धीनाम् ।

१२. त्रैकाल्यासिद्धेः प्रतिषेधानुपपत्तिः ।

१३. सर्वप्रमाणप्रतिषेधाच्च प्रतिषेधानुपपत्तिः ।

१४. तत्प्रामाण्ये वा न सर्वप्रमाणविप्रतिषेधः ।

१५. त्रैकल्याप्रतिषेधश्च शब्दादातोद्यसिद्धिवत्तत्सिद्धेः ।

१६. प्रमेया[1] च तुला प्रामाण्यवत् ।

१७. प्रमाणतः सिद्धेः प्रमाणानां प्रमाणान्तरसिद्धिप्रसङ्गः ।

१८. तद्विनिवृत्तेर्वा प्रामाणान्तरसिद्धिवत् प्रमेयसिद्धिः ।

१९. न प्रदीपप्रकाशवत् तत्सिद्धेः[2] । २०. प्रत्यलक्षणानुपपत्तिरसमग्रवचनात् ।

२१. नात्ममनोः सन्निकर्षाभावे प्रत्यक्षोत्पत्तिः ।

२२. दिग्देशकालाकाशेष्वप्येवं प्रसङ्गः ।

२३. ज्ञानलिङ्गत्वादात्मनो नानवरोधः ।

२४. तदयौगपद्यलिङ्गत्वाच्च न मनसः ।

२५. प्रत्यक्षनिमित्तत्वाच्चेन्द्रियार्थयोः सन्निकर्षस्य स्वशब्देन वचनम् ।

२६. सुप्तव्यासक्तमनसां चेन्द्रियार्थयोः सन्निकर्षनिमित्तत्वात् ।

२७. तैश्चापदेशो ज्ञानविशेषाणाम् । २८. व्याहतत्वादहेतुः ।

२९. नार्थविशेषप्राबल्यात् । ३०. प्रत्यक्षमनुमानमेकदेशग्रहणादुपलब्धेः ।

३१. न प्रत्यक्षेण यावत्तावदप्युपलम्भात् ।

३२. न चैकदेशोपलब्धिरवयविसद्भावात्[3] । ३३. साध्यत्वादवयविनि सन्देहः ।

३४. सर्वाग्रहणमवयव्यसिद्धेः । ३५. धारणाकर्षणोपपत्तेश्च ।

---

१. प्रमेयता च तुला—पाठा० ।

२. क्वचिन्निवृत्तिदर्शनादनिवृत्तिदर्शनाच्च क्वचिदनेकान्तः"—इति वाचस्पति-मिश्रसम्मतमधिकमत्रैकं सूत्रम् । सूत्रमिदं न्या० सू० नि० नास्ति ।

३६. सेनावनवत् ग्रहणमिति चेन्न; अतीन्द्रियत्वादणूनाम् ।
३७. रोधोपघातसादृश्येभ्यो व्यभिचारादनुमानमप्रमाणम् ?
३८. न; एकदेशत्राससादृश्येभ्योऽर्थान्तरभावात् ।
३९. वर्त्तमानाभावः पततः पतितपतितव्यकालोपपत्तेः ?
४०. तयोरप्यभावो वर्तमानाभावे तदपेक्षत्वात् ।
४१. नातीतानागतयोरितरेतरापेक्षासिद्धिः ।
४२. वर्तमानाभावे सर्वाग्रहणम्प्रत्यक्षानुपपत्तेः ।
४३. कृतताकर्तव्यतोपपत्तेस्तूभयथाग्रहणम् ।
४४. अत्यन्तप्रायैकदेशसाधर्म्यादुपमानासिद्धिः ?
४५. प्रसिद्धसाधर्म्यादुपमानसिद्धेर्यथोक्तदोषानुपपत्तिः ।
४६. प्रत्यक्षेणाप्रत्यक्षसिद्धेः ।
४७. नाप्रत्यक्षे गवये प्रमाणार्थमुपमानस्य पश्यामः ।
४८. तथेत्युपसंहारादुपमानसिद्धेर्नाविशेषः ।
४९. शब्दोऽनुमानमर्थस्यानुपलब्धेरनुमेयत्वात् ।
५०. उपलब्धेरद्विप्रवृत्तित्वात् ? ५१. सम्बन्धाच्च ?
५२. आप्तोपदेशसामर्थ्याच्छब्दादर्थसंप्रत्ययः । ५३. प्रमाणतोऽनुपलब्धेः ।
५४. पूरणप्रदाहपाटनानुपलब्धेश्च सम्बन्धाभावः ।
५५. शब्दार्थव्यवस्थानादप्रतिषेधः ?
५६. न; सामयिकत्वाच्छब्दार्थसम्प्रत्ययस्य । ५७. जातिविशेषे चानियमात् ।
५८. तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः ?
५९. न; कर्मकर्तृसाधनवैगुण्यात् । ६०. अभ्युपेत्य कालभेदे दोषवचनात् ।
६१. अनुवादोपपत्तेश्च । ६२. वाक्यविभागस्य चार्थग्रहणात् ।
६३. विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात् । ६४. विधिर्विधायकः ।
६५. स्तुतिर्निन्दा परकृतिः पुराकल्प इत्यर्थवादः ।
६६. विधिविहितस्यानुवचनमनुवादः ।
६७. नानुवादपुनरुक्तयोर्विशेषः शब्दाभ्यासोपपत्तेः ।

ष० सू० सं० : ११

६८. शीघ्रतरगमनोपदेशवदभ्यासान्नाविशेषः ।

६९. मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् ॥

इति गौतमीयसूत्रपाठे द्वितीयाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात् ।

२. शब्द ऐतिह्यानर्थान्तरभावादनुमानेऽर्थापत्तिसम्भवाभावानर्थान्तरभावाच्चाप्रतिषेधः । ३. अर्थापत्तिरप्रमाणमनैकान्तिकत्वात् ।

४. अनर्थापत्तावर्थापत्त्यभिमानात् । ५. प्रतिषेधाप्रामाण्यञ्चानैकान्तिकत्वात् ।

६. तत्प्रामाण्ये वा नार्थापत्त्यप्रामाण्यम् । ७. नाभावप्रामाण्यं प्रमेयासिद्धेः ।

८. लक्षितेष्वलक्षणलक्षितत्वादलक्षितानां [1]तत्प्रमेयसिद्धिः ।

९. असत्यर्थे नाभाव इति चेन्न; अन्यलक्षणोपपत्तेः ।

१०. तत्सिद्धेरलक्षितेष्वहेतुः ।

११. न; लक्षणावस्थितापेक्षासिद्धेः । १२. प्रागुत्पत्तेरभावोपपत्तेश्च ।

१३. विमर्शहेत्वनुयोगे[2] च विप्रतिपत्तेः संशयः ।

१४. आदिमत्त्वादैन्द्रियकत्वात् कृतकवदुपचाराच्च ।

१५. न; घटाभावसामान्यनित्यत्वात् नित्येष्वप्यनित्यवदुपचाराच्च ?

१६. तत्त्वभाक्तयोर्नानात्वविभागादव्यभिचारः ।

१७. सन्तानानुमानविशेषणात् । १८. कारणद्रव्यस्य प्रदेशशब्देनाभिधानात् ।

१९. प्रागुच्चारणादनुपलब्धेरावरणाद्यनुपलब्धेश्च ।

२०. तदनुपलब्धेरनुपलम्भादावरणोपपत्तिः ?

२१. अनुपलम्भादप्यनुपलब्धिसद्भाववन्नावरणानुपपत्तिरनुपलम्भात् ।

२२. अनुपलम्भात्मकत्वादनुपलब्धेरहेतुः ।

२३. अस्पर्शत्वात् ? २४. न कर्मानित्यत्वात् । २५. न; अणु नित्यत्वात् ।

२६. सम्प्रदानात् ? २७. तदन्तरालानुपलब्धेरहेतुः । २८. अध्यापनादप्रतिषेधः ।

---

१. तत्प्रमेयासिद्धेः—मुद्रितः पाठः ।

२. न्यायसूचीनिबन्धे नेदं सूत्रत्वेन परिगणितम् ।

२९. उभयोः पक्षयोरन्यतरस्याध्यापनादप्रतिषेधः ।

३०. अभ्यासात् ? ३१. नान्यत्वेऽप्यभ्यासस्योपचारात् ।

३२. अन्यदन्यस्मादनन्यत्वादनन्यदित्यन्यताऽभावः ।

३३. तदभावे नास्त्यनन्यता तयोरितरेतरापेक्षसिद्धेः ।

३४. विनाशकारणानुपलब्धेः ?

३५. अश्रवणकारणानुपलब्धेः सततश्रवणप्रसङ्गः ।

३६. उपलभ्यमाने चानुपलब्धेरसत्त्वादनपदेशः ।

३७. पाणिनिमित्तप्रश्लेषाच्छब्दाभावे नानुपलब्धिः ।

३८. विनाशकारणानुपलब्धेश्चावस्थाने तन्नित्यत्वप्रसङ्गः ।

३९. अस्पर्शत्वादप्रतिषेधः । ४०. विभक्त्यन्तरोपपत्तेश्च समासे ।

४१. विकारादेशोपदेशात् संशयः । ४२. प्रकृतिविवृद्धौ विकारविवृद्धेः ।

४३. न्यूनसमाधिकोपलब्धेर्विकाराणामहेतुः[१] ।

४४. न; अतुल्यप्रकृतीनां विकार विकल्पात् ।

४५. द्रव्यविकारवैषम्यवद्वर्णविकारविकल्पः ? ४६. न; विकारधर्मानुपपत्तेः ।

४७. विकारप्राप्तानामपुनरापत्तेः । ४८. सुवर्णादीनां पुनरापत्तेरहेतुः ?

४९. न; तद्विकाराणां सुवर्णभावाव्यतिरेकात् ।

५०. वर्णत्वयाव्यतिरेकाद्वर्णविकाराणामप्रतिषेधः[२] ।

५१. सामान्यवतो धर्मयोगो न सामान्यस्य[२] ।

५२. नित्यत्वेऽविकारादनित्यत्वे चानवस्थानात् ।

५३. नित्यानामतीन्द्रियत्वात् तद्धर्मविकल्पाच्च वर्णविकाराणामप्रतिषेधः ।

५४. अनवस्थायित्वे च वर्णोपलब्धिवत्तद्विकारोपपत्तिः ।

५५. विकारधर्मित्वे नित्यत्वाभावात् कालान्तरे विकारोपपत्तेश्चाप्रतिषेधः ।

५६. प्रकृत्यनियमाद्वर्णविकाराणाम् । ५७. अनियमे नियमान्नानियमः ।

५८. नियमानियमविरोधादनियमे नियमाच्चाप्रतिषेधः ।

---

१. न्या० सू० निबन्धे—"द्विविधस्यापि हेतोरभावादसाधनं दृष्टान्तः"—इत्यपि सूत्रम् । २. नेदं सूत्रद्वयं न्या० सू० निबन्धे ।

५९. गुणान्तरापत्त्युपमर्दह्रासवृद्धिलेशश्लेषेभ्यस्तु विकारोपपत्तेर्वर्णविकारः ।
६०. ते विभक्त्यन्ताः पदम् ।
६१. व्यक्त्याकृतिजातिसन्निधावुपचारात् संशयः ।
६२. याशब्दसमूहत्यागपरिग्रहसंख्यावृद्ध्युपचयवर्णसमासानुबन्धानां व्यक्तावुपचाराद्व्यक्तिः ? ६३. न; तदनवस्थानात् ।
६४. सहचरणस्थानतादर्थ्यवृत्तमानधारणसामीप्ययोगसाधनाधिपत्येभ्यो ब्राह्मणमञ्चकटराजसक्तुचन्दनगङ्गाशाटकान्नपुरुषेष्वतद्भावेऽपि तदुपचारः ।
६५. आकृतिस्तदपेक्षत्वात् सत्त्वव्यवस्थानसिद्धेः ।
६६. व्यक्त्याकृतियुक्तेऽप्यप्रसङ्गात् प्रोक्षणादीनां मृद्गवके जातिः ।
६७. नाकृतिव्यक्त्यपेक्षत्वाज्जात्यभिव्यक्ते ।
६८. व्यक्त्याकृतिजातयस्तु पदार्थः । ६९. व्यक्तिर्गुणविशेषाश्रयो मूर्तिः ।
७०. आकृतिर्जातिलिङ्गाख्या । ७१. समानप्रसवात्मिका जातिः ।
इति गौतमीयन्यायसूत्रपाठे द्वितीयाध्याये द्वितीयमाह्निकम् द्वितीयोऽध्यायश्च ॥

●

अथ तृतीयोऽध्यायः

प्रथममाह्निकम्

१. दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणात् । २. न विषयव्यवस्थानात् ?
३. तद्व्यवस्थानादेवात्मसद्भावादप्रतिषेधः । ४. शरीरदाहे पातकाभावात् ।
५. तदभावः सात्मकप्रदाहेऽपि तन्नित्यत्वात् ।
६. न; कार्य्याश्रयकर्तृवधात् । ७. सव्यदृष्टस्येतरेण प्रत्यभिज्ञानात् ।
८. नैकस्मिन्नासास्थिव्यवहिते द्वित्वाभिमानात् ?
९. एकविनाशे द्वितीयाविनाशान्नैकत्वम् ।
१०. अवयवनाशेऽप्यवयव्युपलब्धेरहेतुः ?
११. दृष्टान्तविरोधादप्रतिषेधः । १२. इन्द्रियान्तरविकारात् ।
१३. न; स्मृतेः स्मर्त्तव्यविषयत्वात् । १४. तदात्मगुणसद्भावादप्रतिषेधः ।

१५. अपरिसङ्ख्यानाच्च स्मृतिविषयस्य[1]।
१६. न; आत्मप्रतिपत्तिहेतूनां मनसि सम्भवात् ?
१७. ज्ञातुर्ज्ञानसाधनोपपत्तेः संज्ञाभेदमात्रम्। १८. नियमश्च निरनुमानः।
१९. पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धात् जातस्य हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्तेः।
२०. पद्मादिषु प्रबोधसम्मीलनविकारवत्तद्विकारः।
२१. न; उष्णशीतवर्षाकालनिमित्तत्वात् पञ्चात्मकविकाराणाम्।
२२. प्रेत्याहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात्।
२३. अयसोऽयस्कान्ताभिगमनवत्तदुपसमर्पणम् ?
२४. न; अन्यत्र प्रवृत्त्यभावात्। २५. वीतरागजन्मादर्शनात्।
२६. सगुणद्रव्योत्पत्तिवत् तदुत्पत्तिः ?
२७. न; सङ्कल्पनिमित्तत्वाद्रागादीनाम्।
२८. पार्थिवगुणान्तरोपलब्धेः। २९. [2]श्रुतिप्रामाण्याच्च।
३०. कृष्णसारे सत्युपलम्भाद्व्यतिरिच्य चोपलम्भात् संशयः।
३१. महदणुग्रहणात्। ३२. रश्म्यर्थसन्निकर्षविशेषात् तद्ग्रहणम्।
३३. तदनुपलब्धेरहेतुः। ३४. नानुमीयमानस्य प्रत्यक्षतोऽनुपलब्धिरभावहेतुः।
३५. द्रव्यगुणधर्मभेदाच्चोपलब्धिनियमः।
३६. अनेकद्रव्यसमवायाद्रूपविशेषाच्च रूपोपलब्धिः।
३७. कर्म्मकारितश्चेन्द्रियाणां व्यूहः पुरुषार्थतन्त्रः।
३८. अव्यभिचाराच्च प्रतिघातो भौतिकधर्मः[1]।
३९. माध्यन्दिनोल्काप्रकाशानुपलब्धिवत्तदनुपलब्धिः।
४०. न रात्रावप्यनुपलब्धेः।
४१. वाह्यप्रकाशानुग्रहाद्विषयोपलब्धेरनभिव्यक्तितोऽनुपलब्धिः।
४२. अभिव्यक्तौ चाभिभवात्। ४३. नक्तञ्चरनयनरश्मिदर्शनाच्च।

---

१. नेदं सूत्रम्। २. इतः पूर्वं "पार्थिवाप्यतैजसं तद्गुणोपलब्धेः।" "निःश्वासोच्छ्वासोपलब्धेश्चातुर्भौतिकम्।" "गन्धक्लेदपाकव्यूहावकाशदानेभ्यः पाञ्चभौतिकम्।" इति सूत्रत्रयं न्या० सू० नि० अस्ति।

४४. अप्राप्य ग्रहणं काचाभ्रपटलस्फटिकान्तरितोपलब्धेः ।
४५. कुड्यान्तरितानुपलब्धेरप्रतिषेधः । ४६. अप्रतिघातात् सन्निकर्षोपपत्तिः ।
४७. आदित्यरश्मेः स्फटिकान्तरितेऽपि दाह्योऽविघातात् ।
४८. नेतरेतरधर्म्मप्रसङ्गात् ?
४९. आदर्शोदकयोः प्रसादस्वाभाव्याद्रूपोपलब्धिवत्तदुपलब्धिः ।
५०. दृष्टानुमितानां नियोगप्रतिषेधानुपपत्तिः ।
५१. स्थानान्यत्वे नानात्वादवयविनानास्थानत्वाच्च संशयः ।
५२. त्वगव्यतिरेकात् ? ५३. न; इन्द्रियान्तरार्थानुपलब्धेः[1] ।
५४. त्वगवयवविशेषेण धूमोपलब्धिवत्तदुपलब्धिः[1] । ५५. आहतत्वादहेतुः[1] ।
५६. न युगपदर्थानुपलब्धे[1]; । ५७. विप्रतिषेधाच्च न त्वगेका ।
५८. इन्द्रियार्थपञ्चत्वात् । ५९. न तदर्थबहुत्वात् ?
६०. गन्धत्वाद्यव्यतिरेकाद् गन्धादीनामप्रतिषेधः ।
६१. विषयत्वाव्यतिरेकादेकत्वम् ?
६२. न; बुद्धिलक्षणाधिष्ठानगत्याकृतिजातिपञ्चत्वेभ्यः ।
६३. भूतगुणविशेषोपलब्धेस्तादात्म्यम् ।
६४. गन्धरसरूपस्पर्शशब्दानां स्पर्शपर्य्यन्ता पृथिव्याः ।
६५. अप्तेजोवायूनां पूर्वंपूर्वमपोह्याकाशस्योत्तरः । ६६. न सर्वगुणानुपलब्धेः ।
६७. एकैकश्येनोत्तरोत्तरगुणसद्भावादुत्तराणां तदनुपलब्धिः ।
६८. संसर्गाच्चानेकगुणग्रहणम् ।[2] ६९. विष्टं ह्यपरम्परेण ?
७०. न; पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षत्वात् । ७१. पूर्वंपूर्वगुणोत्कर्षात् तत्तत्प्रधानम् ।
७२. तद्व्यवस्थानन्तु भूयस्त्वात् । ७३. सगुणानामिन्द्रियभावात् ।
७४. तेनैव तस्याग्रहणाच्च । ७५. न शब्दगुणोपलब्धेः ?
७६. तदुपलब्धिरितरेतरद्रव्यगुणवैधर्म्यात् ॥

इति गौतमीयन्यायसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

---

१. सूत्रचतुष्टयमिदं न्यायसूचीनिबन्धानभिमतम् ।
१. सूत्रमिदं न्यायसूचीन्बिन्धानभितम् ।

द्वितीयमाह्निकम्

१. कर्म्माकाशसाधर्म्यात् संशयः । २. विषयप्रत्यभिज्ञानात् ।
३. साध्यसमत्वादहेतुः । ४. न युगपदग्रहणात् ।
५. अप्रत्यभिज्ञाने च विनाशप्रसङ्गः । ६. क्रमवृत्तित्वादयुगपद्ग्रहणम् ।
७. अप्रत्यभिज्ञानञ्च विषयान्तरव्यासङ्गात् । ८. न; गत्यभावात् ।
९. स्फटिकान्यत्वाभिमानवत्तदन्यत्वाभिमानः ।
१०. न हेत्वभावात्[1] ।
११. स्फटिकेऽप्यपरापरोत्पत्तेः क्षणिकत्वाद्व्यक्तीनामहेतुः ।
१२. नियमहेत्वभावाद् यथादर्शनमभ्यनुज्ञा ।
१३. नोत्पत्तिविनाशकारणोपलब्धेः ।
१४. क्षीरविनाशे कारणानुपलब्धिवद्दध्युत्पत्तिवच्च तदुपपत्तिः ।
१५. लिङ्गतो ग्रहणान्नानुपलब्धिः ।
१६. न पयसः परिणामगुणान्तरप्रादुर्भावात् ।
१७. व्यूहान्तराद् द्रव्यान्तरोत्पत्तिदर्शनं पूर्वद्रव्यनिवृत्तेरनुमानम् ।
१८. क्वचिद्विनाशकारणानुपलब्धेः क्वचिच्चोपलब्धेरनेकान्तः ।
१९. नेन्द्रियार्थयोस्तद्विनाशेऽपि ज्ञानावस्थानात्[2] ।
२०. तदात्मगुणत्वेऽपि तुल्यम् ।
२१. इन्द्रियैर्मनसः सन्निकर्षाभावात् तदनुत्पत्तिः ?
२२. न; उत्पत्तिकारणानपदेशात् ।
२३. विनाशकारणानुपलब्धेश्चावस्थाने तन्नित्यत्वप्रसङ्गः ।
२४. अनित्यत्वग्रहाद् बुद्धेर्बुद्ध्यन्तराद्विनाशः शब्दवत् ।
२५. ज्ञानसमवेतात्मप्रदेशसन्निकर्षान्मनसः स्मृत्युत्पत्तेर्न युगपदुत्पत्तिः ।
२६. न; अन्तःशरीरवृत्तित्वान्मनसः । २७. साध्यत्वादहेतुः ।

---

१. न्यायसूचीनिबन्धानभिमतमिदं सूत्रम् ।
२. इतोऽग्रे—'युगपज्ज्ञेयानुपलब्धेश्च'—इति क्वचिदधिकं सूत्रम् ।

२८. स्मरतः शरीरधारणोपपत्तेरप्रतिषेधः ।

२९. न तदाशुगतित्वान्मनसः ? ३०. न; स्मरणकालानियमात् ।

३१. आत्मप्रेरणयदृच्छाज्ञताभिश्च न संयोगविशेषः ।

३२. व्यासक्तमनसः पादव्यथनेन संयोगविशेषेण समानम् ।

३३. प्रणिधानलिङ्गादिज्ञानानामयुगपद्भावादयुगपदस्मरणम् ।

३४. प्रातिभवत्तु प्रणिधानाद्यनपेक्षे स्मार्त्ते यौगपद्यप्रसङ्गः[1] ।

३५. ज्ञस्येच्छाद्वेषनिमित्तत्वादारम्भनिवृत्त्योः ।

३६. तल्लिङ्गत्वादिच्छाद्वेषयोः पार्थिवाद्येष्वप्रतिषेधः ।

३७. परश्वादिष्वारम्भनिवृत्तिदर्शनात् ।

३८. कुम्भादिष्वनुपलब्धेरहेतुः[1] । ३९. नियमानियमौ तु तद्विशेषकौ ।

४०. यथोक्तहेतुत्वात् पारतन्त्र्यादकृताभ्यागमाच्च न मनसः ।

४१. परिशेषाद्यथोक्तहेतूपपत्तेश्च । ४२. स्मरणं त्वात्मनो ज्ञस्वाभाव्यात् ।

४३. प्रणिधाननिबन्धाभ्यासलिङ्गलक्षणसादृश्यपरिग्रहाश्रयाश्रितसम्बन्धानन्तर्य-वियोगैककार्य्यविरोधातिशयप्राप्तिव्यवधानसुखदुःखेच्छाद्वेषभयार्थित्वक्रिया-रागधर्म्माधर्मनिमित्तेभ्यः । ४४. कर्म्मानवस्थायिग्रहणात् ।

४५. बुद्ध्यवस्थानात् प्रत्यक्षत्वे स्मृत्यभावः[1] ।

४६. अव्यक्तग्रहणमनवस्थायित्वात् विद्युत्सम्पाते रूपाद्यव्यक्तग्रहणवत् ।

४७. हेतूपादानात् प्रतिषेद्धव्याभ्यनुज्ञा ।

४८. प्रदीपार्च्चिःसन्तत्यभिव्यक्तग्रहणवत् तद्ग्रहणम् ।

४९. द्रव्ये स्वगुणपरगुणोपलब्धेः संशयः ।

५०. यावच्छरीरभावित्वाद्रूपादीनाम् । ५१. न; पाकगुणान्तरोत्पत्तेः ।

५२. प्रतिद्वन्द्विसिद्धेः पाकजानामप्रतिषेधः ।

५३. शरीरव्यापित्वात् । ५४. न; केशनखादिष्वनुपलब्धेः ?

५५. त्वक्पर्य्यन्तत्वाच्छरीरस्य केशनखादिष्वप्रसङ्गः ।

५६. शरीरगुणवैधर्म्यात् । ५७. न; रूपादीनामितरेतरवैधर्म्यात् ।

---

१. न्या० सू० नि० न परिगणितमिदम् ।

५८. ऐन्द्रियकत्वाद्रूपादीनामप्रतिषेधः । ५९. ज्ञानायौगपद्यादेकं मनः ।
६०. न; युगपदनेकक्रियोपलब्धेः ?
६१. अलातचक्रदर्शनवत्तदुपलब्धिराशुसञ्चारात् ।
६२. यथोक्तहेतुत्वाच्चाणु । ६३. पूर्वंकृतफलानुबन्धात्तदुत्पत्तिः ।
६४. भूतेभ्यो मूर्त्युपादानवत् तदुपादानम् ? ६५. न; साध्यसमत्वात् ।
६६. न; उत्पत्तिनिमित्तत्वान्मातापित्रोः ।
६७. तथाहारस्य । ६८. प्राप्तौ चानियमात् ।
६९. शरीरोत्पत्तिनिमित्तवत् संयोगोत्पत्तिनिमित्तं कर्म ।
७०. एतेनानियमः प्रयुक्तः । ७१. उपपन्नश्च तद्वियोगः कर्म्मक्षयोपपत्तेः[1] ।
७२. तददृष्टकारितमिति चेत् पुनस्तत्प्रसङ्गोऽपवर्गे ।
७३. न करणाकरणयोरारम्भदर्शनात्[1] ।
७४. मनःकर्म्मनिमित्तत्वाच्च संयोगानुच्छेदः ।
७५. नित्यत्वप्रसङ्गश्च प्रायेणानुपपत्तेः ।
७६. अणुश्यामतानित्यत्ववदेतत् स्यात् ? ७७. न; अकृताभ्यागमप्रसङ्गात् ॥
इति गौतमीयसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, तृतीयोऽध्यायश्च ॥

•

अथ चतुर्थोऽध्यायः

प्रथममाह्निकम्

१. प्रवृत्तिर्यथोक्ता । २. तथा दोषाः ।
३. तत्त्रैराश्यं रागद्वेषमोहार्थान्तरभावात् ।
४. न; एकप्रत्यनीकभावात् । ५. व्यभिचारादहेतुः ।
६. तेषां मोहः पापीयान्नामूढस्येतरोत्पत्तेः ।
७. निमित्तनैमित्तिकभावादर्थान्तरभावो दोषेभ्यः ।
८. न दोषलक्षणावरोधान्मोहस्य ।

---

१. वाचस्पत्यनभिमतमिददं सूत्रत्वेन ।

९. निमित्तनैमित्तिकोपपत्तेश्च तुल्यजातीयानामप्रतिषेधः ।
१०. आत्मनित्यत्वे प्रेत्यभावसिद्धिः ।
११. व्यक्ताद्व्यक्तानां प्रत्यक्षप्रामाण्यात् । १२. न; घटाद् घटानिष्पत्तेः ।
१३. व्यक्ताद् घटनिष्पत्तेरप्रतिषेधः ।
१४. अभावाद्भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्य प्रादुर्भावात् । १५. व्याघातादप्रयोगः ।
१६. न; अतीतानागतयोः कारकशब्दप्रयोगात् ?
१७. न विनष्टेभ्योऽनिष्पत्तेः । १८. क्रमनिर्देशादप्रतिषेधः ।
१९. ईश्वरः कारणं पुरुषकर्म्माफल्यदर्शनात् ।
२०. न पुरुषकर्म्माभावे फलानिष्पत्तेः । २१. तत्कारितत्वादहेतुः ।
२२. अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्ण्यादिदर्शनात् ।
२३. अनिमित्तनिमित्तत्वान्नानिमित्ततः ।
२४. निमित्तानिमित्तयोरर्थान्तरभावादप्रतिषेधः ।
२५. सर्वमनित्यमुत्पत्तिविनाशधर्मकत्वात् । २६. न; अनित्यतानित्यत्वात् ।
२७. तदनित्यत्वमग्नेर्दाह्यं विनाश्यानुविनाशवत् ।
२८. नित्यस्याप्रत्याख्यानं यथोपलब्धिव्यवस्थानात् ।
२९. सर्वं नित्यं पञ्चभूतनित्यत्वात् ? ३०. न; उत्पत्तिविनाशकारणोपलब्धेः ।
३१. तल्लक्षणावरोधादप्रतिषेधः ? ३२. न; उत्पत्तितत्कारणोपलब्धेः ।
३३. न व्यवस्थानुपपत्तेः । ३४. सर्वं पृथक्, भावलक्षणपृथत्वात् ।
३५. न; अनेकलक्षणैरेकभावनिष्पत्तेः । ३६. लक्षणव्यवस्थानादेवाप्रतिषेधः ।
३७. सर्वमभावो भावेष्वितरेतराभावसिद्धेः । ३८. न; स्वभावसिद्धेर्भावानाम् ।
३९. न स्वभावसिद्धिरापेक्षिकत्वात् ? ४२. व्याहतत्वादयुक्तम् ।
४१. संख्यैकान्तासिद्धिः कारणानुपपत्त्युपपत्तिभ्याम् ।
४२. न कारणावयवभावात् ? ४३. निरवयवत्वादहेतुः ।
४४. सद्यः कालान्तरे च फलनिष्पत्तेः संशयः ।
४५. [1]न सद्यः कालान्तरोपभोग्यत्वात् ।

१. सूत्रमिदं न्यायसूचीनिबन्धे नास्ति, परं वार्तिककृता तथा व्याख्यातम् ।

४६. कालान्तरेणानिष्पत्तिर्हेतुविनाशात् ।

४७. प्राङ्निष्पत्तेर्वृक्षफलवत्तत् स्यात् ।

४८. नासन्न सन्न सदसत्; सदसतोर्वैधर्म्यात् ?

४९. उत्पादव्ययदर्शनात् । ५०. बुद्धिसिद्धन्तु तदसत् ।

५१. आश्रयव्यतिरेकाद् वृक्षफलोत्पत्तिवदित्यहेतुः ।

५२. प्रीतेरात्माश्रयत्वादप्रतिषेधः ।

५३. न पुत्रपशुस्त्रीपरिच्छेदहिरण्यान्नादिफलनिर्देशात् ।

५४. तत्सम्बन्धात् फलनिष्पत्तेस्तेषु फलवदुपचारः ।

५५. विविधबाधनायोगाद् दुःखमेव जन्मोत्पत्तिः ।

५६. न; सुखस्याप्यन्तरालनिष्पत्तेः ।

५७. बाधनाऽनिवृत्तेर्वेदयतः पर्येषणदोषादप्रतिषेधः ।

५८. दुःखविकल्पे सुखाभिमानाच्च ।

५९. ऋणक्लेशप्रवृत्त्यनुबन्धादपवर्गाभावः ।

६०. प्रधानशब्दानुपपत्तेर्गुणशब्देनानुवादो निन्दाप्रशंसोपपत्तेः ।

६१. अधिकाराच्च विधानं विद्यान्तरवत्[1] ।

६२. समारोपणादात्मन्यप्रतिषेधः ।

६३. पात्रचयान्तानुपपत्तेश्च फलाभावः ।

६४. सुषुप्तस्य स्वप्नादर्शने क्लेशाभावादपवर्गः ।

६५. न प्रवृत्तिः प्रतिसन्धानाय हीनक्लेशस्य ।

६६. न क्लेशसन्ततेः स्वाभाविकत्वात् ।

६७. प्रागुत्पत्तेरभावानित्यत्ववत् स्वाभाविकेऽप्यनित्यत्वम् ।

६८. अणुश्यामताऽनित्यत्ववद्वा । ६९. न सङ्कल्पनिमित्तत्वाच्च रागादीनाम् ॥

इति गौतमीयसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

---

१. नेदं सूत्रं न्या० सू० निबन्धे ।

द्वितीयमाह्निकम्

१. दोषनिमित्तानां तत्त्वज्ञानादहङ्कारनिवृत्तिः ।

२. दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः सङ्कल्पकृताः ।

३. तन्निमित्तस्त्ववयव्यभिमानः ।

४. विद्याऽविद्याद्वैविध्यात् संशयः ।

५. तदसंशयः पूर्वहेतुप्रसिद्धत्वात् ।

६. वृत्त्यनुपपत्तेरपि तर्हि न संशयः ।

७. कृत्स्नैकदेशावृत्तित्वादवयवानामवयव्यभावः ।

८. तेषु चावृत्तेरवयव्यभावः ।

९. पृथक् चावयवेभ्योऽवृत्तेः ।

१०. न चावयव्यवयवाः ।

११. एकस्मिन् भेदाभावाद् भेदशब्दप्रयोगानुपपत्तेरप्रश्नः ।

१२. अवयवान्तरभावेऽप्यवृत्तेरहेतुः ।

१३. केशसमूहे तैमिरिकोपलब्धिवत्तदुपलब्धिः ।

१४. स्वविषयानतिक्रमेणेन्द्रियस्य पटुमन्दभावाद् विषयग्रहणस्य तथाभावो नाविषये प्रवृत्तिः ।

१५. अवयवावयविप्रसङ्गश्चैवमा प्रलयात् ।

१६. न प्रलयोऽणुसद्भावात् ।

१७. परं वा त्रुटेः ।

१८. आकाशव्यतिभेदात् तदनुपपत्तिः ।

१९. आकाशासर्वगतत्वं वा ।

२०. अन्तर्बहिश्च कार्य्यद्रव्यस्य कारणान्तरवचनादकार्य्ये तदभावः ।

२१. शब्दसंयोगविभवाच्च सर्वगतम् ।

२२. अव्यूहाविष्टम्भविभुत्वानि चाकाशधर्माः ।

२३. मूर्त्तिमताञ्च संस्थानोपपत्तेरवयवसद्भावः ।

२४. संयोगोपपत्तेश्च ।

२५. अनवस्थाकारित्वादनवस्थानुपपत्तेश्चाप्रतिषेधः ।

२६. बुद्ध्या विवेचनात्तु भावानां याथात्म्यानुपलब्धिस्तन्त्वपकर्षणे पटसद्भावानुपलब्धिवत् तदनुपलब्धिः ।

२७. व्याहतत्वादहेतुः ।

२८. तदाश्रयत्वादपृथग्ग्रहणम् ।

२९. प्रमाणतश्चार्थप्रतिपत्तेः ।

३०. प्रमाणानुपपत्त्युपपत्तिभ्याम् ।

३१. स्वप्नविषयाभिमानवदयं प्रमाणप्रमेयाभिमानः ?

३२. मायागन्धर्वनगरमृगतृष्णिकावद्वा ?

३३. हेत्वभावादसिद्धिः ।

३४. स्मृतिसङ्कल्पवच्च स्वप्नविषयाभिमानः ।

३५. मिथ्योपलब्धिविनाशस्तत्त्वज्ञानात् स्वप्नविषयाभिमानप्रणाशवत् प्रतिबोधे ।

३६. बुद्धेश्चैवं निमित्तसद्भावोपलम्भात् ।

३७. तत्त्वप्रधानभेदाच्च मिथ्याबुद्धेर्द्वैविध्योपपत्तिः ।

३८. समाधिविशेषाभ्यासात् ।

३९. नार्थविशेषप्राबल्यात् ? ४०. क्षुदादिभिः प्रवर्त्तनाच्च ?

४१ पूर्वकृतफलानुबन्धात् तदुत्पत्तिः ।

४२. अरण्यगुहापुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः ।

४३. अपवर्गेऽप्येवं प्रसङ्गः । ४४. न निष्पन्नावश्यम्भावित्वात् ।

४५. तदभावश्चापवर्गे ।

४६. तदर्थं यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्मविध्युपायैः ।

४७. ज्ञानग्रहणाभ्यासस्तद्विद्यैश्च सह संवादः ।

४८. तं शिष्यगुरुसब्रह्मचारिविशिष्टश्रेयोऽर्थिभिरनसूयिभिरभ्युपेयात् ।

४९ प्रतिपक्षहीनमपि वा प्रयोजनार्थमर्थित्वे ।

५०. तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं जल्पवितण्डे बीजप्ररोहसंरक्षणार्थं कण्टकशाखावरणवत् । ५१. ताभ्यां विगृह्य कथनम् ॥

इति गौतमीयसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, चतुर्थोऽध्यायश्च ॥

●

अथ पञ्चमोऽध्यायः

प्रथममाह्निकम्

१. साधर्म्यवैधर्म्योत्कर्षापकर्षवर्ण्यावर्ण्यविकल्पसाध्यप्राप्त्यप्राप्तिप्रसङ्गप्रतिदृष्टान्तानुत्पत्तिसंशयप्रकरणहेत्वर्थापत्त्यविशेषोपपत्त्युपलब्ध्यनुपलब्धिनित्यानित्यकार्य्यसमाः ।

२. साधर्म्यवैधर्म्याभ्यामुपसंहारे तद्धर्मविपर्य्ययोपपत्तेः साधर्म्यवैधर्म्यसमौ ।

३. गोत्वाद् गोसिद्धिवत् तत्सिद्धिः ।

४. साध्य-दृष्टान्तयोर्धर्म्मविकल्पादुभयसाध्यत्वाच्चोत्कर्षापकर्षवर्ण्यावर्ण्य-विकल्पसाध्यसमाः ।

५. किञ्चित्साधर्म्यादुपसंहारसिद्धेर्वैधर्म्यादप्रतिषेधः ।

६. साध्यातिदेशाच्च दृष्टान्तोपपत्तेः ।

७. प्राप्य साध्यमप्राप्य वा हेतोः प्राप्त्या अविशिष्टत्वादप्राप्त्या असाधकत्वाच्च प्राप्त्यप्राप्तिसमौ ।

८. घटादिनिष्पत्तिदर्शनात् पीड़ने चाभिचारादप्रतिषेधः ।

९. दृष्टान्तस्य कारणानपदेशात् प्रत्यवस्थानाच्च प्रतिदृष्टान्तेन प्रसङ्ग-प्रतिदृष्टान्तसमौ । १०. प्रदीपोपादानप्रसङ्गनिवृत्तिवत्तद्विनिवृत्तिः ।

११. प्रतिदृष्टान्तहेतुत्वे च नाहेतुर्दृष्टान्तः ।

१२. प्रागुत्पत्तेः कारणाभावादनुत्पत्तिसमः ।

१३. तथाभावादुत्पन्नस्य कारणोपपत्तेर्न कारणप्रतिषेधः ।

१४. सामान्यदृष्टान्तयोरैन्द्रियकत्वे[1] समाने नित्यानित्यसाधर्म्यात् संशयसमः ।

१५. साधर्म्यात् संशये न संशयो वैधर्म्यादुभयथा वा संशयोऽत्यन्तसंशय-प्रसङ्गो नित्यत्वानभ्युपगमाच्च सामान्यस्याप्रतिषेधः ।

१६. उभयसाधर्म्यात् प्रक्रियासिद्धेः प्रकरणसमः ।

१७. प्रतिपक्षात् प्रकरणसिद्धेः प्रतिषेधानुपपत्तिः प्रतिपक्षोपपत्तेः ।

१८. त्रैकाल्यासिद्धेर्हेतोरहेतुसमः ।

१९. न हेतुतः साध्यसिद्धेस्त्रैकाल्यासिद्धिः ।

२०. प्रतिषेधानुपपत्तेश्च प्रतिषेध्याप्रतिषेधः ।

२१. अर्थापत्तितः प्रतिपक्षसिद्धेरर्थापत्तिसमः ।

२२. अनुक्तस्यार्थापत्तेः पक्षहानेरुपपत्तिरनुक्तत्वादनैकान्तिकत्वाच्चार्थापत्तेः ।

२३. एकधर्मोपपत्तेरविशेषे सर्वाविशेषप्रसङ्गात् सद्भावोपपत्तेरविशेषसमः ।

२४. क्वचिद्धर्म्मानुपपत्तेः क्वचिच्चोपपत्तेः प्रतिषेधाभावः ।

२५. उभयकारणोपपत्तेरुपपत्तिसमः ।

---

१. ०रैन्द्रियकत्वेन—इति मुद्रितः पाठः ।

२६. उपपत्तिकारणाभ्यनुज्ञानादप्रतिषेधः ।

२७. निर्दिष्टकारणाभावेऽप्युपलम्भादुपलब्धिसमः ।

२८. कारणान्तरादपि तद्धर्म्मोपपत्तेरप्रतिषेधः ।

२९. तदनुपलब्धेरनुपलम्भादभावसिद्धौ तद्विपरीतोपपत्तेरनुपलब्धिसमः ।

३०. अनुपलम्भात्मकत्वादनुपलब्धेरहेतुः ।

३१. ज्ञानविकल्पानाञ्च भावाभावसंवेदनादध्यात्मम् ।

३२. साधर्म्यात् तुल्यधर्म्मोपपत्तेः सर्वानित्यत्वप्रसङ्गादनित्यसमः ।

३३. साधर्म्यादसिद्धेः प्रतिषेधासिद्धिः प्रतिषेध्यसाधर्म्याच्च ।

३४. दृष्टान्ते च साध्यसाधनभावेन प्रज्ञातस्य धर्मस्य हेतुत्वात्तस्य चोभयथाभावाविशेषः ।

३५. नित्यमनित्यभावादनित्ये नित्यत्वोपपत्तेर्नित्यसमः ।

३६. प्रतिषेध्ये नित्यमनित्यभावादनित्येऽनित्यत्वपत्तेः प्रतिषेधाभावः ।

३७. प्रयत्नकार्य्यानेकत्वात् कार्य्यसमः ।

३८. कार्यान्यत्वे प्रयत्नाहेतुत्वमनुपलब्धिकारणोपपत्तेः ।

३९. प्रतिषेधेऽपि समानो दोषः । ४०. सर्वत्रैवम् ।

४१. प्रतिषेधविप्रतिषेधे प्रतिषेधदोषवद्दोषः ।

४२. प्रतिषेधं सदोषमभ्युपेत्य प्रतिषेधविप्रतिषेधे समानो दोषप्रसङ्गो मतानुज्ञा ।

४३. स्वपक्षलक्षणापेक्षोपपत्त्युपसंहारे हेतुनिर्देशे परपक्षदोषाभ्युपगमात् समानो दोष इति ॥

इति गौतमीयन्यायसूत्रपाठे पञ्चमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. प्रतिज्ञाहानिः प्रतिज्ञान्तरं प्रतिज्ञाविरोधः प्रतिज्ञासंन्यासो हेत्वन्तरमर्थान्तरं निरर्थकमविज्ञातार्थमपार्थकमप्राप्तकालं न्यूनमधिकं पुनरुक्तमननुभाषणमज्ञानमप्रतिभा विक्षेपो मतानुज्ञा पर्य्यनुयोज्योपेक्षणं निरनुयोज्यानुयोगोऽपसिद्धान्तो हेत्वाभासाश्च निग्रहस्थानानि ।

२. प्रतिदृष्टान्तधर्माभ्यनुज्ञा स्वदृष्टान्ते प्रतिज्ञाहानिः ।
३. प्रतिज्ञातार्थप्रतिषेधे धर्मविकल्पात्तदर्थनिर्देशः प्रतिज्ञान्तरम् ।
४. प्रतिज्ञाहेत्वोर्विरोधः प्रतिज्ञाविरोधः ।
५. पक्षप्रतिषेधे प्रतिज्ञातार्थापनयनं प्रतिज्ञासंन्यासः ।
६. अविशेषोक्ते हेतौ प्रतिषिद्धे विशेषमिच्छतो हेत्वन्तरम् ।
७. प्रकृतादर्थादप्रतिसम्बद्धार्थमर्थान्तरम् । ८. वर्णक्रमनिर्देशवन्निरर्थकम् ।
९. परिषत्प्रतिवादिभ्यां त्रिरभिहितमप्यविज्ञातमविज्ञातार्थम् ।
१०. पौर्वापर्यायोगादप्रतिसम्बद्धार्थमपार्थकम् ।
११. अवयवविपर्यासवचनमप्राप्तकालम् ।
१२. हीनमन्यतमेनाप्यवयवेन न्यूनम् । १३. हेतूदाहरणाधिकमधिकम् ।
१४. शब्दार्थयोः पुनर्वचनं पुनरुक्तमन्यत्रानुवादात् ।
१५. अनुवादे त्वपुनरुक्तं शब्दाभ्यासादर्थविशेषोपपत्तेः[1] ।
१६. अर्थादापन्नस्य स्वशब्देन पुनर्वचनम् ।
१७. विज्ञातस्य परिषदा त्रिरभिहितस्याप्यनुच्चारणमननुभाषणम् ।
१८. अविज्ञातञ्चाज्ञानम् । १९. उत्तरस्याप्रतिपत्तिरप्रतिभा ।
२०. कार्य्यव्यासङ्गात् कथाविच्छेदो विक्षेपः ।
२१. स्वपक्षदोषाभ्युपगमात् परपक्षदोषप्रसङ्गो मतानुज्ञा ।
२२. निग्रहस्थानप्राप्तस्यानिग्रहः पर्य्यनुयोज्योपेक्षणम् ।
२३. अनिग्रहस्थाने निग्रहस्थानाभियोगो निरनुयोज्यानुयोगः ।
२४. सिद्धान्तमभ्युपेत्यानियमात् कथाप्रसङ्गोऽपसिद्धान्तः ।
२५. हेत्वाभासाश्च यथोक्ताः ॥

इति गौतमीयसूत्रपाठे पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, पञ्चमोऽध्यायश्च ॥

समाप्तं चेदं न्यायदर्शनम् ॥

●

---

१. सूत्रमिदं न्या० सू० निबन्धे नास्ति ।

काणादसूत्रपाठः

(वैशेषिकदर्शनम्)

—:०:—

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रथममाह्निकम्

१. अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः । २. यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ।

३. तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् ।

४. धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्य-वैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्[1] ।

५. पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ।

६. रूपरसगन्धस्पर्शाः सङ्ख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापर-त्वे बुद्धयः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः ।

७. उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि ।

८. सदनित्यं द्रव्यवत् कार्यं कारणं सामान्यविशेषमिति द्रव्यगुणकर्मणामविशेषः ।

९. द्रव्यगुणयोः सजातीयारम्भकत्वं साधर्म्यम्[1] ।

१०. [2]द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्ते, गुणाश्च गुणान्तरम् ।

११. कर्म कर्मसाध्यं न विद्यते । १२. न द्रव्यं कार्यं कारणं च भवति ।

१३. उभयथा गुणाः । १४. कार्यविरोधि कर्म[3] ।

१५. क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम् ।

१६. द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम् ।

---

१. क्वचिदिदं सूत्रं न पठितम् । २. क्वचित्सूत्रद्वयमिदम् ।

३. कार्याविरोधि द्रव्यं कारणविरोधि च-इति पाठः क्वचित् ।

१७. एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम् ।
१८. द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यं कारणं सामान्यम् । १९. तथा गुणः ।
२०. संयोगविभागवेगानां कर्म समानम् ।
२१. न द्रव्याणां कर्म । २२. व्यतिरेकात् ।
२३. द्रव्याणां द्रव्यं कार्यं सामान्यम् । २४. गुणवैधर्म्यान्न कर्मणां कर्म ।
२५. द्वित्वप्रभृतयः संख्याः पृथक्त्वसंयोगविभागाश्च ।
२६. असमवायात् सामान्यकार्यं कर्म न विद्यते ।
२७. संयोगानां द्रव्यम् । २८. रूपाणां रूपम् ।
२९. गुरुत्वप्रयत्नसंयोगानामुत्क्षेपणम् । ३०. संयोगविभागाश्च कर्मणाम् ।
३१. कारणसामान्ये द्रव्यकर्मणां कर्माकारणमुक्तम् ॥

इति काणादसूत्रपाठे प्रथमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ।

द्वितीयमाह्निकम्

१. कारणाभावात् कार्य्याभावः । २. न तु कार्य्याभावात् कारणाभावः ।
३. सामान्यं विशेष इति बुद्ध्यपेक्षम् ।
४. भावोऽनुवृत्तेरेव हेतुत्वात् सामान्यमेव ।
५. द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वं च सामान्यानि विशेषाश्च ।
६. अन्यत्रान्त्येभ्यो विशेषेभ्यः । ७. सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता[1] ।
८. द्रव्यगुणकर्मभ्योऽर्थान्तरं सत्ता । ९. गुणकर्मसु च भावान्न कर्म न गुणः ।
१०. सामान्यविशेषाभावेन च । ११. अनेकद्रव्यवत्त्वेन द्रव्यत्वमुक्तम्[2] ।
१२. सामान्यविशेषाभावेन च । १३. तथागुणेषु भावाद् गुणत्वमुक्तम् ।
१४. सामान्यविशेषाभावेन च ।
१५. कर्मसु भावात् कर्मत्वमुक्तम् । १६. सामान्यविशेषाभावेन च ।
१७. सदिति लिङ्गाविशेषाद् विशेषलिङ्गाभावाच्चैको भावः ॥

इति काणादसूत्रपाठे प्रथमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, प्रथमोऽध्यायश्च ॥

---

१. इतोऽग्रे—"एकद्रव्यवत्त्वान्न द्रव्यम्"—इत्यपि सूत्रम् ।
२. 'एकद्रव्य०' इति पाठः क्वचित् ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्रथममाह्निकम्

१. रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी । २. रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः ।

३. तेजो रूपस्पर्शवत् । ४. स्पर्शवान् वायुः ।

५. त आकाशे न विद्यन्ते ।

६. सर्पिर्जतुमधूच्छिष्टानामग्निसंयोगाद् द्रवत्वमद्भिः सामान्यम् ।

७. त्रपुसीसलोहरजतसुवर्णानामग्निसंयोगाद् द्रवत्वमद्भिः सामान्यम् ।

८. विषाणी ककुद्मान् प्रान्ते वालधिः सास्नावान् इति गोत्वे दृष्टं लिङ्गम् ।

९. स्पर्शश्च वायोः । १०. न च दृष्टानां स्पर्श इत्यदृष्टलिङ्गो वायुः ।

११. अद्रव्यवत्त्वेन द्रव्यम् । १२. क्रियावत्त्वाद् गुणवत्त्वाच्च ।

१३. अद्रव्यत्वेन नित्यत्वमुक्तम् ।

१४. वायोर्वायुसंमूर्च्छनं नानात्वलिङ्गम् ।

१५. वायुसन्निकर्षे प्रत्यक्षाभावाद् दृष्टं लिङ्गं न विद्यते ।

१६. सामान्यतो दृष्टाच्चाविशेषः । १७. तस्मादागमिकम् ।

१८. संज्ञाकर्म त्वस्मद्विशिष्टानां लिङ्गम् । १९. प्रत्यक्षप्रवृत्तत्वात् संज्ञाकर्मणः ।

२०. निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम् ।

२१. तदलिङ्गमेकद्रव्यत्वात् कर्मणः । २२. कारणान्तरानुक्लृप्तिवैधर्म्याच्च ।

२३. संयोगादभावः कर्मणः । २४. कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः ।

२५. कार्यान्तराप्रादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्शवतामगुणः ।

२६. परत्र समवायात् प्रत्यक्षत्वाच्च नात्मगुणो न मनोगुणः ।

२७. परिशेषाल्लिङ्गमाकाशस्य[1] ।

२८. द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते । २९. तत्त्वम्भावेन ।

३०. शब्दलिङ्गाविशेषाद् विशेषलिङ्गाभावाच्च[2] ।

३१. तदनुविधानादेकपृथक्त्वं चेति[2] ।

इति काणादसूत्रपाठे द्वितीयाऽध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

---

१. परिशेषादिति क्वचिन्नास्ति । २. एतत् सूत्रद्वयं क्वचिन्नास्ति ।

द्वितीयमाह्निकम्

१. पुष्पवस्त्रयोः सति सन्निकर्षे गुणान्तराप्रादुर्भावो वस्त्रे गन्धाभावलिङ्गम्।

२. व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः। ३. एतेनोष्णता व्याख्याता।

४. तेजस उष्णता। ५. अप्सु शीतता।

६. अपरस्मिन्नपरं युगपत् चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि।

७. द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते। ८. तत्त्वम्भावेन।

९. नित्येष्वभावादनित्येषु भावात् कारणे कालाख्येति।

१०. इत इदमिति यतस्तद्दिशां लिङ्गम्।

११. द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते।

१२. तत्त्वम्भावेन। १३. कार्य्यविशेषेण नानात्वम्।

१४. आदित्यसंयोगाद् भूतपूर्वाद्भविष्यतो भूताच्च प्राची।

१५. तथा दक्षिणा प्रतीची उदीची च।

१६. एतेन दिगन्तरालानि व्याख्यातानि।

१७. सामान्यप्रत्यक्षाद्विशेषस्मृतेश्च संशयः। १८. दृष्टश्च दृष्टवत्।

१९. दृष्टं यथादृष्टमयथादृष्टमुभयथादृष्टत्वाच्च।

२०. विद्याऽविद्यातश्च संशयः। २१. श्रोत्रग्रहणो योऽर्थः स शब्दः।

२२. [1]तुल्यजातीयेष्वर्थान्तरभूतेषु विशेषस्य उभयथा दृष्टत्वात्।

२३. एकद्रव्यत्वान्न द्रव्यम्। २४. नापि कर्माऽचाक्षुषत्वात्।

२५. गुणस्य सतोऽपवर्गः कर्मभिः साधर्म्यम्।

२६. सतो लिङ्गाभावात्। २७. नित्यवैधर्म्यात्।

२८. अनित्यश्चायं कारणतः।

२९. न चासिद्धं विकारात्। ३०. अभिव्यक्तौ दोषात्।

३१. कार्यत्वात्[2]। ३२. अभावात्[2]।

३३. संयोगाद्विभागाच्च शब्दाच्च शब्दनिष्पत्तिः।

---

१. "तस्मिन् द्रव्यं कर्मगुण इति संशयः" इति क्वचिदधिकं सूत्रम्।

२. क्वचित् सूत्रद्वयमिदं नास्ति।

३४. लिङ्गाच्चानित्यः शब्दः । ३५. द्वयोस्तु प्रवृत्त्योरभावात् ।
३६. संख्याभावात् । ३७. प्रथमाशब्दात् ।
३८. सम्प्रतिपत्तिभावाच्च । ३९. सन्दिग्धाः सति बहुत्वे ।
४०. संख्याभावः सामान्यतः ।।

इति काणादसूत्रपाठे द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, द्वितीयाध्यायश्च ।।

अथ तृतीयोऽध्यायः

प्रथममाह्निकम्

१. प्रसिद्धा इन्द्रियार्थाः । २. प्रसिद्धिरिन्द्रियार्थेभ्योऽर्थान्तरस्य हेतुः ।
३. सोऽनपदेशः । ४. कारणाज्ञानात् ।
५. कार्येषु ज्ञानात् । ६. अज्ञानाच्च ।
७. अन्यदेव हेतुरित्यनपदेशः । ८. अर्थान्तरं ह्यर्थान्तरस्यानपदेशः ।
९. संयोगि समवाय्येकार्थसमवायि विरोधि च ।
१०. कार्यं कार्यान्तरस्य । ११. विरोध्यभूतं भूतस्य ।
१२. भूतमभूतस्य । १३. भूतो भूतस्य ।
१४. प्रसिद्धिपूर्वकत्वादपदेशस्य ।
१५. अप्रसिद्धोऽनपदेशोऽसन् सन्दिग्धश्चानपदेशः ।
१६. यस्माद्विषाणी तस्मादश्वः ।
१७. यस्माद्विषाणी तस्माद् गौरिति चानैकान्तिकस्योदाहरणम् ।
१८. आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षाद् यन्निष्पद्यते तदन्यत् ।
१९. प्रवृत्तिनिवृत्ती च प्रत्यगात्मनि दृष्टे परत्र लिङ्गम् ।।

इति काणादसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ।।

द्वितीयमाह्निकम्

१. आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षेज्ञानस्य भावोऽभावश्च मनसो लिङ्गम् ।
२. तस्य द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ।
३. प्रयत्नायौगपद्याज्ज्ञानायोगपद्याच्चैकम् ।

४. प्राणाऽपाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ।
५. तस्य द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ।
६. यज्ञदत्त इति सन्निकर्षे प्रत्यक्षाभावाद् दृष्टं लिङ्गं न विद्यते ।
७. सामान्यतो दृष्टाच्चाविशेषः । ८. तस्मादागमिकः ।
९. अहमिति शब्दस्य व्यतिरेकान्नागमिकम् ।
१०. यदि दृष्टमन्वक्षमहं देवदत्तोऽहं यज्ञदत्त इति ।
११. दृष्टचात्मनि लिङ्गे एक एव दृढत्वात् प्रत्यक्षवत् प्रत्ययः ।
१२. देवदत्तो गच्छति यज्ञदत्तो गच्छतीत्युपचाराच्छरीरे प्रत्ययः ।
१३. सन्दिग्धस्तूपचारः ।
१४. अहमिति प्रत्यगात्मनि भावात् परत्राभावादर्थान्तरप्रत्यक्षः ।
१५. देवदत्तो गच्छतीत्युपचारादभिमानात्तावच्छरीरप्रत्यक्षोऽहङ्कारः ।
१६. सन्दिग्धस्तूपचारः ।
१७. न तु शरीरविशेषाद् यज्ञदत्तविष्णुमित्रयोर्ज्ञानं विषयः ।
१८. अहमिति मुख्ययोग्याभ्यां शब्दवद्व्यतिरेकाव्यभिचाराद् विशेषसिद्धेर्नागमिकः । १९. सुखदुःखज्ञाननिष्पत्त्यविशेषादैकात्म्यम् ।
२०. व्यवस्थातो नाना । २१. शास्त्रसामर्थ्याच्च ॥

इति काणादसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, तृतीयोऽध्यायश्च ॥

●

अथ चतुर्थोऽध्यायः

प्रथममाह्निकम्

१. सदकारणवन्नित्यम् । २. तस्य कार्य्यं लिङ्गम् ।
३. कारणाभावात् कार्याभावः ।
४. अनित्य इति विशेषतः प्रतिषेधभावः । ५. अविद्या ।
६. महत्यनेकद्रव्यवत्त्वात् रूपाच्चोपलब्धिः ।

७. सत्यपि द्रव्यत्वे महत्त्वे रूपसंस्काराभावाद्वायोरनुपलब्धिः[1] ।
८. अनेकद्रव्यसमवायात् रूपविशेषाच्च रूपोपलब्धिः ।
९. तेन रसगन्धस्पर्शेषु ज्ञानं व्याख्यातम् ।
१०. तस्याभावादव्यभिचारः ।
११. सङ्ख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे कर्म च रूपिद्रव्यसमवायात् चाक्षुषाणि । १२. अरूपिष्वचाक्षुषाणि ।
१३. एतेन गुणत्वे भावे च सर्वेन्द्रियं ज्ञानं व्याख्यातम् ॥

इति काणादसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. तत्पुनः पृथिव्यादिकार्यद्रव्यं त्रिविधं शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञकम् ।
२. प्रत्यक्षाऽप्रत्यक्षाणां संयोगस्याप्रत्यक्षत्वात् पञ्चात्मकं न विद्यते ।
३. गुणान्तराप्रादुर्भावाच्च न त्र्यात्मकम् । ४. अणुसंयोगस्त्वप्रतिषिद्धः ।
५. तत्र शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजं च ।
६. अनियतदिग्देशपूर्वकत्वात् । ७. धर्मविशेषाच्च ।
८. समाख्याभावाच्च । ९. संज्ञाया आदित्वात् ।
१०. सन्त्ययोनिजाः । ११. वेदलिङ्गाच्च ॥

इति काणादसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, चतुर्थाध्यायश्च ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

प्रथममाह्निकम्

१. आत्मसंयोगप्रयत्नाभ्यां हस्ते कर्म । २. तथा हस्तसंयोगाच्च मुसले कर्म ।
३. अभिघातजे मुसलादौ कर्मणि व्यतिरेकादकारणं हस्तसंयोगः ।

---

१. "अद्रव्यवत्वात् परमाणावनुपलब्धिः" इत्यादि सूत्रं क्वचिद् दृश्यते, तत्र चेदम् सूत्रं नास्ति ।

४. तथात्मसंयोगो हस्तकर्मणि । ५. अभिघातान्मुलसंयोगाद्धस्ते कर्म । ६. आत्मकर्म हस्तसंयोगाद्धस्ते कर्म । ७. सयोगाभावे गुरुत्वात् पतनम् । ८. नोदनविशेषाभावान्नोर्ध्वं न तिर्यग्गमनम् । ९. प्रयत्नविशेषान्नोदनविशेषः । १०. नोदनविशेषादुदसनविशेषः । ११. हस्तकर्मणा दारककर्म व्याख्यातम् । १२. तथा दग्धस्य विस्फोटने । १३. प्रयत्नाभावे प्रसुप्तस्य चलनम् । १४. तृणे कर्म वायुसंयोगात् । १५. मणिगमनं सूच्यभिसर्पणमदृष्टकारणम् । १६. इषावयुगपत् संयोगविशेषाः कर्मान्यत्वे हेतुः । १७. नोदनादाद्यमिषोः कर्म तत्कर्मकारिताच्च संस्कारादुत्तरं तथोत्तरमुत्तरं च । १८. संस्काराभावे गुरुत्वात् पतनम् ॥

इति काणादसूत्रपाठे पञ्चमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. नोदनाभिघातात् संयुक्तसंयोगाच्च पृथिव्यां कर्म । २. तद्विशेषेणादृष्टकारितम् । ३. अपां संयोगाभावे गुरुत्वात् पतनम् । ४. द्रवत्वात् स्यन्दनम् । ५. नाड्यो वायुसंयोगादारोहणम् । ६. नोदनापीडनात् संयोगाच्च । ७. वृक्षाभिसर्पणमित्यदृष्टकारितम् । ८. अपां संघातो विलयनं च तेजःसंयोगात् । ९. तत्र विस्फूर्जथुर्लिङ्गम् । १०. वैदिकं च । ११. अपां संयोगाद्विभागाच्च स्तनयित्नोः । १२. पृथिवीकर्मणा तेजःकर्म च व्याख्यातम् । १३. अग्नेरूर्ध्वंज्वलनं वायोस्तिर्यग्गमनमणूनां मनसश्चाद्यं कर्मादृष्टकारितम् । १४. हस्तकर्मणा मनसः कर्म व्याख्यातम् । १५. आत्मेन्द्रियमनोऽर्थसन्निकर्षात् सुखदुःखे । १६. तदनारम्भ आत्मस्थे मनसि शरीरस्य दुःखाभावः स योगः[1] । १७. अपसर्पणमुपसर्पणमशितसंयोगाः कार्यान्तरसंयोगाश्चेत्यदृष्टकारितानि । १८. तदभावे संयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्च मोक्षः ।

---

1. संयोग इति मुद्रितः पाठः ।

१९. द्रव्यगुणकर्मनिष्पत्तिवैधर्म्यादभावस्तमः ।
२०. तेजसो द्रव्यान्तरेणावरणाच्च ।
२१. दिक्कालावाकाशं च क्रियावद् वैधर्म्यान्निष्क्रियाणि ।
२२. एतेन कर्माणि गुणाश्च व्याख्याताः ।
२३. निष्क्रियाणां समवायः कर्मभ्यो निषिद्धः ।
२४. कारणं त्वसमवायिनो गुणाः ।
२५. गुणैर्दिग्व्याख्याता । २६. कारणेन कालः ॥

इति काणादसूत्रपाठे पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, पञ्चमाध्यायश्च ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

प्रथम माह्निकम्

१. बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे । २. ब्राह्मणे संज्ञाकर्म सिद्धिलिङ्गम्[1] ।
३. बुद्धिपूर्वो ददाति । ४. तथा प्रतिग्रहः ।
५. आत्मान्तरगुणानामात्मान्तरेऽकारणत्वात् ।
६. तद् दुष्टभोजने न विद्यते । ७. दुष्टं हिंसायाम् ।
८. तस्य समभिव्याहारतो दोषः । ९. तददुष्टे न विद्यते ।
१०. पुनर्विशिष्टे प्रवृत्तिः । ११. समे हीने वा प्रवृत्तिः ।
१२. एतेन हीनसमविशिष्टधार्मिकेभ्यः परस्वादानं व्याख्यातम् ।
१३. तथा विरुद्धानां त्यागः । १४. हीने परे त्यागः ।
१५. समे आत्मत्यागः परत्यागो वा । १६. विशिष्टे आत्मत्याग इति ॥

इति काणादसूत्रपाठे षष्ठाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. दृष्टानां दृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोजनमभ्युदयाय ।

१. "न चासदबुद्धिभ्यो लिङ्गमृषेः"—इत्यपि सूत्रं क्वचित् ।

२. अभिषेचनोपवासब्रह्मचर्यगुरुकुलवासवानप्रस्थयज्ञदानप्रोक्षणदिङ्नक्षत्रमन्त्रकालनियमाश्चादृष्टाय । ३. चातुराश्रम्यमुपधा अनुपधाश्च ।

४. भावदोष उपधाऽदोषोऽनुपधा ।

५. यदिष्टरूपरसगन्धस्पर्शं प्रोक्षितमभ्युक्षितं च तच्छुचि ।

६. अशुचीति शुचिप्रतिषेधः । ७. अर्थान्तरं च ।

८. अयतस्य शुचिभोजनादभ्युदयो न विद्यते नियमाभावाद् विद्यते वाऽर्थान्तरत्वात् यमस्य ।

९. असति चाभावात् । १०. सुखाद्रागः । ११. तन्मयत्वाच्च ।

१२. अदृष्टाच्च[१] । १३. जातिविशेषाच्च ।

१४. इच्छाद्वेषपूर्विका धर्माधर्मप्रवृत्तिः ।

१५. ततः संयोगो विभागश्च । १६. आत्मकर्मसु मोक्षो व्याख्यातः ।।

इति काणादसूत्रपाठे षष्ठाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, षष्ठाध्यायश्च ।।

अथ सप्तमोऽध्यायः

प्रथममाह्निकम्

१. उक्ता गुणाः ।

२. पृथिव्यादिरूपरसगन्धस्पर्शा द्रव्यानित्यत्वादनित्याश्च ।

३. अग्निसंयोगाच्च[१] । ४. गुणान्तरप्रादुर्भावात्[२] ।

५. एतेन नित्येषु अनित्यत्वमुक्तम् ।

६. अप्सु तेजसि वायौ च नित्या द्रव्यनित्यत्वात् ।

७. अनित्येष्वनित्या द्रव्यानित्यत्वात् ।

८. कारणगुणपूर्वकाः पृथिव्यां पाकजाः । ९. एकद्रव्यत्वात् ।

१०. अणोर्महतश्चोपलब्ध्यनुपलब्धी नित्ये व्याख्याते ।

११. कारणबहुत्वाच्च । १२. अतो विपरीतमणु ।

---

१. तृप्तेः— इत्यधिकं सूत्रं क्वचित् । २. सूत्रद्वय क्वचिन्नास्ति ।

१३. अणु महदिति तस्मिन् विशेषभावात् विशेषाभावाच्च ।
१४. एककालत्वात् । १५. दृष्टान्ताच्च ।
१६. अणुत्वमहत्त्वयोरणुत्वमहत्त्वाभावः कर्मगुणैर्व्याख्यातः ।
१७. कर्मभिः कर्माणि गुणैश्च गुणा व्याख्याताः ।
१८. अणुत्वमहत्त्वाभ्यां कर्मगुणाश्च व्याख्याताः ।
१९. एतेन दीर्घत्वह्रस्वत्वे व्याख्याते ।
२०. अनित्येऽनित्यम् । २१. नित्ये नित्यम् । २२. नित्यं परिमण्डलम् ।
२३. अविद्या च विद्यालिङ्गम् ।
२४. विभवान्महानाकाशस्तथा चात्मा । २५. तदभावादणु मनः ।
२६. गुणैर्दिग्व्याख्याता[1] । २७. कारणे कालः ॥

इति काणादसूत्रपाठे सप्तमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. रूपरसगन्धस्पर्शव्यतिरेकादर्थान्तरमेकत्वम् । २. तथा पृथक्त्वम् ।
३. [2] एकत्वैकपृथक्त्वयोरेकत्वैकपृथक्त्वाभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यां व्याख्यातः ।
४. निःसंख्यत्वात् कर्मगुणानां सर्वैकत्वं न विद्यते ।
५. भ्रान्तं तत् । ६. एकत्वाभावाद्भक्तिस्तु न विद्यते ।
७. कार्य्यकारणयोरेकत्वैकपृथक्त्वाभावादेकत्वैकपृथक्त्वं न विद्यते ।
८. एतदनित्ययोर्व्याख्यातम् ।
९. अन्यतरकर्मज उभयकर्मजः संयोगजश्च संयोगः ।
१०. एतेन विभागो व्याख्यातः ।
११. संयोगविभागयोः संयोगविभागाभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यां व्याख्यातः ।

---

१. "गुणलक्षणं चोक्तम् ॥ इदमेवंगुणम् इदमेवंगुणयिति चोक्तम्"—इति सूत्रद्वयमधिकं क्वचित् ।

२. "तयोर्नित्यानित्यत्वे तेजसो रूपस्पर्शाभ्यां व्याख्याते ॥ निष्पत्तिश्च ॥" इति सूत्रद्वयं क्वचिदधिकम् ।

१२. कर्मभिः कर्माणि गुणैर्गुणा अणुत्वमहत्त्वाभ्यामिति ।

१३. युतसिद्ध्यभावात् कार्य्यकारणयोः संयोगविभागौ न विद्येते ।

१४. गुणत्वात् । १५. गुणोऽपि विभाव्यते । १६. निष्क्रियत्वात् ।

१७. असति नास्तीति च प्रयोगात् । १८. शब्दार्थावसम्बन्धौ ।

१९. संयोगिनो दण्डात् समवायिनो विशेषाच्च ।[1]

२०. सामयिकः शब्दादर्थप्रत्ययः ।

२१. एकदिक्कालाभ्यामेककालाभ्यां सन्निकृष्टविप्रकृष्टाभ्यां परमपरं ज ।

२२. कारणपरत्वात् कारणापरत्वाच्च ।

२३. परत्वापरत्वयोः परत्वापरत्वाभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यां व्याख्यातः ।

२४. कर्मभिः कर्माणि । २५. गुणैर्गुणाः ।

२६. इहेदमिति यतः कार्य्यकारणयोः स समवायः ।

२७. द्रव्यत्वगुणत्वप्रतिषेधो भावेन व्याख्यातः । २८. तत्त्वमभावेन ॥

इति काणादसूत्रपाठे सप्तमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, सप्तमाध्यायश्च ॥

•

अथाष्टमोऽध्यायः

प्रथममाह्निकम्

१. द्रव्येषु ज्ञानं व्याख्यातम् । २. तत्रात्मा मनश्चाप्रत्यक्षे ।

३. ज्ञाननिर्देशे ज्ञाननिष्पत्तिविधिरुक्तः ।

४. गुणकर्मसु सन्निकृष्टेषु ज्ञाननिष्पत्तेर्द्रव्यं कारणम् ।

५. सामान्यविशेषेषु सामान्यविशेषाभावात्तदेव ज्ञानम् ।

६. सामान्यविशेषापेक्षं द्रव्यगुणकर्मसु ।

७. द्रव्ये द्रव्यगुणकर्मापेक्षम् ।

---

१. "दृष्टत्वादहेतुः प्रत्ययः ॥ तथा प्रत्ययाभावः ॥ सम्बद्धसम्बन्धादिति चेत् सन्देहः" ॥ इति सूत्रत्रयमधिकं क्वचित् ।

८. गुणकर्मसु गुणकर्माभावाद् गुणकर्मापेक्षं न विद्यते ।

९. समवायिनः श्वैत्याच्छ्वैत्यबुद्धेश्च श्वेते बुद्धिस्ते एते कार्यकारणभूते ।

१०. द्रव्येष्वनितरेतरकारणाः ।

११. कारणायौगपद्यात् कारणक्रमाच्च घटपटादिबुद्धीनां क्रमो न हेतुफलभावात्[1] ॥

इति काणादसूत्रपाठे अष्टमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. अयमेष त्वया कृतं भोजयैनमिति बुद्ध्यपेक्षम् ।

२. दृष्टेषु भावाददृष्टेष्वभावात् । ३. अर्थ इति द्रव्यगुणकर्मसु ।

४. द्रव्येषु पञ्चात्मकत्वं प्रतिषिद्धम् ।

५. भूयस्त्वाद् गन्धवत्त्वाच्च पृथिवी गन्धज्ञाने प्रकृतिः ।

६. तथापस्तेजो वायुश्च रसरूपस्पर्शाविशेषात् ॥

इति काणादसूत्रपाठे अष्टमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, अष्टमोऽध्यायश्च ॥



अथ नवमोध्यायः

प्रथममाह्निकम्

१. क्रियागुणव्यपदेशाभावात् प्रागसत् । २. सदसत् ।

३. असतः क्रियागुणव्यपदेशाभावादर्थान्तरम् । ४. सच्चासत् ।

५. यच्चान्यदसदतस्तदसत् ।

६. असदिति भूतप्रत्यक्षाभावात् भूतस्मृतेर्विरोधिप्रत्यक्षवत् ।

७. तथाऽभावे भावप्रत्यक्षत्वाच्च ।

८. एतेनाघटोऽगौरधर्मश्च व्याख्यातः ।

९. अभूतं नास्तीत्यनर्थान्तरम् ।

---

१. "तथा द्रव्यगुणकर्मसु कारणाविशेषात्"—इत्यधिकं सूत्रम् ।

१०. नास्ति घटो गेहे इति सतो घटस्य गेहसंसर्गप्रतिषेधः ।

११. आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षम् ।

१२. तथा द्रव्यान्तरेषु प्रत्यक्षम् ।[१]

१३. असमाहितान्तःकरणा उपसंहृतसमाधयस्तेषां च ।

१४. तत्समवायात् कर्मगुणेषु । १५. आत्मसमवायादात्मगुणेषु ॥

इति काणादसूत्रपाठे नवमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. अस्येदं कार्यं कारणं संयोगि विरोधि समवायि चेति लैङ्गिकम् ।

२. अस्येदं कार्यकारणसम्बन्धश्चावयवाद्भवति ।

३. एतेन शाब्दं व्याख्यातम् ।

४. हेतुरपदेशो लिङ्गं निमित्तं प्रमाणं करणमित्यनर्थान्तरम् ।

५. अस्येदमिति बुद्ध्यपेक्षितत्वात् ।

६. आत्ममनः संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्मृतिः ।

७. तथा स्वप्नः । ८. स्वप्नान्तिकम् ।

९. धर्माच्च । १०. इन्द्रियदोषात् संस्कारदोषाच्चाविद्या ।

११. तद्दुष्टज्ञानम् । १२. अदुष्टं विद्या । १३. आर्षं सिद्धदर्शनं च धर्मेभ्यः ।

इति काणादसूत्रपाठे नवमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, नवमोऽध्यायश्च ॥

०

अथ दशमोऽध्यायः

प्रथममाह्निकम्

१. इष्टानिष्टकारणविशेषाद्विरोधाच्च मिथः सुखदुःखयोरर्थान्तरभावः[२] ।

२. संशयनिर्णयान्तराभावश्च ज्ञानान्तरत्वे हेतुः ।

---

१. अत्र—"आत्मेन्द्रियमनोऽर्थसन्निकर्षाच्च" इति सूत्र क्वचिदधिकम् ।

२. इतोऽग्रे "आत्मसमवायः सुखदुःखयोः पञ्चभ्योऽर्थान्तरत्वे हेतुस्तदाश्रयिभ्यश्च गुणेभ्यः" इत्यपि क्वचित् सूत्रम् ।

३. तयोर्निष्पत्तिः प्रत्यक्षलैङ्गिकाभ्याम् । ४. अभूदित्यपि ।
५. सति च कार्यादर्शनात् ।
६. एकार्थसमवायिकारणान्तरेषु दृष्टत्वात् ।
७. एकदेशे इत्येकस्मिन् शिरः पृष्टमुदरं मर्माणि तद्विशेषस्तद्विशेषेभ्यः ॥

इति काणादसूत्रपाठे दशमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. कारणमिति द्रव्ये कार्य्यसमवायात् ।[1] २. संयोगाद्वा ।
३. कारणे समवायात् कर्माणि ।
४. तथा रूपे कारणैकार्थसमवायाच्च ।
५. कारणसमवायात् संयोगः पटस्य ।
६. कारणकारणसमवायाच्च । ७. संयुक्तसमवायादग्नेर्वैशेषिकम् ।
८. लैङ्गिकं प्रमाणं व्याख्यातम् ।
९. दृष्टानां दृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय ।
१०. तद्वचनादाम्नायस्य प्रमाण्यमिति ।

इति काणादसूत्रपाठे दशमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, दशमोऽध्यायश्च ॥

समाप्तं च वैशेषिकदर्शनम् ॥



वैशेषिकशास्त्रप्रणेतुः प्रशंसा

योगाचारविभूत्या यस्तोषयित्वा महेश्वरम् ।
चक्रे वैशेषिकं शास्त्रं तस्मै कणभुजे नमः ॥

प्रदीपः सर्वविद्यानाम्, उपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणाम् विद्योद्देशे प्रकीर्तिता।

एतत्संग्रहान्तःपातिसूत्राणाम्

अकारादिक्रमेण सूची

यानि सूत्राणि निर्दिष्टान्येतस्मिन् सूत्रसंग्रहे ।
अकारादिक्रमेणेह तेषां सूची प्रतायते ॥

ष० सू० सं० : १८

ग्रन्थ-ग्रन्थकृन्नामसूची

ग्रन्थाश्च ग्रन्थकाराश्च, पुण्याख्यैर्मुनिभिः स्मृताः ।
स्वकीये दर्शने, तेषां सूचीयं क्रमशालिनी ॥

अस्य संग्रहस्य सम्पादनकर्मणि

गृहीतान्यादर्शपुस्तकानि

१. दर्शनसूत्रसंग्रहः
चौखम्भा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी. सन् १९००

२. शास्त्रदीपिका (मीमांसादर्शनम्)
निर्णयसागर प्रेस, बम्बई. सन् १९१५

३. ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम् (वेदान्तदर्शनम्)
निर्णयसागर प्रेस, बम्बई. सन् १९३८

४. साङ्ख्यसूत्रवृत्तिः (सांख्यदर्शनम्)
अमर यन्त्रालय, वाराणसी. सन् १८९०

५. योगदर्शनम्
निर्णयसागर प्रेस, बम्बई. सन् १९१५

६. न्यायदर्शनम्
बौद्धभारती, वाराणसी. सन् १९७६

७. वैशेषिकदर्शनम्
गायकवाड़ सीरिज, बड़ौदा. सन् १९६१

शुद्धिपत्रम्

किञ्चिच्छैघ्र्याच्चान्मतेर्मान्द्यात् प्रमादाच्चैव चक्षुषः ।
स्खलनं यत् क्वचिज्जातं शोध्यं तद्धि विचक्षणैः ॥

अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः	पृष्ठे	पंक्तौ
०त्वेक०	०त्वैक०	१२	१७
षष्टः	षष्ठः	१७	१३
शास्त्रार्णा	शास्त्राणां	३३	२२
पुरुषार्थौ	पुरुषार्थो	३३	२२
प्रबृत्तिः	प्रवृत्तिः	३४	१०
अनर्थकश्च	अनर्थकश्च	३६	४
नैबं	नैवं	३८	२७
सत्तमोऽध्यायः	सप्तमोऽध्यायः	४२	१३
प्रदेशश्व	प्रदेशश्च	५२	१३
षड्बिंशति०	षड्विंशति	५५	१७
त्वेयं	त्वेवं	५६	२
प्रयाजकदेक०	प्रयाजवदेक०	५८	१८
ब्रह्मभक्षाणां	ब्रह्मभक्षाणां	६०	२
सर्वंनेवं	सर्वमेवं	६२	४
०सामाथ्यीद्	०सामर्थ्याद्	६२	१३
आग्न्याधेयस्य	अग्न्याधेयस्य	६२	२०
०देकत्यं	०देकत्वं	६३	१३
यचनात्	वचनात्	६७	१५
०निर्देश	०निर्देशे	७०	२०
गृणार्थत्वात्	गुणार्थत्वात्	७४	२२

अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः	पृष्ठे	पंक्तौ
परिमाणे	परिमाणं	७७	१
वां	वा	८७	१५
क्रियामाणा०	क्रियमाणा०	८८	१५
०मानतमतच्छ०	०मानमतच्छ०	९१	२६
समानानाम०	समानानाम०	९२	१७
साभाव्या०	स्वाभाव्या०	९९	१
संववच्च	सर्ववच्च	१००	१३
सहभादा०	सहभावा०	१०२	६
स्वाप्ययसं०	स्वाप्यसं०	१०५	१९
०ध्यायस्य:	०ऽध्याय:	१०७	१
परिच्छन्नं	परिच्छिन्नं	१०८	१८
शिविधं	त्रिविधं	१०९	३
तित्य०	नित्य०	१११	३
सुखा	सुखी	११५	१२
थअ	अथ	११६	६
परवक्ष०	परपक्ष०	११९	१
कमवैचि०	कर्मवैचि०	१२१	१७
उभथथा०	उभयथा०	१२१	४
०शनम्	०दर्शनम्	१२२	१८
दृष्टा०	दृष्टा०	१२३	१५
यिदुषो०	विदुषो०	१२५	८
०हेयास्द्०	०हेयास्तद्०	१२५	९
ब्रह्यचर्यं०	ब्रह्मचर्यं०	१२६	११
प्रत्थक्षा०	प्रत्यक्षा०	१३४	१
तत्प्रामाण्षे	तत्प्रामाण्ये	१३४	७
०माहिकम्	०माह्निकम्	१४१	१

अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः	पृष्ठे	पंक्तौ
०मिददं	मिदं	१४३	टिप्पण्याम्
०प्रमङ्गश्च	प्रसङ्गश्च	१४३	१३
०मकग्नेर्दां०	मग्नेर्दां०	१४४	१४
०निर्देदेशात्	निर्देशात्	१४५	७
०लब्वि:	०लब्धिः	१४६	११
०द्वैंबिध्यो०	०द्वैविध्यो०	१४७	४
प्रयत्नास्व	प्रयत्नाश्च	१५१	१२
दृस्टः	दृष्टः	१५३	१६
पञ्चमोऽ्यायः	पञ्चमोऽध्यायः	१५७	१९
०गुणयिति	०गुणमिति	१६१	टिप्पण्याम्
सम्वद्ध०	सम्बद्ध०	१६२	टिप्पण्याम्
प्रशंशा	प्रशंसा	१६५	१८



दूरभाषक्रम ४४२७५

(स्थापनाकालः १९८३ ई०)

सुधीग्रन्थ-माला

प्रधानसम्पादकः—स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

सुधियो ग्रन्थकर्तारः, सुधियः सम्प्रकाशकाः।
एषा सुधीनां ग्रन्थानां माला धार्या सुधीजनैः॥

१.	काशिकावृत्तिः (प्र० भा०) (पदमञ्जरी-न्याससहिता)	८५ = ००
२.	काशिकावृत्तिः (द्वि० भा०) ,, ,,	८५ = ००
३.	काशिकावृत्तिः (तृ० भा०) ,, ,,	१०० = ००
४.	काशिकावृत्तिः (च० भा०) ,, ,,	९० = ००
५.	काशिकावृत्तिः (प० भा०) ,, ,,	१०० = ००
६.	काशिकावृत्तिः (ष० भा०) ,, ,,	१०० = ००
७.	वाक्यपदीयम् (ब्रह्मकाण्डम्) (श्रीनारायणदत्तत्रिपाठिकृतप्रकाशव्याख्यायुतम्)	२० = ००
८.	षड्दर्शनसूत्रसंग्रहः (षण्णां दर्शनानां प्रामाणिकः सूत्रसग्रहः)	५० = ००
९.	न्यायभाष्यम् (पं० सुदर्शनाचार्यकृतप्रसन्नपदव्याख्यायुतम्)	१०० = ००
१०.	पातञ्जलमहाभाष्यम् (प्रदीपोद्द्योतछायादिटिप्पणीसहितम्)	१५० = ००
११.	सांख्यसूत्राणि (श्रीमन्महादेववेदान्तिकृत 'सांख्यवृत्तिसार'-सहितानि)	६० = ००
१२.	स्वाराज्यसिद्धिः (स्वामी भास्करानन्द कृत टीका एवं हिन्दी अनुवादेन सहिता)	६० = ००

प्राप्तिस्थानम् :

सुधी प्रकाशनम्

पोस्ट बाक्स—१०४९,

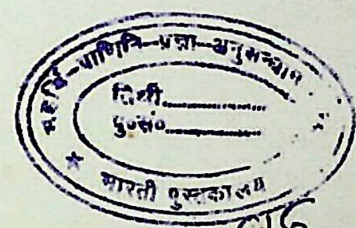
वाराणसी—२२१००१

शंकराचार्य का अद्वैतवाद का आधार - प्रस्थानत्रय
(केवलाद्वैतवादी) गौड़पादाचार्य गुरु शंकराचार्य

प्रथम - श्रौत (उपनिषद्)
द्वितीय - स्मार्त (गीता)
तृतीय - दर्शन (वेदान्त)

द्वैतवादी - आनन्दतीर्थ - मध्व भाष्य मध्वाचार्य
विशिष्टाद्वैत - रामानुजाचार्य - श्री भाष्य
शुद्धाद्वैत - वल्लभाचार्य - तत्वदीपिका
द्वैताद्वैत - निम्बार्क - श्रीकंठ पैशाच भाष्य

श्री हर्ष ने खण्डनखण्डखाद्य लिखा





THU	FRI	SAT
		1
	7	8
	14	15
	21	22
27	28	29

SEPTEMBER

SUN	MON	TUE
3		
10		
17		
24	25	26


15 16 17
21 22 23 24
28 29 30 31